

नन्ददास और सूरदास

का

तुलनात्मक अध्ययन

(काव्य, कला व भाषा की दृष्टि से)

मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

में

पी० एच-डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

शोध कर्ता :

मेघराज शर्मा

निदेशक :

डा० हरवंशलाल शर्मा

एम० ए०, पी० एच-डी०, डी० लिट्

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,

हिन्दी विभाग

मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़



T1552

T 1552



विषय सूची

प्रथम अध्यायः	परिका, विषय का विशेषण, विषय की सामा, उपलब्ध साक्षा, विषय की परिधि, जीवनकृत, शब्द का दृष्टिकोण, शब्द का स्वरूप व मांजिस्ता ।	१-१२
द्वितीय अध्याय :	परिचय तथा दोनों कवियों के काव्य व कला के सम्बन्ध में विभिन्न मत, उनके काव्य की पृष्ठभूमि, विभिन्न दृष्टिकोण, काव्य का रूप, काव्य के बीज और उद्देश्य, नन्ददास का काव्य व पृष्ठभूमि, धूर का काव्य व पृष्ठभूमि, निष्कर्ष ।	१४-६
तृतीय अध्याय :	नन्ददास जी की काव्य कला का रूप, रचनाओं का साहित्यिक परिचय, नन्ददास के काव्य में भाव, नन्ददास के काव्य में रस, उनके काव्य में प्रयुक्त अलंकार (शोकाहरण), नन्द यौक्ता, नन्ददास के काव्य की भाषा, निष्कर्ष ।	६-९
चतुर्थ अध्याय :	धूरदास की काव्य कला का रूप धूर साहित्य का परिचय, उनके काव्य के भाव, काव्य में रस, अलंकार व नन्द यौक्ता । धूर के काव्य की भाषा तत्सम, तत्सम, ग्रामाण, विदेशी व द्विज शब्द सुशायरी व लोकोक्ति।	१०-१७
पंचम अध्यायः	धूरदास व नन्ददास की काव्य कला का तुलनात्मक अध्ययन भाव की दृष्टि से, रस की दृष्टि से, तुलनात्मक निवेदन ।	१७-२२
षष्ठ अध्याय :	धूरदास व नन्ददास की काव्य कला अलंकारों व शब्दों की दृष्टि से तुलनात्मक शोकाहरण निरूपण ।	२२-२३

सप्तम अध्याय :

दोनों कलाकारों की भाषा का तुलनात्मक विवरण, २६०-२
 शब्द सम्पत्ति, लोकोक्तियाँ और मुहावरों की दृष्टि से,
 नन्ददास की भाषा, शब्दावली तत्सम, तत्पद, देश्य,
 विदेशी अनुकरणात्मक शब्द, मुहावरों व लोकोक्तियों ।
 शब्ददास — तत्सम, तत्पद, देश्य, विदेशी सभी शब्दावली
 मुहावरों व लोकोक्तियों ।
 शूर व नन्द की उपरान्त आचार पर तुलना ।

अष्टम अध्याय :

साम्प्रदायिक विवरण २६०-२

नवम अध्याय :

पृष्ठ भूमि २६०-२

शूर व नन्द से पूर्व काव्य परम्परा व साहित्यिक पृष्ठ भूमि,
 कल्काव्य, रामकाव्य परम्परा, अष्टाव्य से पूर्व हिन्दी में
 कृष्ण परित काव्य की परम्परा, अष्टाव्य से पहले प्रकाशित
 काव्य की परम्परा अष्टाव्य के समय राजनैतिक व सामाजिक
 व्यवस्था, अक्षर के समय की राजनैतिक व्यवस्था, सामाजिक
 वृद्धि, धार्मिक पृष्ठ भूमि रामानुजाचार्य, निम्बकाचार्य,
 मध्वाचार्य, केम्प मराप्रभु आचार्य विष्णु स्वामी आदि ।
 शूर व नन्द पर प्रभाव ।

उपसंहार :

३३०-२

परिशिष्ट :

५-४

कृष्णमयत कवियों ने नन्ददास तथा ब्रह्मदास का विशेष स्थान है। पारितोषिक और काव्य सौन्दर्य दोनों ही दृष्टियों से कृष्ण मयित काव्य में उनका योगदान तथा साहित्यिक विद्वानों ने स्वीकार किया है। नन्ददास व ब्रह्मदास अष्टदास के कवियों में अपना काव्य प्रतिभा तथा व्यक्तित्व ज्ञान के कारण अकेले कृत अविकल सम्मानित थे। पारितोषिक, दर्शन, ज्ञान और काव्य का बहुमुखी सिंघा होने के कारण इन दोनों मयत कवियों को सम्प्रदाय के परिवर्धन में रखकर स्थायी बनाया जा सकता है। इन दोनों स्थान कवियों के साहित्य की परत के लिए व्यापक कक्षाओं का आवश्यकता है।

काव्य कला की दृष्टि से अष्टदास के अन्य कवियों में नन्ददास का भी विशेष स्थान है। नन्ददास जी कोमलकान्त पदावली विद्यापीठ में जयदेव का परम्परा में जाता है। अपना मनोरम पद-योजना के कारण वे गद्यनाम से प्रसिद्ध हैं। नन्ददास जी ने माषावली-संग्रह नाम से जाना किया है। वे वास्तव में, गीत गोविन्द की उल्लिखित पदावली से अधिक प्रभावित थे। इसी कारण ये भजमाषा-काव्य कला के विद्वानों में उनका स्थान महत्त्वपूर्ण है। फिर भी जब हम गुरु के साथ उनके स्वरों देखते हैं तो प्रतीत होता है कि नन्ददास का धारा कृतित्व उनके मनोरम वर्ण-योजना और नाक-नेत्र से युक्त पदयोजना में ही जोड़ित है। गुरु की मोहि जगन्मयना-नोरु, निदर-उचित और धरत काव्य प के नव निर्माण के सामने उभरे न था। नन्ददास जी की तृतीय पंक्ति का काव्य स्वीकार किया जाता है। काव्य के स्वरमात्र का अमृतप्रसव कंकण उन्होंने किया किन्तु काव्य के अन्तर्गत का जगत् कृष्ण न कर ले जगत् गुरु ने किया है। इस प्रकार उनकी काव्य-कला का स्वरूप का तो निरवयव हो विशेष चरित्रात्मक हो गया किन्तु सौन्दर्य विद्यायुक्त जगन्मयना का उल्लास था, जो उल्लास जितना धर के काव्य में ही हुआ है था। इसके अतिरिक्त मौलिकता की दृष्टि से भी नन्ददास ब्रह्मदास के अनुवर्ती हैं - उनके पद-रचना, जगन्मयना-नोरु आदि पर जयदेव आदि के साथ साथ गुरु का भी स्पष्ट दाप है।

बुरदा । पर तब कितने ही शीवग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और वी. मल्लिकार्जुन की बड़े २ मलान विद्वानों ने अपने शीव का आचार बनाया है । बुर काव्य पर विभिन्न दृष्टिकोण से जो कार्य हुए वे उनमें फं रामचन्द्र कुल, आचार्य एन. टी. प्रसाद द्विवेदी डा० मुक्त राम, डा० दीनदयाल गुप्त, डा० हरविश डा० रमा, तथा प्रमुखा० मोतू आदि के ग्रन्थ प्रमुख हैं । इन ग्रन्थों के आतिरिक्त भी बुर एक अध्ययन नाम से कई पुस्तकें प्रकाशित हैं तथा हिन्दू साहित्य के इतिहास ग्रन्थों, पत्र पत्रिकाओं और बुर कीर्तियों की सूचिकाओं में प्रचुर आलोचनात्मक सामग्री उपलब्ध है । अतः बुरदा वी. के जीवनवृत्त, उनकी मान्यता तथा उनके ग्रन्थों का अक्षिप्त विवेचना हुई है । आचार्य पर विचार हो प्रसंनिय प्रयत्न किये गये हैं । यथाप अन्तिम निर्णय उप समय में सर्वमान्य नहीं हुआ । मान्यता तथा दार्शनिक विद्वानों पर अच्छा विवेचन उपलब्ध हो चुका है । किन्तु मान्यता पर जमा तक कार्य नहीं हो सका है । कलाकार पर सामग्री अतः अत्यन्त अक्षिप्त है । काव्य के विभिन्न अंगों में फलाने पर सामान्य दृष्टि हो जाती है । आलोचनाओं में मान्यता इतना प्रभाव हो गया है कि उसे जागे बढ़कर कलाकार पर समयक दृष्टि डालने में जनघर हो जाते हैं और न मिल सका । अतः आलोचक बुर को एक मरुतवपूर्ण कलाकार न स्वीकार मानता है पर अर्थों का मत है कि उपलब्ध बुर साहित्य में वी. विषय को सामग्री बहुत ही कम है । इन ग्रन्थों में या तो कला की प्रकृति हो नहीं है या वे तो अति क्रम । अतः वी. के ग्रन्थों में प्राप्त सामग्री का उत्प्रेषण न देना समझीन होगा ।

फं रामचन्द्र कुल जो ने प्रसंगीत सार की सूचिका में बुराव्य की कुछ गुणधिया कुफाने का उक्त प्रभाव किया है । उन्होंने अपने वी. ग्रन्थ में काव्य के विभाव फलाने बहुत उद्धर विरलेषण किया है । काव्य कला के सम्बन्ध में वे उन्होंने यथा सम्भव लिखा है । माया, वी. अंतःकलाओं का भी क्रम विवेचन वी. ग्रन्थ में कुल जी ने किया है । पर सूचिका में वी. के वी. जनघर प्राप्त नहीं हो सका कि वे बुर की कला की अक्षिप्त विवेचन हो सकें । बुर की गीत-मक स्वी. या तो उन्होंने नाम मात्र का उल्लेख किया है । बुर की कला पर कुल जी विलुप्त तौर से लिखना चाहते थे परन्तु उनके जीवनवृत्त के कारण कला का प्रकृति उनके द्वारा अक्षिप्त हो सका ।

आचार्य द्विवेदी द्वारा रचित धूर्त-साहित्य शीटा पत्रद्वय महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। साहित्य में कृष्ण के विकास पर द्विवेदी जी मौलिक एवं किताबूना प्रकार प्रस्तुत किये हैं तथा पारम्परिक विचारों का प्रमत्त स्थापना का निवारण किया है। वास्तव में यह पुस्तक धूर्तसाहित्य पर लिखे द्विवेदी जी के कतिपय विचारों का संग्रह है अतः काव्य-कला सामग्री उन्हीं उपलब्ध नहीं है।

डा० दीनदयाल गुप्त का अष्ट द्वाप और बल्लभ सम्प्रदाय अपने विषय पर महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। अष्ट द्वाप का पृष्ठभूमि, अष्टद्वाप के कवियों की जीवनी, अष्टद्वाप के ग्रन्थ कवियों के दार्शनिक विचार, मन्त्रित तथा परमाण्वदवा, और नन्ददा। जी के समीक्षा ^{धूर} की जीवनी, उनके दार्शनिक विचार, उनका मन्त्रित पर अधिक वे अधिक निर्णय इस ग्रन्थ में प्राप्त हो जाता है। ग्रन्थों की प्रमाणिकता पर गुप्त जी ने बड़े शोध के साथ विचार किया है। पर क्योंकि वे उन्होंने काव्य समीक्षा वाले प्रकरण पर केवल परमाण्वदवा और नन्ददा की अपना विषय बनाया है।

डा० कुंशी राम शर्मा के प्रथम भारतीय भाषा और धूर्त साहित्य में धूर्त का धरि-लीला के जात्यात्मिक दृष्टिकोण का विवेचन है। भारतीय भाषा और धरि-लीला की सांस्कृतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि देकर डा० शर्मा ने धूर्त के वैज्ञानिक तथ्यों का व्याख्या की है। ग्रन्थ में धूर्त के राधा-कृष्ण और शृंगार-रस का जात्यात्मिक का प्रस्तुत किया गया है। इसी काव्य कला का कोई प्रकरण हो नहीं है।

डा० हरवश डा० शर्मा ने अनुसंधान के निमित्त धूर्त को मधुमागवत और धूर्तगर्भ का जात्यात्मिक अध्ययन किया था। यह प्रथम कदाचित् अपना भी अप्रकाशित है। उनका दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ धूर्त और उनका साहित्य प्रकाशित हो चुका है और उसके कई संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में धूर्त साहित्य सम्बन्धी उपलब्ध समस्त सामग्री का बहुत ही व्याख्यात्मक विवेचन किया है। धूर्त की जीवनी, ग्रन्थ रचना, धूर्त साहित्य का पृष्ठभूमि, धूर्त साहित्य में कृष्ण का विकास, जो मधुमागवत और

धूरधागर, धूर के दार्शनिक चिन्तान्त तथा धूर के मरिच का जादि का उन्किस्तार विवेचन किया है। धूर काव्य के कला का तथा मानका पर भी लगभग १०० पृष्ठों का एक अध्याय है, जिसमें धूरदास की कला सम्बन्धी पदरचना, वर्णन, अलंकार-योगिता, कथाविधा तथा भाषा समृद्धि का सीमित परिधि में विवेचन, विशेषण दिया गया है। यद्यपि धूर की काव्य कला इनका मुख्य विवेचन नहीं है तो भी धूर की काव्य कला पर बड़े महत्त्वपूर्ण विचार हमें इस ग्रन्थ में मिलते हैं। कुछ अन्य विद्वानों ने धूरदास के प्रधान कृत्तित्व पर अपने विचार प्रकट किये हैं जिनमें डॉ. नलिनी मोहन धाम्याल (मराठीशिरोमणि धूरदास में) डॉ. नन्द दुलारे बाजपेयी (मराठीवि धूरदास में) डॉ. तथा डॉ. आनन्द मि. न. डॉ. प्रभोकर वर्मा आदि हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि धूर काव्य पर जाँचनेवाले तो बहुत हैं पर उनकी कला जिसमें उनका प्रधान कृत्तित्व निहित है, सम्बन्ध अध्ययन एवं विशेषण का तो विशेष जब तक नहीं बन पाई है। इस विषय पर सम्बन्ध प्रश्नव का आवश्यकता अन्य जातीय प्रश्न का सम्बन्ध हुआ तथा डॉ. नन्द दुलारे बाजपेयी जैसे विचारक अनुभव करते रहे हैं।

कथिवर नन्ददास के काव्य में धूरदास को जैसा। धूर का जिला गया है। और जो कुछ न्यूनताएँ मिली हैं उनसे परिवर्तनात्मक एवं जातीयतात्मक दोनों प्रकार का आग्रह है। परिवर्तनात्मक आग्रह धूर के हिन्दी साहित्य के इतिहास पर जिला गई जातीयता रचनाओं में उल्लेख्य होती है। उनकी जीवनी व रचनाओं का सीधे-से परिवर्तन है। इतिहास ग्रन्थों में प्राप्त होता है। परिवर्तन की जैसा। इनके रचना रचना एवं जाँच उभर आया। जातीयतात्मक डॉ. रामधुमार वर्मा डॉ. उजारी प्रसाद द्विवेदी प्रकृति हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने नन्ददा के परिवर्तन के साथ साथ उनकी कविता के सम्बन्ध में भी सीधे-से आग्रह दिखलाते हैं। यही कारण है कि उक्त विद्वानों का सम्बन्ध नन्ददा। सम्बन्ध सम्बन्ध जातीयतात्मक रचनाओं में उद्भूत किया जाता रहा है।

जातीयतात्मक रचनाओं में दूसरा डॉ. नन्ददा। जो सम्पादित रचनाओं का है। इस प्रकार की रचनाओं के दो हैं -- प्रथम वर्ग में केवल साहित्यान्वयायी और प्रसंगी जो सम्पादित करने वाली रचनाएँ जाती हैं और दूसरे डॉ. नन्ददास की

सभी काव्य कृतियों का सम्पादन किया गया है। सम्पादन का यह कार्य मारतेंदु हरिश्चन्द्र ने आरम्भ होता है। किं. कं. १८२५ की हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में मारतेंदु ने रासपञ्चाव्यासों का सम्पादन कर उसे प्रकाशित कराया। इसका उद्देश्य केवल नन्ददास की उक्त रचना की प्रकाश में लाना था। अतः इसका महत्व आलोचनात्मक दृष्टि में अधिक नहीं है। इस दिशा में दूसरा प्रयत्न रामकृष्णदास द्वारा किया गया। उन्होंने भी रासपञ्चाव्यासों का सम्पादन के लिए स्वीकार किया। इसके बाद तो रासपञ्चाव्यासों और मञ्जरगीत के सम्पादन का एक परम्परा चल पड़ी। बाबू बालमुकुन्द ने रासपञ्चाव्यासों के अतिरिक्त मञ्जरगीत का भी सम्पादन किया। इसके बाद डा० उदयनारायण तिवार, विष्णुमरनाथ मेहराजा और डा० प्रेमनारायण टंडन ने इसी परम्परा को जारी बढ़ाया। इन सम्पादित कृतियों में आलोचनात्मक भाग का विस्तार अनुपात से बढ़ा। फिर भी कवि परिवर्धन और ग्रन्थों की प्रमाणिकता पर इन सम्पादकों ने विशेष ध्यान दिया।

नन्ददास पर प्राप्त आलोचनात्मक कृतियों में से कुछ का सम्बन्ध केवल नन्ददास से है और अन्य कुछ ग्रन्थों में परंपरागत से उनका वर्णन है। दूसरे प्रकार की रचनाओं का विषय अष्टदास, बल्लभप्रदास, कृष्णमोहित काव्य तथा प्रमरगीत की परम्परा है। अतः नन्ददास की सम्यक् आलोचना इन कृतियों में प्राप्त नहीं होती। वर्षे क्रियांगी हरि का ब्रजभापुरी वार प्रमुखात् मातुल का अष्टदास पारबय, डा० स्नेहलता मेवास्तव का हिन्दा में प्रमरगीत परम्परा और नन्ददास का मञ्जरगीत विशेषण और विवेचन और चारों साधुओं पर प्रकाश डालने वाले गवेषणापूर्ण लेखों का इस वर्ग की रचनाओं में उत्प्रेष किया जा सकता है। नन्ददास सम्बन्धी आलोचना का वास्तविक भाग इनहीं रचनाओं में लक्षित होता है जिसमें नन्ददास की ही विषय के भाग में प्रकाश किया गया है। पूर्ण प्रकृत एवं उपलब्ध साधुओं से इसकी विशेष उपपष्ट करने के लिए प्रमुख आलोचनात्मक रचनाओं का संक्षिप्त पारबय प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा।

डा० दानदयाल गुप्त ने अपने अष्टदास और बल्लभप्रदास में बर्णन केवल नन्ददास की अपने विवेकय काव्य के भाग में नहीं लिया है, किन्तु बिना विस्तार से उन्होंने

कवि की जीवनी, ग्रन्थरस्यो और उनकी प्रमाणिकता, विचार, मर्मित भावना और काव्य सौन्दर्य के सम्बन्ध में विचार दिया है उनका महत्त्व किसी स्वतन्त्र रचना से कम नहीं है। यह अत्यंत कि दार्शनिक विचारों पर डॉ. गुप्त का ध्यान अकेला कृत अत्यंत है। काव्य सौन्दर्य की बर्णन बहुत कुछ विषय परिवर्तन के माध्यम से प्रस्तुत की गई है अतः जातिवैयक्तिकता की या सम्प्राप्ति कहीं जा नहीं पाई है परन्तु ऐक्य के विचार जहाँ भी व्यक्त हुए हैं वे अत्यंत स्पष्ट हैं।

नन्ददास पर प्रथम स्वतन्त्र जातिवैयक्तिक रचना डा० रामरत्न मटनागर की है। नन्ददास के काव्य के विषय में यही विचार किया गया है। जीवनी, रचनाएँ, पुष्टि-योग्य विद्वान्त, मर्मित भावना, काव्य मर्म का बौद्धिकता के अन्तर्गत् उनके कृत्विक्त का विवेकानामक जातिवैयक्तिकता करने का प्रयास किया गया है। डा० मटनागर ने नन्ददास को एक बर्णन में पूर्वलिखित रचनाओं का ध्यान रखा है।

प्रा० कृष्णदेव ने अष्टाध्याय के कवि नन्ददास नामक रचना प्रस्तुत कर एक दिशा में एक अन्य प्रयास किया है। डा० रामरत्न मटनागर की रचना से सामान्य यह रचना में विचारियों को लाभान्वित करने के लिए लिखी गई है। स्वतन्त्र विद्वान्त व अध्ययन के उद्देश्य से नहीं। परन्तु नन्ददास के कवि और मर्मित भावना के सम्बन्ध में यह रचना में अवश्य ही सहायक हो सकती है।

डा० सावित्री सिन्हा ने ब्रजभाषा के कृष्णमर्मित काव्य में अभिव्यक्त शिल्प नामक अपने शोध ग्रन्थ में नन्ददास के काव्य कला पर विस्तार से विचार किया है। नन्ददास की काव्यकला को समझने के लिये वे शोध प्रबन्ध अत्यंत सहायक सिद्ध हो सकता है। परन्तु काव्य कला के अतिरिक्त भाव और विचार का भी सम्बन्ध में के लिये अन्य ग्रन्थों का अकेला उद्देश्य बना रहता है।

डा० उषेति रचित नन्ददास की परम्परा की नवीन ग्रन्थ है। ऐक्य का इस रचना का जाया भाग जीवनी व काव्यकृतियों से सम्बन्धित है। और शेष आधे भाग में कवि के विचार, भावना तथा भाषा अन्तर्गत आदि की बर्णन

की गई है। जो कि व काव्यदृष्टिों जाड़े पाग को अधिक गवेषणात्मक बनाने का प्रयत्न ऐकिक ने किया है। परन्तु जिस यगत कृपता और विचार ने होते हुए भी ऐकिक को इस दिशा में अधिक उफालता नहीं मिला है। उसे बहुत से शिष्य एक काव्य विद्वान् होते हैं। काव्य जीवन के जीवन में नवीन रीति का प्रयोग अपना है। वे नन्ददास की काव्य कला पर बहुत ही जाते और भी कही जा सकती है।

इस नन्ददास की रचनाओं में शृंगार के क्लृप्त रूप को पष्ट करने के उद्देश्य से रमेश कुमार लट्टर को पुस्तक प्रकाशित हुई है। शृंगार वर्णन की क्लृप्त रचना के अतिरिक्त नन्ददास की काव्य और कृति के अन्तर्गत काव्यों को पष्ट करने के उद्देश्य से कुछ सम्बन्ध निषर्गों का समावेश भी किया गया है। ऐकिक को काव्य की शृंगारिक रूप में अधिक प्राकृष्ट किया प्रताप होता है। यह सर्वविदित है कि नन्ददास जीवन और जीवन के जीवन हैं अतः उनका रचना में शृंगार के विविध वर्णों का हूँ उनका कोई कवि काव्य नहीं है परन्तु इसी काव्य का वास्तविक व्यक्तित्व ही नहीं उभर सका है।

हाल ही में प्रकाशित डॉ. राधकान्त शर्मा द्वारा रचित 'गोस्वामी तुलसीदास द्वारा नन्ददास के जीवन कृत पर बहुत प्रकारों परता है। डॉ. राधकान्त ने अनेक प्रमाणों तथा तर्कों द्वारा तुलसीदास की रचनाओं का समाधान करने का प्रयत्न किया है। गौरी शम्भूदास का जीवन काव्यिक व्यथाय में डॉ. राधकान्त प्रभाव दृष्टि द्वारा उजाड़ कर जानाया है और भी उन्होंने दिया है। डॉ. दीनदयाल शर्मा ने औरों काव्य पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं किन्तु डॉ. राधकान्त पर कुछ निश्चयात्मक निर्णय नहीं प्रस्तुत किया। वे लिखते हैं कि ऐकिक ने डॉ. शम्भूदास का प्रामाणिकता पर पूरा विश्वास नहीं किया। डॉ. शम्भूदास पर समय समय पर पत्रों में लिखता हूँ अनेक शम्भूदासों के बीच शर्मा के अनेक ग्रन्थों की फिर से जांच लिये बिना निश्चयात्मक निर्वचन करना तथा निष्पन्न सूचक विचार देना ऐकिक ने उचित नहीं समझा।^१

१ अष्टदास - अष्टदास प्रकाश, मा. १ द्वारा प्रथम संस्करण सन् २००४ पू. २०७।

इस प्रकार देता जाता है कि जहां नन्ददास के काव्य जीवन का परलोक जीवन का है वहां उन्ने जीवन कृत परम पर्याप्त प्रकाश होता है। निन्दु की ही हो पुरुषों का क्रम विवेक करना अभी शेष है। नन्ददास की भाषा का बना पड़ा जाता है। उनके वाचार्थत्व सम्बन्धी गुणों की और विद्वानों का दृष्टि बहुत कम पड़ी है। जीवन का जीवनकृत अभी विवाद का विषय बना हुआ है। उनके काम संकेत, कृत्यकाण्ड, रणगाति का के विषय में विद्वानों का मतभेद एक नहीं। यह निर्णय करना अभी शेष है कि उन गुणों के मतों में कौन सा मत अधिक समीचीन है। इस बात का आवश्यकता है कि उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर उनके काव्य का गहन चिन्तन और मनन किया जाय और तब उसमें निहित गुणों की स्पष्ट दृष्टि जाय।

उपर्युक्त अभी दृष्टिकोणों तथा उपलब्ध साक्ष्यों व प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर एक शीघ्र प्रयत्न में सूरदास व नन्ददास की तुलनाओं का उनके काव्य, भाषा तथा कला की दृष्टि से तुलनात्मक विवेक प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। तुलनात्मक वाचार्थत्व का क्रम हिन्दी में विवेकात्मक से हो जाता चला जा रहा है। रस, रूप, अङ्कार, भाषा व विषय क्षेत्र आदि के माध्यम से श्रेष्ठ कवियों का मूल्यांकन किया जाता रहा है। विषय व दृष्टिकोण के सर्वथा भिन्न होते हुए भी सूरदास ने मलाकाय सूर व मलाकाय तुलसी का तुलना का है और तुलसी की पूरा से लेकर विचरने का पूरा प्रयत्न किया है परन्तु हमारा उद्देश्य तुलना द्वारा किसी मलाकाय की बला या लौटा निकालने का नहीं है अपने अपने क्षेत्र में सभी मलाकाय अस्तित्व लौटते हैं। हमारा उद्देश्य तो केवल मात्र कुछ अप्रकाशित तथ्यों की प्रकाश में आना मात्र है। सूर की तथा नन्ददास का कला पर विवेक-आत्म विचार प्रस्तुत करना इस अक्षिपन शौकता का साध्य है जो परे है परन्तु अपने कृत्य कुद्वैत हाथ उत्कर्ष लौट के मार्गदर्शन में कर्तव्यपाठन में अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

भारतीय दूर जन चरन गेरा

होलिये हमने गु. कृपा की और फेड़कर इस पथ पर पग बढ़ा हो दिये हैं।

धुरदास व नन्ददास की जीवन-परिचय

धुर का जीवन परिचय

यद्यपि महाजीव धुरदास के विषय में बने, ग्रन्थों का प्रणयन ही बुदा है और पर्याप्त गर्वेषण भी ही चुका है, और यह कम जान भी जाता है, तो भी यह हृदय का विषय है कि उस महान कवि व महात्मा के जीवन व साहित्य के विषय में इतने विभिन्न मत व विचारों में जा गये हैं कि इस विषय में कुछता पूर्वक व दृष्टिपूर्वक सेना निरन्तर दुष्कर प्रयोग होता है ।

भारत में आज भी धुरदास की जन्मतिथि व जीवनकृत के विषय में अन्धेरे के लिये फाया स्यात् है । पुष्टिमान की मान्यताओं के अनुसार बलरामदास का जन्म वैशाख कृष्णा एकादशी (सितार) अर्थात् १५२५ ई. में और धुरदास का जन्म ३ अर्थात् १५८० ई. में हुआ और उन्होंने गोंयाट पर धुरदास की की जन्म तिथि बनाया था । इसी सम्प्रदाय की मान्यताओं के अनुसार धुरदास महाप्रभु से अकथा में १० दिन लौटे थे और एक गोरवादी विठ्ठलनाथ की तरदास की की धुरदास के समय जाति थे ।

जीवन सामग्री :- धुर के सम्बन्ध में प्राप्त सामग्री के दो रूप हो सकते हैं :

- १- बाह्य साधन के रूप में ।
- २- अन्तः साधन के रूप में ।

बाह्य साधन

बाह्य साधन के रूप में अविगत सामग्री में सबसे महत्वपूर्ण साम्प्रदायिक साहित्य तथा धार्मिक-साहित्य है, जिसमें धुर का उल्लेख हुआ है । धार्मिक-साहित्य में (१) वीरराज वैष्णव की बाली (२) श्री बाली (३) श्री वीरराज की कृत मान प्रकाश जाते हैं । इनके अतिरिक्त धुर के जीवन पर कुछ प्रकाश डालने वाले साम्प्रदायिक सम्प्रदायिक विमोचित ग्रन्थ हैं :

- (१) बल्लभ दिग्विजय
- (२) संस्कृत बाली मणि माला
- (३) जष्ट ज्ञानादृत
- (४) अष्टादश कल्पद्रुम
- (५) अष्टादश कृत-वाचि
- (६) माव-अष्ट
- (७) वैष्णवावा दिनक-पद

६। अष्टादश शास्त्रों के अतिरिक्त जिन समकालीन अथवा पश्चात् मयों के ग्रन्थों में पूरे वा अंशों का उल्लेख हुआ है वे ये हैं :-

- (१) मत्तमा (नामादा) तथा मत्तमा की टीका (प्रियादा)
- (२) मत्त नामावली (ब्रजदा)
- (३) रामावली (ठा० चुरावाचि)
- (४) मत्तमावली (रवि मियाचि)
- (५) नागर अष्टादश (नागरोदा)

जिन ६ विधाधिक ग्रन्थों में पूरे अथवा अंशों में मिला जा उल्लेख हुआ है, वे निम्नलिखित हैं :-

- (१) आर्य मत्तमा
- (२) अष्टादश-अष्टादश
- (३) अष्टादश-अष्टादश

पूर के जोधन पर प्रकाश छावने वाले निम्न ग्रन्थों का उल्लेखनीय है :-

- (१) हाजि रिपोर्ट
- (२) गांधीदादा का अष्टादश है जो अष्टादश अष्टादश अष्टादश
- (३) अष्टादश अष्टादश का अष्टादश अष्टादश
- (४) अष्टादश अष्टादश का अष्टादश अष्टादश अष्टादश अष्टादश

(य) श्री कन्धुओं का मिश्रकन्धु किनादे

(क) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

(ख) डा० रामकुमार वर्मा का हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

(ग) डा० हजारो प्रसाद द्विवेदी का हिन्दी साहित्य

इसके अतिरिक्त उनके आलोचनात्मक तथा लौकिक ग्रन्थ हैं, जिनमें परम्परा के अनुसार वे के जीवन-कृत का उल्लेख दिया गया है।

इस सम्पूर्ण सामग्री के विवेचन से स्पष्ट है कि जयन्त कीर्ति-ज्योति से दिग्गजन्त की सम्प्रमाणित करने वाले हैं। जन्मे काव्य के जीवन की स्थानी अनुकार में तिराहित है। न तो किन्हीं साहित्यिक ग्रन्थ में या न जयन्त कहीं साहित्य साधक के रूप में प्रस्तुत किये जाये जाये ग्रन्थों में ही स्वका निश्चयात्मकता के साथ प्रतिपादन है। आधुनिक आलोचकों ने अपने अपने मत का पुष्टि में जयन्त साधक या हजारों लिया है। हमारे विचार से प्रस्ताव का जीवन कृत निर्धारित करने में वास्तव-साहित्य का प्रामाणिक है। इसके दो कारण हैं -- एक तो सम्पूर्णतः वास्तव साहित्य में भी दिये हुए हुए सम्प्रदाय का धारण बहुत अन्तर के साथ आनिर्वात मिल जाता है दूसरे कुछ सम्प्रदायिक रचनाओं को जोड़कर वे वास्तविक रूप में प्रथम उल्लेख ही वास्तवसाहित्य में है।

जन्म स्थान :- प्रस्ताव की जन्मभूमि के बारे में वार स्थानों की प्रविष्टि है -- गोपाबन्ध, मथुरा प्रान्त में कोई ग्राम अन्तर्गत तथा छोटी। गोपाबन्ध व गोपा द्विग्वा लियर के पुराने नाम है। साहित्य जगत के वंश परिवर्तन वाले पद में पूर के पिता का विवाह स्थान गोपाबन्ध माना गया है। एक डा० पोतम्बर दा मल्लिक ने ग्वा लियर का नाम गोपाबन्ध लिख दिया है और इसे ही पूर का जन्म भूमि माना है। काव्य विधी विहित मन्त्रविनादे से पूर का जन्म भूमि के विषय में लिखा है :-

मथुरा प्रान्त विप्र कर गौरा - गो उतकन्ध मन्त्र दार गौरा ।

इस पद में गोपा स्थान विशेष का उल्लेख तो नहीं है परन्तु इसके कारण पूर के आलोचकों में पर्याप्त प्राप्ति रही है। डॉ० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य

के इतिहास में पुर का जन्म स्थान स्मृति लिखा है । जो श्यामसुन्दरदास ने
 मा अपने ग्रन्थ लिखा था । और साहित्य में पुर का जन्म स्थान स्मृति ही
 लिखा है । स्मृति का पुर का जन्म स्थान मानने की प्राम्ति का कारण पुरदास
 जी का गाँवाट पर रहना है । यहाँ से दो माँ को दूरी पर यमुना के किनारे
 रैणूका जी का स्थान और परशुराम जी का मन्दिर है । यहाँ से कुछ दूरी पर
 गाँवाट है, जो नामा बहुत से हण्डरों के बिन्दु है ।

वार्ता साहित्य के अनुसार पुर का जन्म स्थान सीधा है । चौराजी वैष्णव
 की वार्ता के माव प्रकाश में जो परशुराम जी ने सबसे पहिले पुरदास जी का जन्म
 स्थान दिल्ली से बार कोस का दूरी पर सीधा स्थान बताया था । नई मावप्रकाश
 की रचना पुरदास जी के लगभग १०० वर्ष पश्चात् हुआ था । गौकुनाथ जी के
 समकालीन प्राणनाथ कवि ने मा अष्ट-उत्तामृत में पुर का जन्म स्थान सीधा ही
 माना है । दिल्ली के बास पाँच जहाँ कहीं सीधा ग्राम का नाम नहीं है परन्तु
 दिल्ली पुरा मार्ग पर गल्लमगढ़ के निकट सीधा नामक ग्राम है । यद्यपि वहाँ
 सम्बन्धी कोई स्मारक अब यहाँ नहीं है तथापि वहाँ के लोगों में यह अनुभूति प्रचलित
 है कि महाकवि पुरदान का जन्म उहाँ सीधा ग्राम में हुआ था । इससे साथ यहाँ
 यह भी कहा प्रचलित है कि कर्मजय ने सीधा यज्ञ उहाँ स्थान पर किया था । इन
 दोनों अनुभूतियों से माव प्रकाश वाले सीधा ग्राम की स्थिति तो ठीक बैठ जाती
 है परन्तु दूरी का जो बात का समाधान नहीं हो पाता । दिल्ली के अनेक बार
 ऊड़ने व बसने के कारण भी दूरी में बन जा सकता है, दूरी दिल्ली राज्य
 की कल्पना भी की जा सकती है । तीसरे बात भी दिल्ली के निकटवर्ती ग्रामों
 की दूरी ग्रामक माव के रूप में प्रचलित है । वर्तमान सीधा को पुरदास जी का
 जन्म स्थान मान लेने पर कवि मियाँसिंह वाले मत की भी समर्थि बैठ जाती है,
 कालिये पुरदास जी का जन्म स्थान सीधा व्यरता है ।

१- संस्करण संवत् १९६० पृष्ठ ५५

२- संस्करण संवत् १९४४, पृष्ठ २२२

जन्म तिथि:

शूरदास की जन्मतिथि के सम्बन्ध में मा. वार्तासाहित्य में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। पुष्टि सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार शूरदास की बल्लमाचार्य जी से वा.पु. में १० दिन छोटे थे। आचार्य का जन्म संवत् १५३५ की वैशाख कृष्णा १० उपरान्त ११ रविवार निश्चित है। अतः शूरदास की जन्म तिथि संवत् १५३५ की पुष्य ५ मंगलवार को हुई। सम्प्रदाय के अन्य लोगों से मा. १३ तिथि की पुष्टि होती है। श्री बल्लमाचार्य के वंशज श्री गणपिकाठकार मठ के महाराज ने मा. शूर का जन्म तिथि का एक पद में उल्लेख किया है :-

प्रगटे मा.त शिरामाण राम ।

मा.व. शुक्ल पंचमि अपर दृष्ट बकि कुदाय ।।

श्री हरिकेश के मा.व. शुक्ल पंचमि मा. गणपिकाठकार जी के निम्न वार्ता से मा. १३ तिथि की पुष्टि होती है। श्री नाथद्वारे में शूरदास का जन्मोत्सव श्री बल्लमाचार्य के जन्मोत्सव से दस दिन बाद मनाया जा जाता है।

मि. बन्धुजी के अनुमान से शूर का जन्म संवत् १५४० है। फिर भी विद्वानों ने उक्त की मा. १३ समझा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने शूर पदाब्जों के

शूर पराजय होत यह दर्शन परछ बरष प्रवीन ।

वाले पद के आधार पर शूरदास की त. जन्म संवत् १६२० के आसपास अनुमानित किया है। क्योंकि साहित्य जरी की रचना का. १३ पु. १३ १३ के १३ लेख वाले पद से संवत् १६०७ ठहराया है। शूर निर्णय के लेखों ने अन्तःसाध्य के आधार पर शूरदास का जन्म संवत् १५३५ की ही निश्चय किया है। उन्होंने लिखा है कि बल्लमाचार्य की सेवा प्रणाली के प्रतिष्ठान की स्थापना से शूरदास की रचना का. १३ संवत् १६०२ से से ६३ वर्ष कम कर देने से १५३५ रहते हैं, अन्तःसाध्य से मा. शूरदास जी का जन्म संवत् १५३५ ही सिद्ध होता है।

बहोदा काँले में संस्कृत के आधार की दृष्टि की है महाप्रभु बल्लमाचार्य का जन्म संवत् १६२० माना है । वे बल्लमाचार्य के विषय में जो बातें लिखी हैं वे बल्लम दिगम्बर का ग्रामाधिक है और उसमें उक्त जन्म संवत् १६२२ ही माना है । इसलिए बुरदान का जन्म तिथि कैसा कुछ ही सोचना है संवत् १६२२ ही ठहरती है ।

जाति तथा घर परिवार

बुरदान का जाति तथा घर का नामादग्रहण है । वेदादि पढ़ते कदा जा बुका है, साहित्य उद्योग का घर का संस्कृत तथा तत्प्राप्त साहित्य ग्रन्थ का विषय का और घर उल्लास देते हैं । घर के परिवार के विषय में जैके ग्राम कथन प्रचलित है । जिसका उद्गम साहित्य उद्योग का संस्कृत भाषा पद है, जिसके अग्रामाधिक १५ वर्षों पर कर्ता साहित्य का ही आश्रम उना रोगा तथा हरिराम जी के माय प्रसार में उल्लिखित कथन पर ही कर्तापे रत्ना पड़ेगा । किन्तु विषय आधिक्य में घर को विचारित भाषा का है, उदाहरणार्थ हाट बजारेवर कर्मा उनके गृहस्थ होने का कल्पना कर रहे हैं । परन्तु तत्पक्ष यह कि बुरदान का विचारित नहीं है । घर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जा वे छोटी ग्राम से चार कोप दूर निजी ग्राम में रहने लगे थे, कदा उनके नाम कोष्ट केंद्र, लिख्य, जिसका और गाने बजाने का प्रन्व हो गया था । जिसका उल्लेख हरिराम जी ने मा अपने माय प्रसार में किया है । जिसका उद्गम होने पर उन्हें ही आश्रम में निराश्रित हुए और वे उसका परमाप बहूत दिनों तक करते रहे । तीव्र विरक्त विषयक पद उनके सैन्य विरक्त और शौच की हैं प्रकट करने जाते हैं, इसलिए उन पदों का आधार मानकर उनके जीवन के विषय में अन्यथा कल्पना करना अनुचित नहीं ।

नन्ददा का जीवन परिवर्ध

जन्म, दीक्षा एवं देवगण का उः

कीर्ति नन्दराम का जन्म के जहाँ का रोगा उल्लेख नहीं मिलता है जिसे

उनके जीवन घटनाओं को तिथियों को जोड़ लीट किया गया है। वायुय साक्ष्य में मा इस प्रकार का कोई उल्लेख दृष्टिगत नहीं होता जिसका उदाहरण उ अत तिथियों के विषय में कोई मा जानकर मत नहीं जा रहे। ऐसा दावा में इस कार्य के विषय में जनः साक्ष्य न वायुय साक्ष्य में उपलब्ध तत्सम्बन्ध का कतिपय उल्लेखों का अवलम्ब ग्रहण करके जीवन को प्रमुख घटनाओं, जन्म, दाना, और देशप्रवास के कुछ बिन्दुओं के यथासम्भव निश्चित करने का प्रयास किया गया है।

नन्ददा का जन्म तिथि लिखने का आधुनिक प्रयास करने वाले सर्व प्रथम व्यक्ति को रिवाइंडिंग और प्रतीत होते हैं। उनके घर में नन्ददा का जन्म तिथि १५८५ लिखा हुआ है। कि जा-अ पर उन्होंने यह उचित लिखा है, इसका कोई विवरण नहीं दिया गया है। सरकिंगर के ही अनुसरण पर डा० रामधुमार वर्मा ने मा नन्ददा का जन्म संवत् १५८५ ही लिखा है। मि. पन्थुजी ने कार्य का अविताका ० १६२३ के लगभग माना है। मि. पन्थुजी के इस स्थान का आधार उदाहित सं १६०३ २० का नागरीप्रचारिणी सभा की व. तर्ज रिपोर्टों के अनुसार नन्ददा-सूत जनैकार्य माप। का खनाका ० १६२४ दिया गया है, जिसकी वास्तविकता में कोई जयन्तावना नहीं दिखाई पड़ती। जाकरय रामचन्द्र कुल ने मा नन्ददा का कथितका ० १६२५ या उसके और जागे तक मानने का फल में अपना मत प्रकट किया है।^{१४} आचार्य जी का मत मा उपरोक्त सज पर ही आधारित जान पड़ता है। प्रो० कण्ठमणि शास्त्री ने एक और ती कोकराँजी के इतिहास में नन्ददा का जन्म संवत् १५७० के लगभग अनुमान किया है।^{१५} इसी और जष्टाय (प्राचीन घातां रल्लय) ने संवत् १५६० होने का अनुमान किया है।^{१६} किंतु इन अनुमानों का कोई आधार नहीं दिया है जिस पर विचार किया जा सके। डा० ब्रजरत्न दाउ ने संवत्

१- रिवाइंडिंग और, रिवाइंडिंग और, पृ० ४४२।

२- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० वर्मा, पृ० ५२२।

३- मित्रपन्थुविज्ञान (प्रथम भाग), मि. पन्थु, पृ० २८२।

४- हिन्दी साहित्य का इतिहास, कुल, पृ० १७४।

५- कोकराँजी का इतिहास, प्रो० कण्ठमणि शास्त्री, पृ० २२०।

६- जष्टाय कोकराँजी, पृ० २२ (इतिहासिक दृष्टि से जष्टाय नामक शोधकान्तगत।

वै अनैतर्था माया का रचना काव के यावन्ताऽ में हुई होगी । यदि न
यथन निम्न प्रकार है :-

क्यु गु यावन्ताऽ जात ते मणि ते मदन गोपाऽ १

इसे प्रकट होता है कि अनैतर्था माया का रचना काव के यावन्ताऽ के उस
भाग में हुई जिसमें मृष्य का सम्भावित यावन्ता का बीतने का जन्म होने लगता है ।
उस प्रकार यदि अनैतर्था माया का रचना है समय-मददा का जावु कम ने कम २५
का २५ होने लगे जहाँ न मयाऽ अनैतर्था माया के रचनाकाऽ (१६८४) में २५
वर्ष कम करने पर संवत् १५८८ जाता है । यही तुलसीदास जी का जन्म संवत् मी
है ।^२ किन्तु जहाँ हम यह बुझे हैं कि मददा का जन्म संवत् तुलसी के जन्म संवत्
जहाँ १५८८ के उपरान्त ही हो सकता है । ऐसा संवत् १५८० हो जाता है क्योंकि
हकीम शरीफ रस हृष्टि ने भी ठीक बैठती है कि मददा का जन्मजीन होते हुए मा
तुलसीदास ने होते हैं । अतः मददा का जन्म संवत् १५८० हो ठहरता है ।

मददा का देश-जान काव जी जात करने के लिए माया विचारों में अनेक प्रया
निये हैं । प्रा० कण्ठमणि शस्त्री ने २ और संवत् १६४० के लगभग ^३ काव का देश-जान
माना है और डारो और जं १६४२ में माना है । ^४ अपने अनुमानों के आधार पर
शस्त्री ने कोई कौत नहीं किया है । बा० ब्रजलाल दास ने मददा का देश-जान
अन्तर में समय में होने दिया है और अन्तर का मृत्यु जं १६६२ में हुई था ।^५
किन्तु बावु जी का मत जाना-बत है यदि जं १६६२ में किसी समय मददा का

१- मददा, ग्रन्था-ली, की ब्रजलालदास, पृ० ५२ ।

२- तुलसीदास, बा० गुप्त, पृ० १४० ।

३- काकरोली का हृष्टि, पृ० ११० ग ।

४- अष्टदास (प्राचीन काव) (२-५) कण्ठमणि शस्त्री पृ० १२ ।

५- मददा, ग्रन्था-ली, पृ० २५ (मुद्रिका) ।

मृत्यु के एक पक्ष नहीं किया है। हाँ दोनददाउ गुप्त के मतानुसार नन्ददाउ का मृत्यु ई० १६४३ में पहले होने बाधिये क्योंकि उनका मृत्यु बीरबल के जीवन का० में हुआ था और बीरबल का मृत्यु ई० १६४३ के कारण की लड़ाई में हुआ था।^१ गुप्त ने भी निश्चित अवत का और उक्ति नहीं किया है। श्री प्रमुददाउ मातु के अनुसार नन्ददाउ की मृत्यु अनुमानतः अवत १६०० के लगभग रही होगी, क्योंकि उनके देहावधान के समय चिटखनाथ मा विमान थे।^२ प्रो० कृष्ण देव का भी प्रारंभिक मत है, गोविंदा मा चिटखनाथ जी का मृत्यु ई० १६४२ में हुआ (२०) अवत नन्ददाउ ई० पूर्व अवत १६४० के लगभग ही गोविंदा मा हुए होंगे।^३ हाँ प्रेम नारायण उन्हे लिखते हैं, चिटखनाथ जी का गोविंदा मा अवत १६४२ में और बीरबल का देहावधान अवत १६४३ में होने सर्वमान्य है। अवत नन्ददाउ का गोविंदा मा अवत १६४२ के कुछ पूर्व ही होने बाधिये। अनुमानत के यह अवत १६४१ माना जा सकता है।^४ गोविंदा मा चिटखनाथ जी का मृत्यु अवत १६४२ में हुआ था।^५ अवत नन्ददाउ जी का देहावधान का० अवत १६४१ होने में कोई जगन्माया नहीं मानता है। जन्म दोष। एवं देहावधान का लिखिया पर प्रकाश पाने के साथ साथ, पाँच स्वे गये आधार के अनुसार नन्ददाउ का ऐसा जीवन बारि निम्नलिखित रूप में जानने जाता है।

जन्मपूर्व और निजान ध्यान तथा जाति-कुल :

मत्का० में नन्ददाउ नामक दो मतों का उल्लेख मिलता है। एक के विषय में नामादाउ जी ने केवल इतना लिखा है नामा ज्याँ नन्ददाउ कुछ एक बच्चा निर्माण। पितादाउ जी ने २७ पर एक काव्य की टीका का है, जिससे

-
- १- अष्टाध्याय और उत्तरमध्याय, हाँ गुप्त, १०२६१ तथा कैम्ब्रिज लिटरी बाक इण्डिया माग ४, पृष्ठ १२४
 - २- अष्टाध्याय परिवय, श्री प्रमुददाउ मातु, पृ० १०६
 - ३- अष्टाध्याय के काव्य नन्ददाउ, प्रो० कृष्ण देव, पृ० २१
 - ४- रामपदा-यायी, मुमिका, १०५३, प्रेमनारायण उन्हे
 - ५- अष्टाध्याय पारवय, प्रमुददाउ मातु, पृ० ४२
 - ६- २५२ धौणका की वार्ता

ज्ञात होता है कि ये बरौली निवासी एक मन्त ये और लेता करतक बाबुसेवा में लगे रहते थे । स्पष्ट है ये बरौली निवासी नन्ददास अष्टदास के कवि नन्ददास नहीं हैं सकते । कि ये व्यक्तताया कहे गये हैं और इनके कवि होने का उक्ति तक नहीं है । दूसरे नन्ददास को का रामपुर ग्राम का निवासी कहा गया है और इनके विषय में यह भी कहा गया है कि ये लालापद तथा रक्त-राति ग्रन्थों का रचनामें बहुत थे । श्री नामादास का आशय अष्टदास के कवि नन्ददास से ही था । अतः नामादास को के अनुसार नन्ददास का निवास स्थान रामपुर ग्राम ही ठहरता है जिसे सभी विद्वानों ने एक मत से स्वीकार किया है । सन्देह का विषय है कि का रामपुर ग्राम की स्थिति निर्धारण के लिये अभी तक कोई प्रमाण पुष्ट जायार उपलब्ध नहीं है ।

जाति - कु :

मन्तमा० के कुछ शब्द को लेकर नन्ददास की जाति का अनुमान लगाया जाता है । कुछ शब्द से उक्तका अर्थ या शुभ वास्त्वदीय ब्राह्मण दोनों अर्थ लगाये जा सकते हैं । कु गुर्वार वरित कर ने नन्ददास को कर्नाटिया कान्यकुब्ज कहा गया है । वार्ताशास्त्र में नन्ददास को कर्नाटिया उनाय्य ब्राह्मण माना है । औरों सामग्री के अन्तर्गत कृष्णदास द्वारा रचित मुस्तिफाजों में नन्ददास को सुलवशीय ब्राह्मण कहा गया है । जो सुलीवर रचित रत्नाकरी वरित में उन्हें उनाय्य माना गया है । इन सभी तथ्यों से केवल नन्ददास के ब्राह्मण वर्गीय होने का बात की पुष्टि होती है । इसलिए शिवसिंह शर्मा ने उपजाति के विवाद में न पड़कर नन्ददास को केवल ब्राह्मण कहा है । सम्भवतः ये शुभ वास्त्वदीय ब्राह्मण थे । उनके कान्यकुब्ज होने की पुष्टि किसी भी प्रकार के ज्ञात से नहीं होती । दूसरी ओर प्राणनाथ कवि ने भी जो कृष्णदास निवासी थे और अधिकतर अष्टदासी कवियों के समकालीन रहे जाते हैं, ने भी नन्ददास को कर्नाटिया स्वीकार किया है ।

नन्ददास के माता पिता, स्त्री पुत्रादि के विषय में प्राचीन ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं मिलता । चन्द्रदास अग्रज तुलसीदास नामादास की १३ उचित के आधार पर किसी सम्बन्ध का अनुमान लगाना असम्भव नहीं है । तुलसी का नन्ददास से प्राकृमाव धार्मिकता और शरीर सामग्री दोनों में ही स्वीकार किया गया है । किन्तु नामादास का इस विषय में सज्ज्या मान लेना उचित दोनों रचनाओं के प्रति सत्य विश्वास उत्पन्न नहीं होने देता । नामादास तुलसीदास से अपरिचित थे । ऐसा नहीं कहा जा सकता । और जब नन्ददास के उद्भव में चन्द्रदास का नाम लिया जा सकता है तो तुलसीदास का क्यों नहीं ? यह बात भी विद्वानों का ध्यान आकर्षित करता है । शरीर सामग्री बहुत परवर्ती है और इसमें भी नामादास की भी संकेतित बातों का व्यापक आत्मसात किया गया है । किन्तु अन्य किसी भी शक्ति से इस सामग्री द्वारा निर्दिष्ट तथ्यों की पुष्टि नहीं होती । वे शरीर सामग्री के अनुसार नन्ददास के पिता जीधारास थे और तुलसीदास के पिता आत्माराम के छोटे भाई थे । नन्ददास की माता का नाम क्यों नहीं है । कृष्ण दास नन्ददास के पुत्र माने गये हैं । इसके अतिरिक्त भी कलाश्री में उनके पूर्वजों का नामावली का उल्लेख हुआ है । मूलग्रन्थ चरित में नन्ददास और तुलसीदास का रक्त सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया गया । कदा उन्हें गुणगर्ह ही माना गया है । नामादास द्वारा इस सम्बन्ध में कुछ न कहने का कारण यह माना जा सकता है कि मन्त्रमात्र में नन्ददास का प्रतिष्ठित महत्त्व ही प्रस्तुत किया गया है जिसके अनुसार वे विद्वत्नाथ के शिष्य थे । सम्भव है बुधार्ह का का शरणागति से पूर्व वे रामानन्द सम्प्रदाय में दीक्षित हो । नन्ददास के संस्कृत और माधव ज्ञान से इस बात का भी सम्भावना स्वीकार की जा सकती है कि तुलसीदास और नन्ददास एक ही व्यक्ति से साथ साथ पड़े हो । अतः गुणगर्ह सम्बन्ध का केवल कल्पना नहीं कहा जा सकता ।

उपरोक्त विवेचन से ज्ञात हो गया है कि नन्ददास का जन्म संवत् १५६० ई. में और उनका जन्म एक अच्छे सम्पन्न ब्राह्मण परिवार में हुआ था । उनके माता पिता आदि प्रियजनों के विषय में कोई प्रमाण पुष्ट विवरण प्राप्त नहीं होता

हैं। उनका जन्म स्थान रामपुर ग्राम या परन्तु रामपुर^{पुर} का स्थिति के विषय में आज भी ठीक नहीं कहा जा सकता। इतना ज्ञात होता है कि यह ग्राम ब्रज मयूरा से पूर्व दिशा में कहाँ रहा होगा ? कृष्ण मन्त्रि की दासा होने से पूर्व यही ग्राम में रहते थे। वे एक उद्बुद्ध व्यक्ति थे तथा रक्षिता उनके स्वभाव की विशेषता थी। इस प्रकार कृष्णमन्त्रि रसकृत का पान करते हुए अर्थात् २६४४ वि. में मानवी गंगा पर उनके जीवन की ऐकिक लीला समाप्त हुई।^१

प्रस्तुत बन्धायो मौरदा। व नन्ददा का विभिन्न आधारों पर तुलनात्मक मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। काल के कृष्ण मन्त्रि एवं यद्यपि किञ्च नै किञ्चो उम्प्रदाय में दीक्षित थे, किन्तु उनकी मन्त्रि मावना में शास्त्राधिक दृष्टि का प्रभाव उस क्षण तक नहीं था कि उनके काव्य भावना के स्वाभाविक उन्मेष की वह जागृति कर पाता। अष्टाक्षर के कवियों में मौरदा और नन्ददा तो अपनी काव्य भावना के लिये उन्ने हो विद्वत हैं, जितने अपनी मन्त्रि मावना के लिये। प्रस्तुत शैव प्रबन्ध में मैंने इन दोनों महान कलाकारों के काव्य सौन्दर्य पर पुनर्वहारी हो इनके काव्य का तुलनात्मक व गवेषणात्मक अनुशीलन व मूल्यांकन करने का निश्चय किया।

मौरदा व नन्ददा का के काव्य को परस्पर और भी अधिक तुलनात्मक रूप में करने के लिये यह आवश्यक था कि मैं उनके जीवन कृत, तात्कालिक परिस्थिति, परिवेश तथा प्रवृत्तियों की मा जानबूझ कर अपने निष्कर्ष स्थापित करता। अतः दोनों कलाकारों के काव्य सौन्दर्य को विभिन्न कोणों से परखने का प्रयास किया। नन्ददा और मौरदा का के विषय में जो भी जानकारी उपलब्ध है उसमें अनेक विवादास्पद प्रश्न हैं जो तथ्यों के उद्घाटन में बाधक बनती हैं। परन्तु इस सम्बन्ध अवसरों को छटाकर तटस्थ मान्य से तथ्यानुशीलन करने में हिन्दा आधार को जाना पहिचाना जाती है। डा० हरकल ठाठ शर्मा अन्धकार, हिन्दा

१- नन्ददा, जीवनी और काव्य, जे. डा० मरानीदर उद्ग्रेता, पृष्ठ ५५।

विभाग अलग-अलग विश्वविद्यालय ने पग पग पर मेरा मार्ग प्रदर्शन किया है। उनका को महान अनुकम्पा व आशीर्वाद के कलस्वरूप ही मैं इस शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने में सफल रहा हूँ। इस शोध प्रभाव में प्रस्तुत सामग्री को मैंने नौ अध्यायों तथा उपसंहार शीर्षक के अन्तर्गत बाँटने का प्रयास किया है और बुरदाव व नन्ददास जी कलाकारों की कला की काव्य शास्त्र की कसौटी पर परखने एवं उनके गौरव की विज्ञानों के सफा प्रस्तुत करने की चेष्टा की है।

प्रथम अध्याय:

ये भूमिका, विषय का विश्लेषण, विषय की सीमा, उपलब्ध सामग्री, विषय की परिधि तथा शोध की दृष्टिकोण व शोध का स्वरूप व मौलिकता का अध्ययन किया गया है।

द्वितीय अध्याय:

ये बुरदाव जी तथा नन्ददास जी के काव्य का परिचय एवं उनके काव्य की पृष्ठभूमि का अवलोकन कराया गया है।

तृतीय अध्याय:

ये नन्ददास जी की काव्य-कला का रूप मान, रूप, अङ्कुर, स्वर व काव्य की माया का प्रस्तुतिकरण है।

चतुर्थ अध्याय:

ये बुरदाव जी की काव्य-कला का रूप, मान, रूप, अङ्कुर, स्वर व माया की दृष्टि से प्रस्तुत है। इस अध्याय के अन्तर्गत दो मुख्य भाग हैं। पहला भाग कृत और उनका साहित्य तथा भाग दोनवाला गुप्त के अष्टाक्षर और बल्लभ सम्प्रदाय दोनों ग्रन्थों से उनके पर्याप्त मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ है।

पंचम अध्याय:

ये दोनों कवियों की काव्य-कला का माधुर्य व रूप की दृष्टि से तुलनात्मक वृत्त

प्रस्तुत किया गया है ।

प षष्ठ अध्यायः

ये भूरदास जो व नन्ददास जो का कला का उल्लेखों में कन्दो की दृष्टि से तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । दोनों कलाकारों की उल्लिखित व समृद्ध भाषा की माधुर्य के साथ, उनकी प्राबल्य तथा परिष्कृत रूप का उद्घाटन करना ही मेरा लक्ष्य रहा है ।

सप्तम अध्यायः

ये शब्द सम्पत्ति, लोकोक्ति, और मुहावरों के आधार पर भूरदास व नन्ददास जो की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन है ।

अष्टम अध्यायः

ये दोनों स्थान कवियों के काव्य साम्प्रदायिक विवरण प्रस्तुत रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

नवम अध्यायः

ये भूरदास व नन्ददास की कला का पृष्ठभूमि का अध्ययन है । इसी परिच्छेद के साथ अन्त में दोनों का हिन्दी साहित्य में स्थान निर्धारित किया गया है ।

और मैं प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में भूरदास जो व नन्ददास के हस्तिलेख, काव्य, विद्वान्त, आचार्यत्व तथा प्रभा का निरूपण शोध की वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करते हुए तटस्थ भाव से अपना मान्यताएं प्रस्तुत की गई हैं । मेरा कोई फायदा या व्यापनाओं में नहीं है, क्योंकि जो प्रबन्ध का उद्घाटन समझा जाना चाहिये ।

द्वितीय अध्याय

पुरावा और नदवाउ का काव्य

काव्य और कला के सम्बन्ध में विभिन्न मत :

पाश्चात्य काव्य ज्ञानार्थ में काव्य को कला कहा गया है। काव्य को कला कहने का मूल कारण यह है कि काव्य में ही व्यक्ति की वैसा ही उत्कृष्ट दृष्टि होती है वैसा कि चित्र, मूर्ति और संगीत आदि कलाओं में। मानव में व्यक्ति की उत्तम अभिव्यक्ति थी, भावना व कल्पना उस की सम्पत्ति थी। जब उसने पत्थर को लेना उसे कोठ-बाँट कर उस पर अपने भावों का प्रकाशन किया तो वह मूर्तिकला कहा गया, जब उसने लकड़ी भावों को कागज या पदों पर दृष्टि का द्वारा रंगों के माध्यम से प्रकृत किया तो उसका नाम चित्रकला पड़ा, जब उसने नाद, छन्द, गान, पद-गति, अंग-गंगा और नतन आदि के माध्यम से भावों को व्यक्त किया तो संगीत कला का जन्म हुआ और इसी प्रकार जब उसने अपने मनोभावों की व्यक्तिगत शब्दों और रन्धों में किया तो कविता बना। उसके सम्बन्ध यह है, यदि केवल भावों का है। बेंन जान्सन के अनुसार काव्यता व चित्र एक प्रकार की कलाएँ हैं और दोनों का अनुकरण में सम्मिलन है, कविता शब्द, चित्र ही तो चित्र एक कविता।^१

-
1. Poetry and picture are arts of like nature and both are busy about imitation. It was excellently said of Plutarch- Poetry was a speaking picture and picture a mute poetry--
Discoveries- Loel-Criticism-1931 edition, page 114

हाइडेन के अनुसार कविता और चित्र में केवल रङ्गों का भेद है। कविता में जो नाम शब्द करते हैं वही चित्र में रङ्ग। टाउल्टाय, प्रोपे, वाग आदि सभी विचारकों ने काव्य को कला ही माना है।

भारतीय परम्परा में काव्य का गणना कलाओं में नहीं किया था। दोनों का क्षेत्र अलग अलग रखा गया है। कला में जीति और शिल्प दोनों की स्थिति माना गई है।^१ पर काव्य का क्षेत्र उससे कहीं अधिक व्यापक बताया गया है। कला-काव्य की पार्षक है, उ का एक अंग मात्र है। नाट्यशास्त्र में मरतण्डि ने सभी विधाओं, कलाओं और शिल्पों को अंगगो मात्र कहा है।^२

आचार्य माधव ने मा काव्य को कला में प्रयुक्त हो बताया है। उनके मत में कलाओं में सम्मिलित होता जाता है।^३ तात्पर्य यह है कि संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य को कला नहीं कहा गया। उसका क्षेत्र कला से कहीं अधिक विस्तृत और अधिक गम्भीर माना गया है।

आधुनिक विद्वानों में कुछ तो काव्य को कला मानने लगे हैं और कुछ लोग काव्य को कला से स्वतन्त्र रचना मानते हैं। डा० गुलाबराय काव्य को न केवल-शब्द-व-वर्ण-है-परन्तु-संगीत-मा-उपलब्ध-र-उपकरण-है +-कर्मवत्त-कि-अन्तर्भावित-की-प्रकृति-न-वर्तमान-करने-में-बहु-योग-देता-है-क्या-उ-में-रमणीयता-क्या-रमणीयकला-की-है-के-मुट-देने-में-अन्तर्भाव-होती-है-+----- कला मानने के फल में प्रतीत होते हैं। क्योंकि वे काव्य और कला की आत्मा एक मानते हैं।^४ आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के मत में काव्य का क्षेत्र कला से

१- कला शिल्प जीति मेरे च

अमरकोष ३।१६८

२- न कलायि - ता विद्वत्
न विद्या न ता कला

नाट्यशास्त्र १।११४

३- वैकाव्यं कलायु च

काव्यजाल १।२

४- काव्य में जो आत्मा की मौलिक अभिव्यक्ति की प्रेरणा है वह हीन्दव्यमया अनुल्ला-
त्मक होने के कारण अपना प्रिय स्थिति में रमणीय आकार में प्रकट होती है।
यह आकार वर्ण-रामक रचना-विधाओं में पूर्ण होने के कारण प्रिय हो
जाता है।

मिन्न है । उनका विचार था कि काव्य की रचना कलाओं में करने के फलस्वरूप ही काव्यमें वैविध्यभाव, कलाभाव और अपिचर्यवतावाद को निकले । निष्कर्ष यह है कि काव्य और कला दोनों का प्रयोजन रसानन्द को प्रतीति है और दोनों का रूप सौन्दर्यमयी अपिचर्यवृत्ति है । जिस प्रकार कला का धनिष्ठ और अनिवार्य लक्ष्य सौन्दर्य से है उसी प्रकार काव्य का ध्येय रमणीयता से है ।

काव्य का रूप

काव्य के उपकरण शब्द व अर्थ हैं । शब्द और अर्थ का सम्बन्ध धनिष्ठ है । निरर्थक शब्द का अस्तित्व व्यवहार से बाहर एवं शब्दहीन अर्थ का धना स्वीकार के मन में मूले ही नहीं, उसे काव्य में स्थान नहीं । दोनों में वे अलग अलग हैं, वास्तव में नहीं । काव्य के वाक्य न केवल शब्द व अर्थ हैं बल्कि अंगित भाव उसका ही उपकरण है । कविता को व्यञ्जना श्रुति की भावना पर अधिकार करने में बड़ा योग देती है तथा उसमें रमणीयता तथा रागात्मकता दोनों के पुट देने में सहायक होती है ।

काव्य के अंग और उद्देश्य:

आार, अर्थ, अलंकार और छन्दों के आधार पर रचना अनेक प्रकार की होती है । कविता में भावों और रसों के पैदावर्धन और पुनर्दाय अनेक प्रकार से होते हैं । यदि सामर्थ्य, दण्डों और केवल अलंकार पर जाग्रह करते हैं तो

१- काव्यलंकार १, १२-१५ ।

२- काव्यादर्श २, १, २, २४३, २, २७५

३- कविप्रिया ५, १-३ ।

वाक्ताँ रीति पर, कृतक^१ विक्रीकित पर, जानकदक्कन^२ और अमिनवगुप्त^३ अधनि पर । तथा मरुतुनि^४ एवं विश्वनाथ^५ रीति पर । आवादे मम्मट^६ के मतानुसार जो रचना दोष रहित और गुणवत्ता हो, जिसमें कहीं कहीं जलकार न हो - वह काव्य है ।

जिस प्रकार चित्र, मूर्ति और मन्त्रजाल देश की संस्कृति विचारों और भाषाविक्रमों का चोखे हैं, उनमें देश की संस्कृति और उन्नति का दृष्टिगत होता है, उसी प्रकार काव्य भी देश और समाज की विशेषताओं का प्रतिबिम्ब होता है । प्रत्येक देश के काव्य का दृष्टिगत : उस देश की संस्कृति की दृष्टिगत से सम्यक् होता है और जो देश के सांस्कृतिक मान्य, जलकारिक विचारों, रीतियों और मूल्य मन्त्रों से प्राप्त होते हैं । काव्य की रचना स्वतन्त्र प्रभाव होती है तथा जो देश द्वारा कृत्य रचित, सुन्दर की प्राप्ति होती है । अतएव अत्यन्त उच्च दर्शन, गणित, न्याय, विज्ञान आदि से अधिक है, तथापि विद्वान् जानते हैं कि गल्प और उन्नत देश का सुन्दर और व्यापक अत्यन्त उन्नत होता है ।^७ हृदय से हृदय को प्रेरित अभिव्यक्ति को दायित्व कहते हैं अतएव सुन्दर से उन्नत निकट समान्य है । तस्मिन् ता उन्नत समान्य समान्यता से है, फिर भी वह सर्वव्यापक है और कृत्य को समाहित कर जो कि उन्नत की प्राप्ति कराता है, व्यक्तिकता की समाजोपयोगिता बनाता है ।

१- काठकालार प्रवृत्ति १, २, ६ ।

२- विक्रीकित जीवित १, १० ।

३- अकालाधिक १, ३ ।

४- नाट्यशास्त्रम् : न हि (सादृशे) करिष्यदप्यस्यः प्रवृत्त ।

५- साहित्य दर्पणः काव्य रसात्मक काव्यम् ।

६- काव्य प्रकाशः तद्वदोपां सवार्थी सगुणावच्छिन्नं कृति पुनः तथापि ।

७- साहित्यालोचन, पृष्ठ २१७ नवीजाकृति १००६ वि०

बाराह ये है कि काव्य का भी अपना शिल्प होता है । चित्र मूर्ति आदि का उद्देश्य जिस प्रकार अभिव्यक्ति है -- रंग आदि का चित्रण प्रदर्शन नहीं, उसी प्रकार काव्य का प्रयोजन भी रसानन्द की दृष्टि है । चित्रमूर्ति आदि का स्वरूप का कर्तव्य उपस्थित करते हैं तो काव्य का शब्द चित्रों तथा दृश्य नाट्यों के द्वारा पात्रों को आकार कर देता है । चित्र मूर्ति और कल्प के लिये काट-काटे और कोश आवश्यक हैं, वही काव्य के लिये भी मावाक्य रूप शब्दावली, पदछादित्य, गुण वर्णन आदि वाक्य प्रयोजन अपेक्षित हैं ।

नन्ददास का काव्य में पृष्ठभूमि

नन्ददास अपने शब्दों में शब्दशिल्पी हैं । ध्वनियों की अव्यंजन और शब्दों की अन्तरात्मा का उन्हें नियन्त्रित ज्ञान है । इसलिये शब्द चयन और शब्द अर्थान्वयन में वे पर्याप्त प्रसन्न और अवैष्ट हैं । अभिव्यक्ति को गरिमामयी बनाने के लिये समा साधन उन्हें प्रस्तुत हैं । अर्थान्वय शब्दों के चयन और उनके अर्थान्वय, वाचस्पति चित्रों के कुछ विधान, सुभाषितों की कोशितियों के ठीक प्रयोग, वर्णनार्थ के मावाक्यरूप द्वारा निरूपण और रसान्वय नन्द नियोजन में वे विद्वत् हैं । ज्ञानवाद युग में हम फल को जिस कोटि में रखते हैं, मध्यमकाल में फल की उच्च स्थान के अविकारी हैं । अन्तर केवल इतना है कि ज्ञानवादोपर काट में है कवि फल की मोति उनका पान-योग्य नहीं होता है । शिल्प और कल्पना ने प्रति जाग्रत होने पर भी मावाक्य कल्पने नहीं पायी है । वे ही तो प्रत्येक युग का महान रसाविद्व कवि बाल्या होता है, किन्तु नन्ददास के काव्य में यह लक्ष्य इतना प्रसन्न है कि और कवि गढ़िया वाली उक्ति उनका के साथ निरूपण होगई है । यह अविविधित है कि नन्ददास केवल कवि ही नहीं, काव्य रीति के ज्ञाता आचार्य भी हैं । अतः अभिव्यक्ति शैलिके उन्हें कदापि प्रिय न था । फलतः उनके काव्य में जहाँ हमें उस का हृदयालादकारी उच्चलन मिलेगा, वही उग्रिण शैली की प्रौढ़ता भी अपने वर्णनार्थ को प्राप्त होती हुई दिखाई

देगा । कस्तुरि अमिष्यवित की जा मला खातुमव ना अनिवाय अमिष्य है ।
 नन्ददा । के रचना को में शिल्प शौन्दर्य को रही दृष्टिकोण से देखना चाहिये ।
 नन्ददा । के काव्य में शिल्प शौष्ठव अपने पूर्ण श्रेष्ठ पर है । कवि ने स्वयं
 स्वीकार किया है कि उसने अत्यन्त परिश्रम से काव्यमाता का ग्रहण किया है ।
 लोटी लोटी मार्कोमियो को संगीत की लय में लय लुलता से झाला गया है कि
 यिन् वस्तुतः ही जाता है । शिल्प की कृष जागरूकता के कारण मायाकुप
 काताकरण का निर्माण हुआ है । अमिष्यवित की गफलता ने मरु में निहित
 कारणों का दानवीन करना उमारा यही अमिष्य शी है, किन्तु वह स्वयं
 फेला कि एकल गायक होने के कारण माय और माया के अन्तर्गत नन्ददा
 मलिमाति परिचित है । अपने अमर को वाक्यवृत्तियों में न चला, किन्तु
 रासपदाव्यायी मधुरगीत रूपमरी, रसमरी, विरहमरी, और व्यामर्गादि
 में कवि ने इस अमर को निमाया है ।

नन्ददा । के काव्य में जागत वैविध्य है : अमिष्यवित का यह नानात्व
 नन्ददा । के काव्य शौष्ठव का अर्थन करने में त्रि प्रत्यक्ष सावक रहा है, यही
 के सीमांसा करना उमारा व्यय है । यही यह जात्य है कि प्रत्यक्ष अम्याय
 के लु कल्वर में मणि तिल की उमा मीगमा विदग्धताएँ और कल्वर प्रत्यक्ष करना
 अममव नही है । परन्तु नन्ददास के काव्य शौष्ठव की जितनी प्रशंसा गो हम
 करे वह कम ही है ।

नन्ददा । ने प्रबन्ध और सुतक दोनो काव्य में अपने रचनाओं
 का प्रणयन किया है । सुतक में गेयपद और प्रबन्ध में छण्डकाव्य कवि की
 विशेष प्रिय रही हैं । पुराण-साहित्य-विशेष तः नामदमागक्त - है अत्यधिक
 प्रमा कि होने के कारण नन्ददा । के जात्या न काव्य काव्य साह की कर्षाटी
 पर कू नही उतरते । पुराणों का जिया से कवि के अनेक प्रबन्ध प्रमा कि है ।
 माया । दत्तमस्त्ये ती नी मलमागक्त के प्रयत्न स्कानेजिरी, अम्यायी का प्रीयः
 छन्दानुवाद हो है । अतः जो सास्त्र का कर्षाटी पर लुना समावीन प्रतीत

नहीं होता । उसे न लण्डकाव्य माना जा सकता है और न ही महाकाव्य । महाकाव्य ही व्यापक जीवन दृष्टि हमें नहीं है । रक्तवर्षा, शिलाचरणा, अग्नि प्रयोग, सुगठित कथा-कथु आदि का दृष्टि से भी ही महाकाव्य नहीं माना जा सकता । पारश्वत्य दृष्टि से क्या कहें, ऐसी व उद्देश्य आदि की उदात्ताता का इसमें संदेह नहीं है । मरुतः पुराण साहित्य महाकाव्य और लण्डकाव्य किसी के अन्तर्गत नहीं आता । हीनतान का रक्तवर्षा का निकलनशील महाकाव्य का पदवा दे देना पुराण बात है । वैष्णव के लुत्तिपरक अन्धकारों में क्या का क्रम प्रायः टूट जाता है । साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के माफ़े में यह तत्त्व गणन पड़ जाता है, बुद्धितत्त्व का वाक्यिक भाव का उमरों का अवसर ही नहीं देता, वर्णन का एक रसता आनन्द का वाक्यिक करता है, ऐसी स्थिति में ही महाकाव्य बने माना जा सकता है । यह तर्क पुराण के एक स्तम्भ के प्रारम्भिक अन्धकारों का संकेत है, जिसे पुराणांश से अधिक और कुछ नहीं कहा जा सकता । रावण-व्यापक उदात्ताचरित और गोविन्दन जीला भी काव्य रूप की दृष्टि से इसी श्रेणी में आते हैं ।

अनेकार्थ ज्वनिमयों स्पष्ट प से एक कोष ग्रन्थ है जो काव्य अथवा उल्लिखित साहित्य की कोटि में नहीं आते । ज्ञान के साहित्य की दृष्टि से तर्क इस रचना का महत्त्व अतीतम्भ है, कवि के साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का समन्वय है यह ग्रन्थ कदाचित् उपादेय सिद्ध हो सकता है, किन्तु ऊर्जा के साहित्य (LITERATURE OF POWER) की दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्त्वहीन है । इसी प्रकार नाम्माला में क्यापि कोष के साथ साथ क्या भी अनुगमन है, किन्तु इस रचना का भी साम्प्रदायिक प्रभाव ही ज्ञानप्रेरक साहित्य के अन्तर्गत रहने का वाक्य करता है । इस रचना में कवि का प्रसन्न उद्देश्य पर्यायवाची शब्दों का प्रस्तुत करना है । क्या यही आनुषंगिक प में आई है । अतर्कितता यह ग्रन्थ भी उल्लिखित साहित्य की परिधि से दूर जा पड़ता है । जो दृष्टि सिद्धान्त पर्यायवाची

में मा कथा तत्त्व इतना गौण है कि अव्यति टूट गई है । जहां कि नाम से ही स्पष्ट होता है, यह रचना रास के मूल में अवस्थित दार्शनिक सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिये लिखी गई थी । दर्शन का आविर्भाव होने के कारण यह कृति भी काव्य न होकर शास्त्र बन गई है । इस प्रकार रघुमंजरी मा एक शास्त्रात्मक ग्रन्थ है । उदाहरणों में काव्यात्मकता होती है पर मा इसे साहित्य का कौट में परिगणित नहीं किया जा सकता । इस प्रकार ऋदवाय को बहुत ही रचनाएं एक साहित्य के अन्तर्गत नहीं आती ।

एक ऋदवाय के निम्नलिखित आख्यान काव्य का शेष रह जाते हैं । पहिले विरह मंजरी को लीजिये । शास्त्रात्मक दृष्टि से इसके प्रारम्भ में कोई मोला-चरण नहीं है । बोजस में कथा को अवतरण प्रथम शब्द से ही कर दा गई है, किन्तु बाद के शब्दों में कवि ने अपने पाँचत्य का जो प्रदर्शन किया है, वह उन्मा अप्रयोगिक तथा निरर्थक है । कथा का अस्वामिबद्धता अपना चरम सीमा पर लौ तब पहुँचता है जब दा पासात्र में बारहमासे आकर वह मा समाप्त हो जाता है । प्रत्येक माय में विरहणी का कथक व्यथा के जो चित्र उपस्थित किये गये हैं, वह पूर्वोपर सम्बन्धित हैं । यदि रचना का प्रबन्ध यहाँ न टूटा होता तो हम इसे सण्डकाव्य मान सकते थे । किन्तु य-तु में इतना शेषित्य है कि ही न तो पूरा प्रबन्ध हो माना जा सकता है और न स्वतन्त्र सुतक काव्य हो । हमारे विचार में यह एक छाणग्रन्थ है । प्रारम्भ में विरह के चार प्रकार बताये गये हैं । प्रथम तीन पाँ के सम्बन्धित उदाहरण छाणों के अनुरात हो दिये गये हैं किन्तु देशान्तर विरह को स्पष्ट करने के लिये कवि ने पूरा बारहमासी कथ दिया है । अतः यह बारहमासा देशान्तर विरह के छा पा का अर्थ है । इस प्रकार मध्यकालीन काव्य में प्रचलित बारहमासा काव्यों का मोति यह मा एक बारहमासा काव्य है जिस कवि ने अपने शास्त्रात्मक ज्ञान को प्रदर्शित करने का साधन बनाया है ।

दूसरी रचना के स्थापनागार्ह । जो विषय में यही इतना ही साक्ष्य है कि अठारहवें शब्दों की एक छोटी सी रचना में कथा का पूरा कर्माणि विचित्र न हो चुका है । प्रत्येक शब्द पूर्वापर प्रेम में स्थिति में है, जिससे कथा का अन्तर्भाव वर्तमान है । नन्ददास का काव्य कृतियों की जीवना करते हुए हाथों में धारण करने में ही एक बड़ा पद माना है । इन अमन्य में हमारा निम्न मत है कि प्रथम प्रथम टेक से युक्त अठारहवें शब्द में स्पष्ट रूप से विभाजित रूप काव्य को पद मानना समीचीन नहीं है । टेक की विभिन्नता ही यह प्रमाण देती है कि नन्ददास ने ही बड़े पद के रूप में नहीं लिखा है । अपूर्ण रचना एक छंद में गीत या गीत है । रचना में कर्तु या विधान इतना स्पष्ट है कि उसके प्रारम्भ, यत्न, प्राप्त्यन्त, निष्कर्ष और फलान्त सब ही दृष्टि में आ सकते हैं । यथा में ही प्रतीति अवश्य है, किन्तु एक ही आवश्यक विवरण नहीं होता है । कर्तु का अमन्य कृष्ण के जीवन की एक घटना से है, फलतः एकदेशानुसारिता में स्पष्ट है । अतः विद्या की दृष्टि से यह रचना सुरदास के प्रथम प्रसंगीत के समकक्ष नहीं बैठाई जा सकती ।

कमलि माल की पौराणिक आल्यान पर आधारित एक अमन्य प्रबन्ध रचना है । कथा का पूरा ही रचना में ही विचित्र न हो चुका है । कालिका नारी के वर्णन में योही ही शिथिलता अवश्य आ गई है । कथा के विभिन्न प्रसंगों में कवि की कल्पना मीमांसाओं के मयूर जैसा ही कथा की रमणीयता में अतिरिक्त हुई है । इस रचना का वर्णन विषय एकदेशीय है । रचनाकार की दृष्टि से ही यह रचना उत्तम प्रद है । कथा का विधान इस कुशलता से हुआ है कि उसके विधान की उपा अन्तर्भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । फलतः यह रचना ही साक्ष्य की कहीं पर सुन्दर पौराणिक छंद सण्डकाव्य ठहरती है ।

रामनारी की विधानों ने नन्ददास का एक प्रसंगीत प्रबन्ध रचना माना है । श्री परशुराम चतुर्वेदी ने इसे प्रेमाल्यान काव्य मानते हुए इसे विद्यावली, मधुमांजली आदि की परम्परा में प्रतिष्ठित किया है । श्री हरिकान्त ने ही मधुमांजली

प्रमात्यान ही माना है। किन्तु हमारा विमर्श मत है इसके कथानक की भारतीयता उपकथो के अभाव, प्रेम के स्वप्न की मौलिकता तथा सावक-साव्य पैर के कारण इसे प्रमात्यान नहीं मानना चाहिये। अन्य प्रमात्यानों के विरुद्ध रचना न तो महाकाव्य है और न महाकाव्यात्मक प्रभाव है। इसका उषु प्रबन्ध अनेक स्थलों में दृष्टि है। मान, राव, आदि के अन्त में कवि इतना लम्पय हो गया है कि कस्तु शिथिल हो गई है। बाद में परम्परागत पञ्चतुर्गोत्रों का वर्णन किया गया है, जो तो कथा को बहुत ही एक दम हट जाता है। रचालिये जो लोग यह मानते हैं कि उपमरों में कथानक में आवश्यकता से अधिक कितार नहीं दिया गया है, उन्हें चाहिये कि रचना का पुनरीक्षण कर पञ्चतुर्गोत्रों में केवल-त्व का अनुसंधान करें। नर शिखर ना मिलाओ रों के वर्णन से इसके बहुत कुछ पर निश्चित रूप से बाधात पहुँचा है। मध्यकाव्य में जो शोचग्रन्थ निकले हैं, उनमें से कई प्रबन्धों में इस रचना को मध्यकाव्यीन लण्डकाव्यों में परिश्रेय में रत्नर देता गया है। उसमें शन्देह नहीं कि उपमरों में लण्डकाव्य के अनेक तत्व विद्यमान हैं। उसका कथानक रमणीय है। इसका घटना अपने आप में पूर्ण है, विषय की दृष्टि से इसके एक देशीयता है, रचना में भावना का प्राधान्य है, कस्तु से घटना स्वच्छ और अनाच्छि है, एक ही घटना पर बल दिया गया है, अनाकर्षक प्रयोगों का उपेक्षा का गई है, आकार उषु है, इन्हीं की दृष्टि से अपूर्ण रचना में एकपता है आदि आदि। परन्तु यह मा स्मरण रखना चाहिये कि विविध वर्णनों के बाव में कस्तु शिथिल हो गई है। हमारे विचार से इसे उषु आल्यान काव्य ही कहना अधिक उचित होगा। इसकी रचना का कवि ने सिद्धान्त विशेष की पुष्टि के लिये की है, उपपत्ति रव का रव का अर्थात् मानते हुए इसके प्रमाण स्वरूप आल्यान प्रणीत किया गया है। विषय और शिल्प की दृष्टि से यदि इसे मा कोई लण्डकाव्य कहता है तो वह भी गलत नहीं है।

मरगीत के काव्यरूप पर तीन दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। १- लण्डकाव्य की दृष्टि से। २- गीतिकाव्य की दृष्टि से। ३- सुवक्त्र काव्य की दृष्टि से।

कहवाते हुए गीतियों को गाता जो हृदय प्रस्तुत करा दे गये हों उनमें से प्रत्येक का सम्बन्ध कृष्ण के जीवन की किसी विशिष्ट घटना से है । इस प्रकार इन हृद्यों में किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है । अतः जबतक आप ने माव ध्वनि से उम्मा होने के कारण ये हृदय दुःख बन गये हैं । मंत्रगीत का प्रबन्ध तो वहाँ लिखिल हो जाता है जहाँ उम्मा मीन हो जाते हैं । मावावेश में कथित विभिन्न हृद्यों में क्या निविमान हो जागे नहीं देखती । तथा का उद्बुधित पृष्ठ मूर्ति का माव रचना में समाप्त है । श्रीमदमागयत का अध्ययन करने का उपरान्त हो जहाँ से मन प्रकृति का परिकल्पना करने में समर्थ हो पाता है । मंत्रगीत की कथा हस्त लिखित है कि उसे एकदेशीय भी नहीं कहा जा सकता । अतः इसे सण्ठानामान्ना भी प्रान्ति है ।

गीतिकाव्य का दृष्टि में विवेच्य रचना का परिकल्पना करने पर सात होता है कि प्रस्तुत रचना में उम्मा धिया के अनेक तत्त्व प्रियमान है । गीत में मावावेश का होना अनिवार्य है । मंत्रगीत में हमें गीतियों की उन्मिता में हमें माव का उद्घाटन वेग देखने को मिलता है । प्रियविरह में गीतियों का हृदय प्रकीर्ण होकर नैनो के माध्यम से निकलता है । विरह के इस आवेश में सभी उपाधंपरत हृद्यों को एक अनिवार्यता का है । गीतिकाव्य के अन्य तत्त्व गीतात्मक को भी सम्पूर्ण रचना में प्रकृत स्थान प्राप्त हुआ है । अनुप्रासों की संख्या से और हृद्यों में कोमल व्यंजनों की निबधना से सम्पूर्ण काव्य गीतात्मक हो गया है । गीतात्मिकता के कारण हो गायकों ने इसे गीत बताया है । अब प्रश्न यह उठता है कि यह एक गीत है अथवा गीतसंग्रह ? हमारे विचार में यह एक गीत ही नहीं माना जा सकता । क्योंकि जो एक गीत मानने से तो गीतिकाव्य का मान्य स्वरूप ही लुप्त हो जायेगा । समग्रतया में गीतिकाव्य के लिये आवश्यक मावास्थिति नहीं है । लिखितता का गुण भी गीत में होना आवश्यक है । यदि इसे एक गीत माना जाय तो इसका गायन पांच छः फुटों के कम उम्मा में नहीं हो सकता । गीतगीत उम्मा हो

संज्ञा है जैसा कि हमने प्रमाण है । मध्वगीत को कई विद्वान लौकगीत
 को मानते हैं । इनके मतानुसार जब प्रवेस में प्रचलित लौकगीत की जाँच हो
 पर ही नन्ददा ने इस रचना का प्रकाशन किया है ।^१ किन्तु ग्रन्थ के प्रारम्भिक
 दार्शनिक अंश इसे लौकगीत मानने में बाधा उपस्थित करते हैं । बुद्धित्व का
 आश्रित्य गीत का नाशक होता है । मध्वगीत के प्रारम्भ में तर्कशास्त्र का आश्रय
 लेते हुए सांख्य वेदान्त और मायावाद का सफाई ऐसे बौद्धिक ढंग से हुआ है
 कि उसे गीतिकाव्य कहना इसके परम्परागत स्वरूप पर कुठाराघात करना है ।
 इस कारण इसे गीति अथवा गीतिशृंगार कहना नहीं किया जा सकता ।

मध्वगीत के सफाईकार्य का विवेचन करते हुए यह अनुमान होता है कि
 इस रचना का प्रारम्भ अनेक स्थानों पर घटित है । मूलतः अष्टादशे शताब्दी के
 बाद ही तो प्रबन्ध समाप्त हो जा जाता है । माध्व की अविधि परवर्ती शब्दों
 में बाह्य वर्तमान हैं, किन्तु मध्व की अविधि की अवस्था नहीं है । मध्व की
 शक्त के दर्शन तो अपने ही स्वरूप में केवल प्रारम्भिक शब्दों में ही होते हैं
 उसके बाद उद्धव गोपियों के तर्क चिन्तकों से मध्व की शक्ति न होकर विचारों
 की शक्ति है । जिस प्रकार प्रारम्भ के शब्दों की शक्ति नाटकीय शैली में
 उद्घाटित हुई है वही प्रकार विचारों के प्रस्तुतकरण की शैली भी नाटकीय
 है । श्रुति, जीव, ब्रह्म, माया, कर्म आदि के विषय में उद्धव ने उद्घाटित
 स्थापना की है और गोपिकाओं ने नवल निर्दल तर्कों का आश्रय लेकर उनका
 प्रत्याख्यान किया है । अतः प्रारम्भिक अष्टादशे शताब्दी में यदि कोई प्रबन्ध
 है या तो वह विचारों का प्रबन्ध है और प्रबन्ध काव्य के परम्परागत स्वरूप में
 मध्व के प्रबन्ध के लक्ष्य को ही सामक्या नहीं है । स्पष्ट है कि शास्त्रार्थ अर्थ में

इसके प्रारम्भिक अंशों में मा प्रबन्धात् कला नवी' है । वस्तुतः बात यह है कि इस रचना का सम्बन्ध जिस प्रकरण में है, वह हिन्दी साहित्य में बहुत प्रख्यात है । अतः संस्कारों मन संकेत मात्र पाकर सम्पूर्ण कथा का अनुमान कर लेता है । अन्तर्गतवा यह ग्रन्थ सुस्तक काव्य की कोटि में जाता है । अन्तर में बहुत है कि रचना के आरम्भ और अन्त में कतिपय निम्न सुस्तकों की रचना की गई है और मध्य मार्ग में अन्विष्ट सुस्तकों की प्रवाहता है । इसीलिये शुरू के प्रसंगात् में इस रचना का काव्य रूप थोड़ा भिन्न दिखाई पड़ता है ।

नन्ददास का पदाच्छो निरचित रूप में सुस्तक काव्य के रूप में लिखित है । जैसा कि विदित है कि बल्लभ सम्प्रदाय के अष्टयाम जैसा विधि में नन्ददास शृंगार के पद गाया करते थे । अतः पदाच्छो में पद नन्ददास द्वारा भिन्न भिन्न अवसरों पर गाये गये हैं । मावाधेय, मावा निवात, लीला पत्ता, लीलातपकता आदि की दृष्टि में नन्ददास का पदाच्छो साहित्य का गीतसाहित्य है । और इस रूप में काव्य परम्परा में बड़े प्रदान, परमानन्ददास आदि महत्कवियों के पदों की श्रेणी में रखने के योग्य है ।

उपरोक्त विवेचन से सिद्ध है कि नन्ददास ने चार प्रकार की रचनाओं का प्रणयन किया है । पहले प्रकार की रचनाएं शास्त्र सम्बन्ध हैं जो उचित साहित्य की कोटि में नहीं जाती । दूसरे प्रकार की रचनाओं में नन्ददास के लण्डकाव्य माना जा सकता है । तेजानार में जोड़ी है किंतु बहुत जल्दी ही दृष्टि में इनका अन्तः अस्मिन् है । तीसरे प्रकार की रचनाएं पुराणों के काव्य रूप में प्रभावित हैं जिन्हें शास्त्र के पदाटी में नहीं कहा जा सकता । चौथे प्रकार की रचनाएं सुस्तक हैं । नन्ददास ने अपना रचनाओं में निम्न व अन्विष्ट दोनों प्रकार के सुस्तकों का महत् प्रयोग किया है ।

पुर का माध्य व पुष्प सूचि

ऋतुत प्रबन्ध में पुर के ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर नहीं, उनका माध्य कला पर दृष्टिपात करें। फिर भी कथा को साधु के लिये हृदय जिधे जाया मानते हैं उसका ज्ञान निर्धारित करना आवश्यक है, विशेष कर तब जबकि पुर के ग्रन्थों तथा उनके लंबे पुर पदों की रचना के सम्बन्ध में विद्वानों ने जाय मो मतों पर नहीं है। उनके प्रमुख ग्रन्थ पुरजागर में ही जहाँ एक ओर अत्यन्त उच्च कीर्ति के पद हैं, वहीं दूसरी ओर मरता के निम्न लेखों के पद भी हैं। यह वेष मध्य क्षेत्रों सहसा एक प्रश्न ही जाता है कि दोनों प्रकार के पद एक ही कवि की लेखना हैं की निकले होंगे? इन प्रश्नों का एक कारण पदों के रचनाक्रम का अज्ञात होना है। ऐसा स्थिति में हमें पुर विचार कर लेना अप्राधान्यिक न होगा।

अन्त्याधय के आचार पर पुरदास जी के ग्रन्थों की नामाङ्की प्राप्त नहीं होती। केवल एक लम्बा पद बन्द ^१ का उल्लेख मिलता है।

तत्कालीन साहित्य में इनके ग्रन्थों के नाम नहीं मिलते, केवल उल्लेखों वा ^२ लम्बा पदों वा कथन मात्र बालों में प्राप्त होता है। फिर भी नागरी प्रचारिणी जमा, काशी की लाल रिपोर्टों, प्राचीन पुस्तकालयों तथा विद्वानों के कथनों के आधार पर निम्नलिखित १५ ग्रन्थों की नामाङ्की ^३ उपरि शत की गयी है :-

१- पुर चाराकी बन्द रूपा १९०६ कैटेगरी प्रेस का पुरजागर, पृ ४

२- लंबे लो पुरदास जी ने उल्लेखार्थ पद दिये हैं - प्रणी १, अग्रवाल प्रेस में प्रकाशित - भावनाकी, पुष्प ८४।

३- और पुरदास जी ने ठाकुर जी के लम्बा सूचि पद दिये हैं। प्रणी ११ बालों में पुरदास जी की जाती।

४- मनमोहन गाँव, पुर की माध्य कला, १९२८ पृ १६।

१- भूराग	प्रकाशित
२- भूराग	॥
३- वास्तव्य भूराग	॥
४- मागवत माषा	अप्रकाशित
५- दशमस्कन्ध माषा	॥
६- भूराग भूराग	॥
७- भूराग	प्रकाशित
८- मान लीला	अप्रकाशित
९- रावाग	प्रकाशित
१०- गावत लीला	॥
११- दानदीला	अप्रकाशित
१२- मंगलगीत	प्रकाशित
१३- नाम लीला	अप्रकाशित
१४- अथावर्ग	अप्रकाशित
१५- प्राणप्यारी	॥
१६- दृष्टकूट के पद	॥
१७- भूराग	॥
१८- भूराग	प्रकाशित
१९- भूराग	॥
२०- भूराग	अप्रकाशित
२१- भूराग के किय के स्फुट पद	
२२- हरिवंश टीका	॥
२३- एकादशी पञ्चाङ्ग	॥
२४- नन्दमयती	॥
२५- रामचन्द्र	॥

बहुत से विद्वान् ध्रु के विवरित तात्पर्य को ग्रन्थ को मानते हैं किन्तु हम भी पूर्ण सममत हैं। ये ग्रन्थ हैं :-

- १- ध्रुवागर्
- २- ध्रुव चारावली
- ३- चाक्षित्य चरणी

शेष ग्रन्थ ध्रुवागर् के अन्तर्गत हैं। इस ग्रन्थ में ही द्वादशटीका, रामानन्द, एकादशी महात्म्य और नन्दमयन्ती किन्तु अन्य ध्रुवागर् को रचनाये होगी।

ध्रुवागर् :

ध्रुवागर् को पदार्थानुसार के बारे में एक और तो मातृलाभ मैना रिया जैसे लोग हैं जो चक्षुःश्रवण पदों के समाप्त होने वाले ग्रन्थ को एक हजार पदों का ही ग्रन्थ समझते हैं। दूसरा और ध्रु निर्णायक है जो चक्षाक्ष का किम्वदन्ती को मा अधिक संका से नहीं देखते। पुष्टिमागीय सेवा पदाति के क्रम से ध्रु के पदों का विषयब लगाकर उन्होंने इस प्रकार लिखा है --

यदि इन पदों को पूर्वोक्तानुसार में जोड़ दिया जाय तो ध्रुवागर् चारा रवे इस चक्षाक्ष पदों की बात प्रामाणिक हो जाती है।^१ इनका मत है कि वही तक ध्रु के पदों का पूर्ण अनुसन्धान नहीं हुआ है, जो जाने पर अब तक प्राप्त पदों से कई गुना और पद ध्रु कृत पाये जा सकते हैं।^२

प्राप्त ध्रुवागर् के दो रूप मिलते हैं -- एक द्वादशस्कन्धात्मक और दूसरा अष्टात्मक। द्वादशस्कन्धात्मक ध्रुवागर् कैटेरेवर प्रेस बम्बई में प्रकाशित हुआ था

१- ध्रु निर्णय, पृष्ठ १७४

२- वही

जिसमें ४५७८ पद हैं । अब नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने द्वादशस्कन्धात्मक रूप प्रकाशित किया है जिसमें प्रामाणिक ४२२६ पद हैं । अष्टात्मक पूर्ण ब्रह्मागर नन्दकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित हुआ था । श्री जवाहरलाल नतुर्वेदी ने पौष्पार अमिन्वन ग्रन्थ में ब्रह्मागर का विकास और रूप लेख लिखा है । इसमें लेख में उन्होंने यह मत उपस्थित किया है कि ब्रह्मागर का अष्टो रूप अष्टात्मक था और उसमें मगवान् लोकूष्ण की जन्मवाही, बाउलीला, ब्रज का अन्य लीलाएँ, प्रमदगीत, तृषिह, कामन और राम अर्थात् चारों के पद तथा विनय के पद हो थे, अन्य समस्त पद दोपक हैं ।

नतुर्वेदी जी का उक्त मत अनुमान पर ही आधारित है । उन्होंने जो सामग्री अनुमान-पर-हम-आधारित-है-+--उन्होंने अपने लेख में प्रस्तुत की है, उसी से पता चलता है कि द्वादशस्कन्धात्मक ब्रह्मागर जो कलकत्ता में अकैलाकृत ब्रह्मा है, व्यापक था इतना रहा है कि न केवल बम्बई में बरन बागरा, दिल्ली, मथुरा, कलकत्ता और काशी में भी प्राप्त हुआ है । इसके विपरीत अष्टात्मक ब्रह्मागर की केवल एक पूर्ण प्रति (नन्दकिशोर प्रेस लखनऊ) मिलती है । शेष सभी प्राप्त प्रतियाँ अपूर्ण हैं । यह ही सकता है कि बारम्भ में ब्रह्माजी ने स्कन्धात्मक ब्रह्मागर का रचना न की हो, फिर भी उन्होंने के द्वारा द्वादशस्कन्धात्मक ब्रह्मागर का रचना अन्तर्वाह्य की दृष्टि से सिद्ध है । वर्णनात्मक पदों का रचना में ब्रह्माजी स्पष्ट कहते गये हैं कि जिस प्रकार शुद्धदेव जी ने द्वादशस्कन्धा में मागवत कहा था उसी प्रकार में भी पदमापा में हरि-लीला का गान कर रहा हूँ । ऐसा कथन ब्रह्मागर के प्रथम स्कन्ध से बारहवें स्कन्ध तक प्राप्त होता है । इस प्रकार ब्रह्माजी द्वारा द्वादशस्कन्धात्मक ब्रह्मागर का रचना सिद्ध है । ऐसा प्रतीत होता है कि महाप्रभु ने सम्भवतः माग-

१- (क) व्यास कहे मुकन्दे जी द्वादशस्कन्ध बनाई
ब्रह्माजी कहे पद मापा करि गाई

प्रथम स्कन्ध पर २२५

(ख) कहे कृष्ण गुरु प्रभा ते श्री मागवतानुसार

द्वितीय स्कन्ध पद २६

बादि जादि

कृतानुसार ग्रन्थ रचना का प्रेरणा सूर को नहीं दी थी । यदि ऐसी प्रेरणा मिली होती तो गुं कृपा को ही अपने सम्पूर्ण कृत्तित्व का अवलम्बन मानने वाले सूर क्यों इसका उक्ति अवश्य करते ।

सूरसागर के पदों की कालक्रम के अनुसार तीन भागों में बाँटे सकते हैं :-

(१) संवत् १५६७ (शरणागति तिथि^१) से पूर्व के रचे हुए पद । ये पद अविकारित विनय के पदों में संगृहीत हैं तथा प्रथम और द्वितीय स्कन्धोंमें प्रोपदी उदाय, मोक्ष प्रतिज्ञा, नाममहिमा, व्यानादिविधि, मन्त्रित साधन और वेदाग्र्य आदि शीर्षकों से क्यास्थान रखे गये हैं । इन पदों में अन्तपरम्परा की विचार वारा व शैली मिलती है ।

(२) संवत् १५६७ से १५८७ तक रचे हुए पद-- इस काल में सूरदास जी ने लोला विषयक स्फुट पद लिखे । ये पद जन्म बयान, मासुन बारी, मुरली, बाँस और नेन, समय तथा प्रमरगीत आदि सरस प्रयोगों पर लोला का आधार लेकर सूर की कव्य मञ्जिता की मनोरम अभिव्यञ्जन करते हैं । इनमें क्या तो उपादान मात्र है ।

(३) संवत् १५८७ (महाप्रमुक्कलमाचार्य की निधन तिथि^२) से १६०० तक रचे हुए पद :- मागवत माथा प्रस्तुत करने हेतुसूरदास जी ने अपने सूरसागर का सम्पादन मागवत के अनुसार कर दिया । विनय के प्रथम दो अक्षरान् कम्पठ बंदों हरिराई तथा अविनात गति छन्द करत न आवे सूरसागर की ग्रन्थ रूप देने के हेतु जान पड़ते हैं । कम शब्दों में अधिक भाव, भाषा नेपुण्य, सरल और शीघ्र शब्दों में शिष्टाकल के स्वरों की मनोहारिता, गीत का आत्माभिप्रेत्यक्ति की कुशलता आदि उषा कला

१- इस प्रकार अन्तः पूर्व साक्ष्य सादृश्य के आधार पर सूर का शरणागति संवत् १५६७ में निश्चित होता है । सूर और उनका साहित्य ६१० परवर्षालो पृष्ठ ४६

२- बल्लभ दिग्विजय, पृष्ठ ५५ ।

निष्पुणता के धोतक हैं जो राव ने सहस्रावधि स्फुट पदों का रचना में प्राप्त किया था । महाप्रभु ने प्राप्त मागवत्मावत का लीला मंद ही बुर का अपना दृष्टिकोण था । बुरागार के ही लीला मंद का स्पष्टीकरण ही बुर का प्रतिपाद था । ६० लिये ग्रन्थ के मंगलारण में दर्शना से काव ने ग्रन्थ का प्रयोजन प्रस्तुत कर दिया । मागवत के अन्य स्कन्धों की कथाएँ बुरदास जी ने बन्दों में रच लायी और जैसे जैसे स्कन्ध पूरे दिये । उन मरती के बन्दों में बुर की आत्मा नहीं है । मागवत की जादेशात्मकता प्रजात ही इनमें दृष्टानेवर होता है । इन समस्त पदों में बुर की कला के दर्शन नहीं होते ।

बुरागारावली:

बुरदास का द्वितीय ग्रन्थ बुरागारावली अन्तःसाध्य से प्रमाणित है ।^१ डा० प्रजेवर वर्मा की लिखी उमा विज्ञान उसे बुर कृत ही स्वीकार करते हैं । बारावली का कोई जलम प्रति उपलब्ध नहीं है । कैप्रेबच्छ और नवकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित बुरागारों के आरम्भ में बारावली लपी है । हम भी बारावली की प्रकृत ही मानते हैं । हमारे विचार से मागवत द्वारा बुरागार की रचना ही जाने के पश्चात् सिद्धान्त प्रतिपादन व लीला की मर्म-उद्घाटन की मा बुर ने आवश्यक समझा । जो कथ्य अर्थात् अंश १६०० के पश्चात् ही गोदाह विटलनाथ जी ने निरुद्ध-लीला और वरुच अवतार-लीला का निष्पण किया ।^२ अन्तःसाध्य से ही बारावली का रचना काँ मा अंश १६०२ बनता

- १- बुरदास जी रचित बुरागार बारावली तथा उमा लाल पदों का प्रची पत्र बैक्टैवर प्रेस का बुरागार पृष्ठ १ तथा इति श्री बुरदास कृत अवतार लीला तथा उमा लाल पदों का उमापत्र समाप्त । बैक्टैवर प्रेस बुरागार पृष्ठ ४८ तथा बल्लभ गुरुकुल पुनायी लीला मंद बताया) बारावली कैप्रे बुरागार ता दिन ती हरिलीला गाह एक ली पद बन्द) पृ० ४८ बन्द ११०३ ताकी बुरागारावली गावत अति आनन्द ।)
- २- बुर निर्णय - पृष्ठ ११०

हैं। क्योंकि वाराणसी की रचना के समय कवि की उम्र मात्र ६७ वर्ष की हो गई है।^१
डा० दीनदयाल गुप्त के शब्दों में वाराणसी पुराणगर का एक प्रकार की मूर्तिका है।^२
पुराणगर में जीजा का दृष्टिकोण इतना प्रधान था कि उसमें वैज्ञानिक विवेचन का
अवसर न था। पुराणगर का मत यह दृष्टिकोण को स्पष्ट करने का व्यग्र हो
उठा। फलतः उन्होंने वाराणसी को स्वतन्त्र रचना कर डाली। अतः यह स्पष्ट
कि यह ग्रन्थ एक विद्वान् ग्रन्थ है। इसलिये तत्कालीन रूप में यह ग्रन्थ पुराणगर का पूरक
है। इसलिये पुराणगर के सम्पादन के पश्चात् पुराणगर की नई पूरा वाराणसी को
पुराणगर के आरम्भ में ही स्थान दिया।

साहित्य लवरी :

पुराणगर की अन्तिम रचना साहित्य लवरी है। साहित्य लवरी की यह
संख्या १०६ में इसका रचनाकाल दिया गया है। टीकाकारों ने इसका रचना काल
१६०७ दिया है। डा० दीनदयाल गुप्त अथवा १६१७ और डा० कुशीराम १६२७ इसका
अर्थ लगाते हैं। शटीक साहित्य लवरी का मुद्रित संस्करण पुस्तक मन्डार लखनऊ
धराय में प्रकाशित है। इसमें ११८ पद हैं और इसके उपसंहार के और ६ नाम हैं ५३
पद और हैं। उपसंहार के अन्त में पद उपसंहार में ही प्राप्त हो जाते हैं। डा० ब्रजेन्द्र
बसा ही होकर इस विद्वान् रूप ग्रन्थ को सुरक्षित हो मानते हैं केवल पद संख्या ११८
अप्रामाणिक माना जाता है। डा० कुशीराम समीचीन रूप पद को भी प्रामाणिक
मानते हैं।^३ वहीं हम नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुराणगर प्राप्त वाराणसी
और साहित्य लवरी के १ से ११७ पदों का प्रामाणिक मानकर कहते हैं। इनकी
बाबत पर हम पूरा काव्य में साहित्य लवरी की एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ समीक्षा करते हैं।

१- कुप्रसाद शीत यह दर्शन पर ७७ वर्ष प्रवीण

वाराणसी अन्त १९०२

२- अष्टादश और बल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ २८४

३- भारतीय भाषा और पुरासाहित्य पृष्ठ ४७०

भूरसागर, भूर सागराच्छी तथा साहित्य उहरी के अतिरिक्त निम्न ग्रन्थों पर भी हम दृष्टिपात कर रहे हैं भूर काव्य का विवेचन करने में हमें जानकारी हो चायेगी :-

मागवत माषा :-

नागरी प्रचारिणी सभा का सत्र रिपोर्टों में एक ग्रन्थ के प्रकृत होने का ज्ञान मिलता है । उसी के आधार पर अन्य विद्वानों ने भूरसागर के अतिरिक्त, इसे भूर का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ कहा है । ग्रन्थ अप्रकाशित है । किन्तु नागरी प्रचारिणी सभा के सत्र रिपोर्टों के अन्तर्गत वे तथा उमें दिये गये उद्धरणों से ज्ञात होता है कि ग्रन्थ भूरसागर का ही रूप है । भूरसागर भी तब एक प्रकार से मागवत मा ही माषा में आया हुआ है ।

दशमस्कन्ध टीका:-

यह भी भूरसागर से अलग कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है । इसकी अलग लिखी कृतलिखित प्रतियाँ देखने से स्पष्ट रूप से यह तथ्य हमारे अग्रेसर हो जाया है । यह भी एक अप्रकाशित ग्रन्थ है ।

भूरसागर के पद:-

सत्र रिपोर्टों से पता चलता है कि यह माषा भूर के पदों का संग्रह है । इस प्रकार के पद संग्रह जिनमें संग्रहकर्ता की रचि के अनुसार पद संग्रहित हैं, बहुत से मिलते हैं । एक एक मायाशक्ति या शक्ति के असाध्य तथा मधुरा गाँव के प्रतिभापकारों के पास बनेंगे संग्रह आज भी सुरक्षित हैं । ये सब पद आस्त्य में भूरसागर से ही उद्धृत हैं । परन्तु ये संग्रह भूर के स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं हैं । उसी प्रकार यह संग्रह भी भूर का स्वतन्त्र संग्रह नहीं कहा जा सकता ।

नागरी :-

नागरी प्रचारिणी सभा का सत्र रिपोर्टों में एक ग्रन्थ से कोई उद्धरण नहीं दिया गया है । परन्तु रिपोर्टों के अन्तर्गत वे ज्ञात होता है इस ग्रन्थ में कृष्ण द्वारा

काला नाग नाथन प्रयोग से सम्बन्ध रखने वाले पुरदास कृत पद हैं। इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ कवि की कोई स्वतन्त्र रचना नहीं रही जा सकती (ग्रन्थ अप्रकाशित) है।

गोवर्द्धन ठाला:

नागरी प्रचारिणी सभा की सत्र रिपोर्ट में इस ग्रन्थ का उल्लेख है। अन्य विद्वानों ने भी इसे पुर का एक ग्रन्थ लिखा है। सत्र रिपोर्ट में पुर कृत गोवर्द्धन ठाला के जी उद्धरण दिये गये हैं, वे पुरसागर (कैप्टेन सर प्रेस) पृ. २२२ पर दो छंद गोवर्द्धन ठाला से मिलते हैं। इस प्रकार यह भी पुर का स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, बरन पुरसागर का ही एक अंश है।

पुरपञ्जीषी :-

सत्र रिपोर्ट^१ में इस ग्रन्थ का उल्लेख है। उक्त रिपोर्ट में इसका विषय ज्ञान व उपदेश के दोष बताया गया है। अतः इससे दिये हुए उद्धरणों की देखने से ज्ञात होता है कि यह पुर का एक लम्बा पद है जो पुर सागर (कैप्टेन) पृष्ठ २९ पर परम राग के अन्तर्गत दिया हुआ है। इसलिये इसे पुर के स्वतन्त्र ग्रन्थों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। इस ग्रन्थ की कपी प्रतियाँ मथुरा के शासन के में बहुत विकल है।^२

प्राणप्यारी:-

सत्र रिपोर्ट^३ में इस पुस्तक का उल्लेख है। रिपोर्ट में इसका विषय

१- ना० प्र० ३५५, सत्र रिपोर्ट १९१२ नं० १८६ (आ)

२- पुरपञ्जीषी, पुर सागर जी, पुरकृत कानों एक साथ कपी मथुरा से मिलता है। प्रकाशक मनमोहन शिखारि कछी बाँ, क्या प्याट, मथुरा।

३- ना० प्र० ७७ सत्र रिपोर्ट, १९१७-१९ ई०, नं० १८६ (एफ०)

इयम उगाहं दिया हुआ है। राग विष्णु के अन्तर्गत यह ६६ लम्बा पद है। इस पद का माप। और शैली बहुत शिथिल है जिससे इसे पुराण में मानते उन्हें होता है। पुरा का यह रचना अविश्व की जा सकती है।

व्याख्या:-

हाथ रिपोर्ट में इस रचना का उल्लेख हुआ है। यह ग्रन्थ राधाकृष्ण विद्या पर लिखे गये पुर के पदों का संग्रह है। पुराण में दिये राधाकृष्ण के विद्या सम्बन्धी पदों में से कोई लम्बा पद देकर इसका नाम व्याख्या रख दिया है। अन्य कई कवियों ने व्याख्या (विद्या प्रण) पर लिखा है। वास्तव में यह भी कोई पुर का स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है।

मधुरगीत, पुर रामायण, दान्डीला, पुराणी, मान्डीला आदि जो ग्रन्थ पुर के नाम से प्रचलित हैं और जिनमें, वे वास्तव में पुराण के ही अंग हैं। मधुरगीत तो पुर के अन्त और पद दोनों ही शैलियों में लिखा गया है। परन्तु दोनों का सम्मिश्रण पुराण में है। पुर रामायण पुराण के नवमस्कन्ध का भाग है। पुराण दान्डीला व मान्डीला पुराण (के प्रे०) पृ० २५२ तथा ४०६ से क्रमशः ज्यों का त्यों ला गये हैं। इस प्रकार यही निष्कर्ष निकलता है कि पुराण के बहुत से प्रणों को लोगों ने पुराण से निकालकर अलग ग्रन्थ मान लिया है। नन्ददास के भी बहुत से ग्रन्थ वास्तव में इसी प्रकार के प्रण और लम्बे पद मात्र हैं।

पुराण धार:-

हाथ रिपोर्ट १६०६-११००, नं० २२२ (बी) में ग्रन्थ के विषय में लिखा है कि यह रचना पदों में है। और इसका विषय ज्ञान, मयित और वैराग्य है। ज्ञात होता है कि सा ज्ञान ने अपना रचि के अनुसार पुराण के पदों को उनके

मिन्न मिन्न प्रयोगों में बाँटकर अलग लिख लिया है और उसे बुरसागर नाम दे दिया है जैसे कि रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित पञ्चमहाकाव्य-सार नामक ग्रन्थ है। जिसमें बुरसागर के दो गाँवों विरह तथा गाँवों उदय उषास के पद एकत्र हैं। अतः बुरसागर रूप में बुर का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है।

भूरशतक:-

इस ग्रन्थ की रचना सन् १९०० की साँवे रिपोर्ट नं० ६ में की गई है। साँवे रिपोर्ट के आधार पर स्पष्टतः यह भूरदास के दृष्टिकोणों का टीका सहित संग्रह है। इस प्रकार एक ग्रन्थ कोकराँजी विद्या विभाग में पाया है।^१ यह भूरदास की साहित्य उत्पत्ति से अलग कोई ग्रन्थ नहीं है।

नन्दमयन्ती:-

इस ग्रन्थ के भूर कृत होने का उल्लेख भूर की जाधनी में एक राधाकृष्णादास जी तथा मित्र बन्धुओं ने किया है। अन्य कुछ लेखकों में इसे उद्दिश्य रूप से भूर कृत ग्रन्थ का मानते आये हैं। जैसा कि कहा गया है अष्ट क्षाप काव्य कृष्ण अथवा कृष्ण मन्त्रित सम्बन्धी कथानकों पर ही लिखा गया है। अतः इन काव्यों में नरचरित्र की बारी ध्यान दी नहीं दी, बल्कि उसकी निन्दा ही की है इसलिये नन्दमयन्ती की ठीक-ठीक क्या की कहने वाला यह ग्रन्थ अष्टक्षाप के मूल भूर कृत नहीं हो सकता।

डा० मोतीचन्द^२ एफ०ए०पा०एच०-डी० ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में कवि भूरदास कृत नन्दमन काव्य पर एक महत्वपूर्ण लेख लिखा था। उसमें उन्होंने बताया था कि उन्हें बम्बई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम में भूरकृत नन्दमन भूषण

१- कोकराँजी विद्या विभाग की पोथियों में भूर शतक का नं० २२६।६ है।

२- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४२, अंक १९६५, भाग १६, अंक २

इस का उल्लेख ग्रंथ काव्य ग्रन्थ फारसी लिपि में मिला है । उसकी परीक्षा करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उसके रचयिता काव्य व. दास, बुराणागर के कर्ता मन्तर बुरादास हैं निम्न हैं । यह रचना संवत् १७१४ वि० बयबा जन १६५७ ई० की लिखी हुई है । अतः उपरोक्त वे स्पष्ट हो जाता है कि यह रचना सुर-कृत नहीं है ।

वरिच टोका:-

कैलास केटलोग में बुरादास कृत वरिच नामक संस्कृत टोका का उल्लेख हुआ है ।^१ संस्कृत ग्रन्थ तथा ऐसकी के एच रजिस्टर के सम्पादक मिस्टर थियोडोर आफ्रेच्ट (THEODORE AUFRICHT) ने कहाला दिया है कि दक्षिण राज, पुना पुस्तकालय के संस्कृत वस्तुलिखित ग्रन्थों के कैटलोग पृष्ठ ६०३^१ पर इस ग्रन्थ के बुरादास कृत होने का उल्लेख है । उसे पुना वाले कैटलोग का सम्पादन स्कूल बोर्न (F. KEIL BORN) तथा आर०जी० मन्डाटकर ने ई० १८८४ ई० में किया था । अतः कैटलोग में ग्रन्थ के कोई उद्धरण नहीं दिया हुआ है ।

हा० दोन दया० गुप्त के मतानुसार यह ग्रन्थ अष्टाक्षर के बुरादास कृत नहीं है । उनके मतानुसार कोई अन्य बुरादास सम्भवतः दक्षिण भारत के रहे होंगे । इसका जाचार में इस बात का बनाते हैं कि क्योंकि सुर की तथा अन्य किसी अष्टाक्षर कवि का कोई रचना संस्कृत में नहीं मिलता तथा सुरकृत संस्कृत भाषा में ग्रन्थ लिखने का न तो कोई विषयता उनके में जाता है और न उनकी जाति और काव्य का परिचय देने वाले किसी प्राचीन लेख में ही उल्लेख है । दूसरा कारण यह है कि बल्लभ सम्प्रदायी विद्याकेन्द्रों में तथा वैष्णव मन्दिरों में

1. Catalogue Catalogorum, an alphabetical Register of Sanskrit Works and Authors by Theodor Aufricht, 1891 Edition pages 731 and 761
2. A catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Library of Deccan College; Part I, prepared under superintendence of F. Kiel Born and Part II under the superintendence of G. Bhandarkar 1884, Poona Page 603.

यह ग्रन्थ जमा त्क अष्टाध्यायी धुर के नाम से लिखा न्हा' मिला, जहां धुर आदि उणा अष्टाध्यायी कवियों का काव्य प्रचुर मात्रा में है ।^१

रामजन्म :-

हाजे रिपोर्टों में इस ग्रन्थ को धुरज दासकृत कहा गया है । हाजे रिपोर्टों में किये हुए उद्धरणों से यह बात को स्पष्ट कर देते हैं कि यह ग्रन्थ अष्टाध्यायी के महात्मा धुरदास का न्हा' है । इन उद्धरणों का मास । अक्की २ । ग्रन्थ दोहा बांपाई में रामचरितमानस तथा पदमावली को संज्ञा पर लिखा गया है । नागरी प्रचारिणी सभा को हाजे रिपोर्टों के आधार पर यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है । ग्रन्थ के वन्दना भाग में गणपति और राम की स्तुति है । धुर, कृष्ण के वन्दन प्रबल हैं । धुराधार के आदि में उन्होंने धुर और कृष्ण की ही वन्दना की है । इस ग्रन्थ की स्तुतियों से सात होता है कि यह ग्रन्थ रामोपासक धुरदास का लिखा हुआ है अष्टाध्यायी धुर-कृत न्हा' है ।

एकादशी माहात्म्य:-

इस ग्रन्थ के मा धुरदास कृत होने का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९१७-१८ ई० के हाजे रिपोर्टों नं० १८७ (बी) में हुआ है । ग्रन्थ का विषय हाजे रिपोर्टों के अनुसार प्रथम वन्दना फिर राजा हरिश्चन्द्र जयवादी तथा उनके पुत्र हेमन्ति रौद्रितारम की प्रशंसा का वर्णन तथा एकादशी माहात्म्य लिखने की वन्दना कथार है । यह ग्रन्थ मा राजन्म की तरह दोहा बांपाई छन्द संज्ञा में लिखा गया है । माया अक्की है प्रतीत होता है कि रामजन्म में इस एकादशी माहात्म्य के

१- अष्टाध्यायी और बल्लभ सम्प्रदाय, भाग १ पृ० २६६

२- ना० प्र० के हाजे रिपोर्टों, सन् १९१७-१८ ई० नं० १८७ (२)

३- अष्टाध्यायी के अन्वयन की आधारभूत सामग्री के साथ जुगुहूँ हाजे रिपोर्टों के उल्लेखों की ता० ७७ । अष्टाध्यायी और बल्लभ सम्प्रदाय के हीनका० गुप्त ।

दो भिन्न भिन्न काव्य न जाँकर, एक हो है । एवं प्रसार उक्त नारणों के आधार पर यह ग्रन्थ भी अष्टादश के अन्त्य कृष्णपाद महात्मा परदा । भूत नरों प्रह्लाद होता ।

सेवाफल :

एवं रचना को देखकर पता चलता है कि यह एक जम्मा पद है जो बाँपाई तथा बाँपाई-दन्दी में लिखा गया है । सुर के एक दन्दी में जिसे बहुत से जम्मे पद सुरसागर में मिलते हैं ।

एवं रचना की माप। प्रमाणा है, परन्तु रीति व लक्ष्य गहन लिपि है । सुर के बाँपाई या बाँपाई दन्दी में जिसे पदों की रीति बहुत शायद हो कहा करता है । मगवान का रीति का महात्म्य तथा भिन्न भिन्न प्रसार से सेवा करने से प्राप्त फल का जम्मा एवं रचना का विषय है । एवं रचना को सुरकृत पदों में तो इसे एक स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं माना जा सकता । विविध प्रयोगों के अन्तर्गत पदों की तरह यह भी एक जम्मा पद मात्र है जो राग रामकृष्ण के अन्तर्गत मिलता है ।

उपरोक्त विवरण के आधार से प्रस्ताव के नामपर पाठे दिये ३५ ग्रन्थों का विषय निम्नलिखित प्रसार से दिया जा सकता है :-

अष्टादश सुर के प्रामाणिक तथा मुख्य ग्रन्थ

- १- सुर सागर
- २- सुर सारांश
- ३- साहित्य लहरी

अष्टादश सुरकृत सुरसागर तथा साहित्य लहरी के प्रयोग तथा जम्मे पद रूप में जाने वाले प्रामाणिक रचनाएँ निम्नलिखित हैं :-

- १- मागवत माया
- २- दशमस्कन्ध माया
- ३- अरदास के पद
- ४- नाग लीला
- ५- गोविन्द लीला
- ६- गुर पंचांग
- ७- व्याख्या
- ८- मंत्रगीत
- ९- अरदास माधन
- १०- धानलीला
- ११- अर-वाली
- १२- मान लीला
- १३- रावा राव के-को-कुल अथवा मानवागर
- १४- अवाकठ
- १५- अरशक्त
- १६- अरवागर अर

अष्टाध्यायी गुर की अदिग्य रचना :-

- १- प्राण प्यारी

गुर की अप्रामाणिक रचनाये :-

- १- नन्दमयन्ती
- २- हरिबल टीका
- ३- रामजम
- ४- रमादली माहात्म्य

१- अर शक्त, वाचित्य अरती का मा अश है ।

महाकवि ब्रह्मांड के वास्तव्य मरिदवि का मन्थन वास्तव में अत्यन्त क्लृप्त कार्य है । विभिन्न युगों के, अनेक स्तरों के बीच से मन्द मन्द जिन्दु जलवास्त गति में चलता हुआ, अनेक दिशाओं में उल्टा घाँव चक्कर जाने वाला त्रासित त्रवार वाराजों की आत्मघात करती हुई, मिन्न मिन्न सम्प्रदायों की विज्ञानत जार हुआ वे प्राणियों के अन्तःकरण को तृप्त करती हुई क्वाज्वलर दिया है कि उसमें मग्न होकर मा तब तक पहुँचना जरूर कार्य हो है ।^१

पर वास्तव्य का पृष्ठ मणि भारत के मन्थकालीन युग का उदाहरण है, जिसमें वह स्थान व व्यापक आन्दोलन अन्तर्हित है, जिसमें ऐसा अनेक माक्काजों को जन्म दिया, जो एक ओर तो मानवता को जीवन को विस्तृत करने वाली है तथा दूसरी ओर अनेक संकीर्णताओं को उत्पन्न करती है । इसी शताब्दी में भारत में उस युग का सुभाषित हुआ, जिसे हम यूरॉपीय रतिशास्त्रों की परिभाषा में मन्थयुग कह सकते हैं । इसी शताब्दी में दर बाँट दर बाँट आँखों का वास्तव्य बड़ा व्यापक है । इसमें जहाँ एक ओर जेम्सों व बाँजों का अपने अपने अस्तित्व के छिपे मरुत प्रकाश है वहाँ दूसरी ओर होँतकों का भी अभाव नहीं, जिनका परिपाक अन्तर्गतता अन्तर्गतता होता है ।^२ इस काल में कुछ ऐसी परम्परा हो रही, जिसका आधार वैदिक और जेदिक माक्काजों के मूल में केन्द्रित हुआ । जिस प्रकार अंत, विविष्टांत में, सुभाषित अविन्त्यमैदागैद आदि अनेक परम्पर विरोधी मत धुति को हो अपने आधार रिया बल्लाते हैं, जो प्रसार, रैम, शास्त्र, पाश्चम्य, गाणवत्य, और जादू सम्प्रदाय मा अपने को वैदिक विदित करते हैं । दक्षी ग्या त्वरी शताब्दी में उल्टा आँखों शताब्दी तक वे युग तो मन्थकालीन युग का उदाहरण कहा जा सकता है । यह युग समन्वय का माक्काजों का उदर बला ।

१- पुर और उनका वास्तव्य, जे हाँद एरवत जाँद रमई पृष्ठ ६१

२- " " " " " " पृष्ठ ६१

तौरों पर शताब्दी के अन्तर्गत कृत मन्त्रों उन्नीस मील में अपना प्रचार कार्य आरम्भ किया और समाज के परिस्थितियों के अनुसार शताब्दी तक विभिन्न प्रकार से समाज की सेवा करते रहे। हिन्दू धार्मिक के काल में इस काल को पवित्र काल का संज्ञा दी जाती है। डॉ. गिब्सन ने इन आन्दोलनों का अन्त्य मध्य युग के मर्मा-रिवाजों से उगाया है और ही रिवाजों को देने बताया है।^१ इतिहासिक दृष्टि से इस युग को हम भारतीय संस्कृति का पराजय का युग भी जो मानते हैं परन्तु मानव संस्कृति का दृष्टि से इसके महत्त्व को उन्नीस मील में उन्नीस मील में उन्नीस मील में विभिन्न संस्कृतियों और धार्मिक जानना जो ही मानवता के बराबर पर समन्वय हुआ।^२

हिन्दू धार्मिक के इतिहास ग्रन्थों में परम्परा के अनुसार राजनैतिक अराजकता सामाजिक दुर्व्यवस्था और धार्मिक अत्याचारों को ही मन्त्रित आन्दोलन का मूल कारण माना है। आचार्य शुद्धाचल और प्रसाद ने भी इन विचारों का पुष्टि की है। श्रद्धालुओं का काल की १५२५ से १५५५ तक था। इस दौरान में दिल्ली साम्राज्य में परिवर्तन हुए। दिल्ली की गद्दी पर कई दुर्लभाने बादशाह बैठे और उन्होंने अपना अपना व्यवस्था बलाई। १०० वर्ष से ऊपर के इस समय में लोदी, लोदी और मुगलवंश बादशाहों का आधिपत्य दिल्ली पर रहा तथा कुजप्रदेश दिल्ली और आगरे के मातहत रहा। इतिहास के अनुसार से सात होता है कि दिल्ली वंश से पूर्व इतिहास बाई जैसा रहा ही, दिल्ली वंश का देश पर आधिपत्य होने के बाद राजनैतिक मानवताओं ने आन्तरिक परिवर्तन हुए। मुगलों में अन्तर उदार प्रकृति का सम्राट था। उत्तम को उसे प्रबल जिज्ञासा थी। अन्तर से पूर्व अनेक सुलतानों के शासन में

१- मर्मा-रिवाज BERNARD OF CLAIRVANS, THOMAS KEMPIS Etc
सूदा, सम्पादक डॉ. एन.ए.ए. एम. ३२ (निम्न व प्रो. विद्या)

२- MODERN HINDUISM AND ITS DEBT TO THE HISTORIANS
(डॉ. डॉ. ग्रिब्सन) JOURNAL ROYAL ASIATIC SOCIETY में संगृहीत

३- धर्म और उन्नीस धार्मिक, डॉ. डॉ. एन.ए.ए. एम. ३२

हिन्दू जनता को सुखमानों की अपेक्षा कम राजनीतिक और वार्षिक अविकार प्राप्त थे। सामाजिक अविकारों का भी हिन्दु लोग स्वतन्त्रता से उपयोग नहीं कर सकते थे। उनकी स्थिति में डोवा डोल था फिर भी आत्म गौरव का उनमें बिल्कुल लोप न हो गया था परन्तु ब्रिटासिता का भी अभाव न था। साधारण जनता की आर्थिक स्थिति में अच्छी नहीं थी। बाध्यात्मिक एवं मानसिक शक्ति का प्रतिनिधि ब्राह्मण जाति में अनेक दुर्गुण जा गये थे। वास्तव में भी वशविभाजन और भेद बढ़ते जा रहे थे। लोगों में पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष पड़ रहा था, दण्ड विधान कठोर था और अधिश्वास की भावना के साथ जाशका ने हृदय में स्थान बना लिया था। परन्तु अक्षर के समय में हिन्दु व सुखमान जातियों के बीच सार्व कम करने का प्रयास किया गया। दोनों के अविकार समान कर दिये गये तथा हिन्दुओं की भी राज्य में ऊँचे पद दिये गये।

देश की सामाजिक स्थिति का ज्ञान तत्कालीन महत् कवियों की रचनाओं में व्यक्त होने से प्राप्त होता है। कबीर से हिन्दू सुखमान दोनों को ही उनकी वाचरण होनता पर फटकार दी है। गाँठ सुखीदास जी के काव्यों में तो तत्कालिक दुर्व्यवस्था का ऐसा संश्लिष्ट चित्रण है कि पाठक तत्कालीन होकर उनके सम-सामयिक समाज में शरीर विचरण करने लगता है। महाप्रभु बल्लभाचार्य जी वैद्वान्तिक रूप में ब्राह्मवाद अथवा शुद्धाद्वैतवाद का प्रतिष्ठा करने वाले थे किन्तु उन्होंने अपने मत का जो व्यवहारिक रूप रखा था, वह पर्याप्त मात्रा में तत्कालिक राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिकूल प्रतीत होता है। बल्लभाचार्य ने उसी भारत की राजनीतिक व सामाजिक उथल पुथल को देखा था। अक्षर के राज्य की व्यवस्था तथा उसकी उदारता, वार्षिक सन्निधुता, वरान्यता, साहित्य एवं कला प्रियता का साक्षात्कार वे नहीं कर सके थे।^१ यही कारण है कि उनके ग्रन्थों में तत्कालीन शासन की कटु आलोचना मिलती है। उनका चौदह ग्रन्थ उनके हृदय की भावना का पूर्णतया परिचयक है। कृष्णात्रय ग्रन्थ में तत्कालीन परिस्थिति

का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं :-

मल्लान्तराङ्गान्तेषु देशेषु पापैकानिलधुषा च ।
 कृष्णान्तराङ्गान्तेषु, कृष्ण एव गतिर्मम ॥
 गंगादितीर्थक्षेत्रेषु, दुष्टैर्देवावृते स्थित ।
 तिरौहितायि देवेषु, कृष्ण एव गतिर्मम ॥
 अपरिजानन्मृतेषु, मज्जेत्स्व प्रत यो गिषु ।
 तिरौहितार्थदेवेषु, कृष्ण एव गतिर्मम ॥ १

अर्थात् सब प्रदेश एवं वे पाप पावन के निवास स्थान हो गये हैं, सज्जन कष्टों से संतप्त हैं, गंगा आदि पवित्र तीर्थ स्थान भी दुष्टों से आवृत हैं, अविष्ठातृदेवता तिरौहित हो गये हैं और स्वार्थ सिद्धि एवं प्रलोभनवश सज्जन भी पाप का अनुसरण कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में केवल कृष्ण ही मेरी गति है।

जिस प्रकार आचार्य बल्लभ ने तत्कालीन परिस्थितियों का निराशापूर्ण चित्र खींचा है, उससे तो लगता है कि अक्षर के समय में मा. भारत वर्ष की सामाजिक दशा अन्तर्घातजनक नहीं थी। उसके साथ यह भी सत्य है कि सुर के पूर्व हिन्दी काव्य कला की भी स्थिति अन्तर्घातजनक नहीं कही जा सकती। उस समय तक सिद्धों के पद, चारणों की करगाथाएँ तथा करगति और कबीर आदि अन्तों की वाणियाँ ही हिन्दी साहित्य में प्राप्त होती हैं। ब्रजभाषा सिद्धों और नाथ पंथी साधुओं की कृतियों में नातिपरक पद रचना मिलती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है सरहया, शबरया, लुहया और कन्हया आदि सिद्धों की पद रचना हिन्दी कुसुम गीतों का पूर्व रूप अवश्य है किन्तु इन कवियों का दृष्टिकोण कलात्मक या ही नहीं। इन सिद्धों की तो वैराग्य, उपदेश और नाति आदि के लक्ष्य प्रस्तुत करते थे। इसीलिये उनके पदों में सरह पदावली और उचित कलात्मक का प्रायः अभाव ही मिलता है।

चारणों की चौर गाथाओं में वरिष्ठ काव्य की प्रधानता है। कलात्मक दृष्टिकोण पृथ्वीराज रासों के कल्पित हृदय में व्यक्त मिलता है किन्तु रासों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में अभी तक सन्देह बना ही हुआ है। कहा नहीं जा सकता, उनके शरद पद सुर से पूर्व रचे गये थे या नहीं। चारण काल की अन्य गाथाओं तथा चौर गीतों में कला के दर्शन नहीं होते। तत्कालीन अशान्त बालाचरण में कला के फोषण के लिये अवकाश ही कहाँ था। गोरक्ष नाथ देव और कबीर की सन्तानियों में उद्योग, उपदेश, मत-मतान्तर और नीतिकथन का इतना आधिपत्य है कि उनमें काव्यशिल्प का कल्पना करना ही व्यर्थ है। रमते जागे अटपटी बानी के व्यवहार में ही अपना चमत्कार दिखाना चाहते थे। रमणीय अभिव्यञ्जना का उनकी मनोवृत्ति से केल नहीं लाता था। इन सन्तों ने प्राकृत व अपभ्रंश में चलते हुए मौलिक गीत पद्धति में ही अपने विचार प्रकट किये हैं। इनकी पद रचना के स्वरूप मात्र को ही सुर ने ग्रहण किया और उसका संस्कार करके हिन्दी का एक अपूर्व काव्य रूप प्रदान किया। इस प्रकार काव्य कला के क्षेत्र में पद रचना के रूप विधान को छोड़कर सुर को अपने पूर्ववर्ती सन्त कवियों से उन्नतिकाए में और कुछ भी नहीं मिला।

सुर के पूर्व हिन्दी में केवल एक कलाकार कवि हुआ था -- विद्यापति। विद्याप की पदशैली, कौमुदीमान्त पदावली और अलंकृत उचितया काव्य कला की अपूर्वनिधियाँ हैं किन्तु सुर प्रणीत हिन्दी पद रचना का स्वरूप विद्यापति की पदावली से सर्वथा भिन्न है। सुर ने सन्तों की जिस पद रचना का विकास किया उसका विद्यापति की पदशैली से कोई सम्बन्ध नहीं है। अभिव्यञ्जना कौशल में सुर ने विद्यापति से अप्रत्यक्ष प्रभाव कदाचित् ग्रहण किया था किन्तु सुर की काव्य धारा के प्रति का विद्यापति से विशेष सम्बन्ध नहीं है सम्भवतः इसका कारण यह है कि उस काल में विद्यापति का सम्बन्ध बंगला काव्य से ही अधिक था।

सातम्य यह है कि सुर से पूर्व हिन्दी काव्य कला बड़ी अविकसित अवस्था में थी। माया, हृद, पद, योजना और अभिव्यञ्जना कौशल किसी भी दृष्टि से

उसका कुछ स्थिर स्वरूप नहीं बन पाया था । डिगल, पिगल, माँथिलो और
 धुलकड़ी माँपा की गलियाँ में बसे छाती हुई हिन्दी कविता किसी प्रतिमाशाली
 युग प्रवर्तक कवि की बाट जाँह रही थी । इसी समय महाप्रभु बल्लभाचार्य के कृपा
 सूत्र का सहारा लेकर आले का जन्मा और गाँठ का पूरा सूर हिन्दी काव्य मंच
 पर आकर उपस्थित हो गया ।^१ सूर साहित्य की अध्ययन से हम देखें ही यह
 अनुमान लगा सकते हैं कि सूरदास जो के साहित्य पर पूर्व प्रवर्तित परम्पराओं
 का कितना प्रभाव पड़ा

नन्द काव्य की पृष्ठ भूमि

छात शताब्दियों व्यतीत हो गई जब कि हिन्दुओं के स्वातन्त्र्य युग के अस्त
 होने के साथ साथ हिन्दी साहित्येतिहास का दौर गाथाकाळ भी प्रायः समाप्त
 हो गया । सुल्तानों के छोटे छोटे राज्य स्थापित हुए और बाद की दिल्ली की
 सल्तनत जमी, जिससे भारतीय हिन्दु राजवंशों की उदा उद्वेगपथ में प्रायः भिड़
 की गई उस १२६३ में कासबत का राज्य आरम्भ हुआ और क्रमशः अनेक पठान
 राजवंशों के तीन सौ वर्ष तक राज्य करने के अनन्तर मुगलराज्य वंश स्थापित
 हुआ, जिसका अन्त १८५७ की क्रान्ति के समय समाप्त हो गया ।

इन प्रधान सुल्तान राजवंशों के अतिरिक्त और छोटे छोटे सुल्तानी राज्य
 छतर स्थानों पर स्थापित होते-थ्या बिगड़ते रहे और इनके सम्पर्क का राजनीतिक
 स्थिति परिवर्तन के साथ भारत के सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों पर बहुत
 प्रभाव पड़ा । उस प्रभाव की भारतीय भाषाओं पर भी पूरी पूरी छाप पड़ी है ।
 जब हम अपने देश की रक्षा न कर सके और जब इन आगंतुक शत्रुओं ने धर्माविरता के
 कारण हमारे सामने ही हमारे उपासनागृहों देवमन्दिरों तथा पाठशालाओं व

१- सूर की काव्य कला, डॉ० मनमोहन गौतम पृ० २५५ ।

ग्रन्थों का अध्ययन किया और हम लोग देखने के अतिरिक्त कुछ प्रतीकार भी न कर सके तब हम हिन्दुओं के हृदय में हमारा आत्मगौरव, उत्साह तथा शौर्य अक्षत हो जा रहा । जब हम वास्तव में आत्मगौरव के कार्य करने में अक्षत हो गये तथा धर्म, गायत्री की रचना या कवण करना हमारे लिये सम्भव नहीं रह गया । ऐसी दशा में सर्व आश्रय भगवान की सुरक्षिणी पर बहुत विनाशित सक्ति की ओर दृष्टि लगाकर अर्थात् गुणोंवाला कर हम अपने हृदय का साक्षात् करने की चेष्टा करने लगे । इन आश्रयों की वर्णमाला, कटारपन तथा हठधर्म की तक बढ़ी थी कि वे दूसरों को अपने अपने विचारानुसार अपने दृष्ट देव की उपासना करने में पूरे बाधक बन बैठे । जरा जरा बढ़ाने छुड़ाने धर्म, जैन धर्म, उन्मत्त आदि की प्रष्ट करने में सदा प्रयत्नशील रहे । इन कारणों से निगुण उपासना की ओर अन्यायपूर्ण की ओर बढ़ी । शक्ति प्रिय हिन्दुओं ने, जिनमें यह गुण बलान्तर उत्कर्ष की पहुँचा दिया गया था और जो अपने परमेश्वर की समग्र दृष्टि का दृष्टा समझते जा रहे थे, मुक्तमानों से बंधे मिलाने के लिये राम रहीम की एकता का भी प्रस्ताव किया था तथा कुछ अल्पदय मुक्तमानों ने इसमें योग भी दिया पर वह प्रयास भी अब तक व्यर्थ हो जा चुका । इसमें भी कुतन्त्र: कही ईश्वरवाद चल रहा था जिसकी मंथन लीला का उनकी भी नित्य अनुभव हो रहा था । हिन्दु जनता स्वातन्त्र्य, राज्य, धर्म जो दि सभी कुछ साँवर भी अपना संकृति अन्धता जा दि सोना नहीं चाहती थी और न ही चली थी । इसलिए उसने इस परिस्थिति परिवर्तन से ईश्वरानुसृत प्रेम अर्थात् धर्म का आग्रह लिया और रामकृष्ण जी धर्म का ऐसा प्रचार बहा कि उसने सारा देश तरंगित हो उठा ।^१

बाँझालीन तथा उसके पूर्व के कर्मकांड का समय व्यतीत हो चुका था और उसकी ओर जनता का चित्त हट गया था । गुरुद्वय, गार्हस्थ्य धर्म त्याग कर विरहित

तथा ज्ञानमार्ग की ओर बग़र नज़र हो सकता था और यह उस उपासना की ओर आकृष्ट हो रहा था, जो गार्हस्थ्य पर्व निबाधित हुए प्राप्त हो सकता था । कुमारि० मय्य तथा शंकराचार्य ने बौद्धधर्म का, उन्नी की जन्मभूमि से निर्वासन कर दिया था, पर शंकर का ज्योतिषाद का ज्ञान प्रचलन हो था । उनके दो शताब्दी अनन्तर श्री रामानुजाचार्य का प्राहुर्मात्र हुआ, जिन्होंने विशिष्टाद्वैत मत का प्रवर्तन किया । उन्होंने पहले पहले ज्ञान तथा उपासना का सम्मिश्रण किया और परब्रह्म परमेश्वर के त्रिगुणात्मक चित्ति में से विष्णु मगवान के अवतार पूजन का उपदेश दिया । इससे बाद वैष्णवों के दो प्रचलन चल हो गये । प्रथम के आचार्य श्री रामानन्द की थे जो श्री रामानुजाचार्य के सम्प्रदाय में हुए तथा दूसरे के श्री विष्णुस्वामी, श्री कदाचार्य तथा श्री निवाकाचार्य हुए । विष्णुस्वामी के जन्मार्त श्री बल्लमाचार्य तथा माधवाचार्य के जन्मार्त श्री कृष्ण वैद्य महाप्रभु ने अलग अलग नवीन शाखाएँ बलाई ।

उस गुण उपासना के साथ साथ नवीन परिस्थिति के अनुसार निर्गुण उपासना की भी प्रथा बली । यह सामान्य मयितमार्ग था और इनको भी दो शाखाएँ फ़ुल निकली । ये दोनों ही स्केश्वरवाद को लेकर बली तथा दोनों के ही परमेश्वर निराकार होते हुए भी त्रैगुण सम्पन्न माने गये । प्रतिमापूजन का इनमें बहिष्कार था, अतः वर्णव्यवस्था का इनमें किसी प्रकार का भी बन्धन नहीं था । धूर्ति पूजा तथा जातिव्यवस्था इन दोनों पर इन पंथवालों ने कुछ व्यंग्यवाण बाले हैं । ये प्रवर्तकगण केवल सभी जातियों के हिन्दुओं को ही नहीं, सुषुमानों तक को अपने मत में लाने के लिये उजा धर्म के उपयुक्त उपदेशमय मार्ग निकालना चाहते थे । इनमें एक में प्रख्यान का प्राधान्य है दूसरे में भूक्ति मताहुत अतः कि प्रेम का । त्रिगुण उपासना मार्ग की एक मुख्य शाखा श्री कृष्ण की मयित की है जिसके आचार्यों का ऊपर उल्लेख हो चुका है । इन आचार्यों के जन्मार्त श्री विष्णुस्वामी के सम्प्रदाय के जन्मार्त श्री बल्लमाचार्य का जन्म वर्षारण्य में वैशाख कृष्ण एकादशी ६० १५३५ क्रि को हुआ था और आपाङ्क शुक्ल तृतीया ३० १५८७ को कोशी में इनका

गोलोंकाव हुआ ।^१ उन्होंने समग्र देश का पर्यटन कर अपने मत का विचार किया था । उन्होंने कुन्दाव ही में अपना मुख्य गद्दी स्थापित की थी, जो उनके उपास्यदेव की कृष्ण जो लाला मृमि थी । उन्होंने वात्सल्य पात्र के की कृष्ण जो की उपासना की थी वतः वात्कृष्ण ही उनके उपास्यदेव थे । इनकी पुत्र की पिठलदास जो ने अपने पिता के वार तथा अपने शिष्य कृष्णियों को हुनकर अष्टाप स्थापित किया था । सुरदास, दुम्नदास, परमानन्ददास तथा कृष्णदास इनके पिता के तथा नन्ददास, गांविन्ददास, दीपत स्वामी तथा चतुर्भुज दास इनके शिष्य थे । उनत अष्टाप के प्रायः सभी कवियों के काव्य की पृष्ठ मृमि लगभग एक ही ही है ।

उपरोक्त पंक्तियों में नन्ददास तथा उसी पूर्व सुरदास के काव्य की पृष्ठमृमि का बहुत संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है । हुनात्मक दृष्टिकोण से यदि हम पृष्ठमृमि पर दृष्टिपात करें तो हमें बहुत अधिक कहने को नहीं प्राप्त होगा । अस्तुस्थिति तो यह है कि उः समय की परिस्थिति को हमारे मत काव्यों पर लागू सकता ही प्रभाव पड़ा है । इस दृष्टिमागीय सम्प्रदाय में ही दोषित होकर नन्ददास ने भी अन्य कवियों को मोति तत्कालीन कृष्ण लाला गान से गुंजरित वातावरण में अपना काव्य छवनि मिलाई ।

निष्कर्ष :-

जैसा कि उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य में अष्टाप के कवियों का एक महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट स्थान है । यदि हममें केवल सुरदास ही होते तो उनके पड़ी प्रतिष्ठा होती । परन्तु हममें नन्ददास भी कम महत्व नहीं रखते हैं । हिन्दी साहित्य के विकास का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें उन दोनों महान कवियों के काव्य का अध्ययन करना पड़ेगा । ब्रजभाषा के ये अनमोल रत्न हैं ।

शूर की कविता संसार के महान कवियों से किसी भी कृति में न्यून नहीं है। उन्होंने अपने काव्यमें कहीं कहीं तो इतना समस्कार प्रदर्शित किया है कि लगता है असम्भव को सम्भव बना दिया है। शूर मान को झूठे कर देने में पटु है। और यही उनके बालवर्णन की विशेषता है। यह एक सुगुणमार्गी शाक्य की, जाध्यात्मिक वृत्ति के सर्वथा अरूप ही है। नन्ददास के काव्य में माधुर्य प्रचुर मात्रा में है। इन कवियों के ग्रन्थों में केवल काव्य ही-दर्य ही नहीं है, संगीत का ज्ञान ही नहीं है, कृष्णमयित का विविध रूप ही हमें मिलता है। साहित्य प्रेमा इनके काव्य का रसस्वादन करते हैं, संगीत समझ इनको सुनकर प्रफुल्लित करते हैं और मन्त्र उन्हें सुनकर परम आनन्द प्राप्त करते हैं। शूरदास कहते हैं --

जो रस रास रंग हरि कीन्हें बड़े नहीं ठहरा-याँ
और नन्ददास कहते हैं --

रूप प्रेम आनन्द रस जो कुछ जग में जाहि ।

जो सब गिरिवर देव की, निभरक बरनीं ताहि ॥

उस युग में मन्त्र कवियों ने प्रेम आश्नकी की दिव्य क्रिय वारां वरा दी थी। शूर व नन्द ने अपने काव्य के द्वारा मानव मात्र की महान सेवा की है।

तृतीय अध्याय

नन्ददास जी की काव्य कला का रूप, भाव, रस, अलंकार, छन्द और भाषा

अलंकार की सार्थकता उसकी अनुसूतियों के अलंकार होने से निश्चित होती है। वैसे, अनुसूतियों को निराकार होती है पर प्रधान कवि अपनी तीव्र कल्पना शक्ति के बल पर उन्हें अलंकार रूप प्रदान करने के लिये शब्द चिह्नों का निर्माण करता है। जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सब के उस भाव का जागृयन हो। ऐसे तब तक उसमें रसाङ्गोष्मण की पूर्ण शक्ति नहीं जाती।^१ रूप मंजरी में एक स्थल पर नन्ददास ने कहा है कि रस से परिपूर्ण सरस्वती के वरणों की कदना करता हूँ और न मागता हूँ कि हुँके रसों के अलंकार व कवन है जो हुँकर, कोकल व अमृते को और जो कवन सुनने से समझने में अत्यन्त मुश्किल है। वे न तो उबरे हो हैं और न अत्यन्त गूढ़ हैं।^२

इससे प्रकट है कि कवि ऐसी कविता की कामना करता है कि जिसमें सौन्दर्य, कोमलता व भाव्यता हो हो, उसमें अनुठापन व प्रातादिकता ना हो। कोमलता, भाषा अन्तर्गत कोमलान्त पदावली के रूप में जाती है। कवि ने भाव्यता को लेकर जो यह कहा है कि उसकी कविता कवन सुनने में मधुर हो, तब भावों में मधुर होने का वाचा मिलता है। कवन के अनुठेपन की कामना है जो भावपद का स्मरण होता है तथा कवन के अत्यन्त में नाहित उबरे गूढ़ न हो। के कथन है भाषा की ओर अनेक परिणित होता है।

इस प्रकार काव्य के दोनों पहलू भाव और भाषा के प्रति कवि के दृष्टि-कोण का ध्यान मिलता है। कवि की कामना जितनी भावोत्कर्ष प्रकृत करने की होती है, भाववाहिनी भाषा के सौन्दर्य, कोमलता, मधुरता और सरलता की ओर

१- चिन्तामणि - पहला भाग - पं. रामचन्द्र शुक्ल पृ. २२७

२- १६४६, प्रकाशक इण्डियन प्रैस, कलकत्तावाव।

उसमें किसी भी प्रकार कम नहीं है। नन्ददास द्वारा उनकी भाव और भाषा के फार्मों पर, उनके काव्य की दृष्टिगत रहते हुए जाने विचार करें।

यह तो स्पष्ट हो है कि नन्ददास का ने रूप, प्रेम और आनन्द रस के वर्णन को ही अपना कृतियों में स्थान दिया है और वह वर्णन निरुपेक्ष रूप में इस भावना से किया है कि वह सब भावनाओं का कृष्ण ही है सम्बन्धित है, यह भावना उसके मनुष्य हृदय का अतीतास्थिता वारा में निश्चित होनेके उपरान्त ही स्वयं में प्रकट हुई है। अतः मन्त्रित भावना की प्रेरणा से ही नन्ददास कविता काव्य में प्रविष्ट हुए जिससे उनकी कृतियों में मन्त्रित भाव का ही प्राधान्य दृष्टिगत होता है। कवि ने स्वयं कहा है कि हरिभक्त विहीन कविता अतीति विग्रह निष्प्राण होती है और उसके प्रवण का ही कोई फल नहीं होता।^१ किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनका काव्य मन्त्रित का उपदेशक काव्य है, अपितु तथ्य है कि उससे भावना जगत की मन्त्रित भाव सम्पन्नता के साथ साथ सामान्य हृदय का रससिद्ध करने की प्रवृत्ति में विद्यमान है जो कवि के इस कथन से स्पष्ट है कि उसका कविता कोई ऐसा व्यक्तित्व न सुनै जिसका हृदय तब न ही क्योंकि वारंवार व्यक्तित्व रस कविता को सुनै भी तो वह व्यर्थ है, उसमें उसे कोई आनन्द नहीं मिल सकता और विषम, अनुभाव व स्वीकृतिमान भावों से परिपुष्ट करके कवि भाव को रस कीटि तक पहुँचा भी दे तो उसका आस्वादन बिना अनुभवता के नहीं हो सकता। जिस प्रकार व्यक्तित्व जितना चाहे सुखाद बना हो, पर यदि आस्वादक स्वस्थ शरीर और मन का न हो तो उसे आनन्द नहीं मिल सकता, उसी प्रकार कविता में रस का चाहे जैसा परिचाक हुआ है, उसके पठन और प्रवण से तभी आनन्द प्राप्त हो सकता है जब पाठक या श्रोता हृदय हो। अतः कृतियों के जायात पर कवि इसी भावविषयक अनुभूति का चित्रण करना यही अपेक्षित है।

अनैकार्य माषाः

यह कवि की सर्वप्रथम रचना है। इस कृति की रचना के समय कवि का संसार की असंगतता का अनुभव हो रहा था तथा उस के फलस्वरूप उसके हृदय में भगवद् भाव उदय हुआ। भाव की आरम्भिक अवस्था में वह मन को लौं किन्तु कामनाओं से विरत करके भगवद् भाव की दृढ़ता की ओर उन्मुख किया देता है।^१ वह एक मन से लौं किन्तु विचारों को दूर रखने का यत्न करता है।^२ और दुसरी ओर भगवान की कृपा तथा कृपा का स्मरण करके उनसे अपने ऊपर का यत्न के^३ द्वारा उनसे से जीन होने का कामना करता है।^४ यह कामना भगवान की दीनवत्सलता पर अत्यन्त बाधारित है, अतः उसमें कवि के हृदय का दैन्य भाव फलकता है। यद्यपि ऊपर से उसकी दीनता का आभास सर्वत्र न होने की प्रतीति होती है, तथापि वह भावों के अन्तराल में सतत विद्यमान रहता है और मार्गपाने पर अवलम्ब धारा की मान्ति प्रवृत्तियान हो उठता है। यहाँ शान्त रस के अनुकूल सभी अवस्थायें मानों एकत्र हो गई हैं। शम, दैन्य, माति, स्मृति आदि संचारी भाव निर्वेद भाव की पुष्टि के लिये पर्याप्त हैं। ईशविन्दन^५ संसार का कुराता^६ यौवन की जाणमुरता^७ का उत्प्लेख आलम्बन विभाव और विधि निषेध से युक्त ईश मनोपदेश^८ उद्दीप्त विभाव का काम करते हैं। संसार से ऊँचि, तल्लीनता, विषय, त्याग, अनुभाव के रूप में आये हैं।

१- न० १०, अनैकार्यमाषा, दोहा १८

२- वही, दोहा २०

३- वही, दोहा ६२

४- वही दोहा ६२

५- वही दोहा २४, ३०, ५७ आदि

६- वही दोहा ३२

७- वही दोहा २६

८- वही दोहा ६०

श्याम सगर्ह :-

श्याम सगर्ह में वात्सल्य रति तथा अन्य भावों^१ की अवतारणा की गई है। यशोदा के हृदय में अमिलाषा, अंतर्भुज्य, सौमयिन्ता और स्वर्ण के द्वारा^२ त्या कीर्ति के हृदय में जड़ता^३ एवं दैन्य^४ कर्म के द्वारा वात्सल्य भाव की परि-
पुष्टि हुई है। स्व दर्शन^५ और उमरें उपरान्त जाये, किञ्चिता जड़ता^६ विवशता^७
स्मरण विन्ता उत्तुङ्गता और लज्जा द्वारा राधा के हृदय का रति का भाव एवं
स्वर्ण^८ त्या किमिद^९ के द्वारा ग्वालों के हृदय का सत्य भाव प्रकट हुआ है। भाव
पदा के हृदय-कर्म साथ साथ श्याम सगर्ह में विचारपथा भी देने को मिलता है।
कृष्ण को देखकर राधा देखे ही जाती है, किन्तु वह विवश है। प्रेम की पक्ष
विवशता तक ही तक है। कवियों, मुनि कुंभार्ह ताहि एक जलन यताउं दहकर
जागे फलता है :

कवियों काटी नाग मैं,
जो पूछें तो माध्व ।
हम हैं नीत गोपारु की,
हैं हैं सुरत बुलार्ह ॥
कहीना पीट वहु । ११

१- नन्ददाउ ग्रन्थावली, अन्व ७, २६ और २८

२- वही अन्व १, ७ और २८

३- वही अन्व १४

४- वही अन्व १६

५- वही अन्व ६

६- वही अन्व १०

७- वही अन्व १३

८- वही अन्व १२

९- वही अन्व २६

१०- वही अन्व ६ और २८

११- वही पृष्ठ १६६

भावों के साथ सुदृढत्व का सामान्यतया उपस्थित करने की नन्ददास की प्रवृत्ति का आरम्भ यहाँ से होता है ।

नाममाला:-

इसमें कवि ने राधा के मान की दशा दिखाकर उसके हृदय में गर्व, मोह, मान, राग, ज्ञाना, अतुराग आदि भावों को दिखाया है । सखरी द्वारा प्रिय के गुण, कथन, शौर्य कथन, अमिस्तत्व, प्रदर्शन, सुशोभी सरद रजनी, कृष्ण को आहुता के वर्णन से राधा के रति भाव को उदीप्त करने का प्रयास किया है । उसमें कृष्ण के हृदयस्थ भाव, अमिताभा, आहुता, विमरता, शैत्य आदि का वर्णन करके राधा के प्रेमभाव- अमिताभा, आहुता, विमरता, शैत्य आदि का वर्णन करके राधा के प्रेमभाव को परिपुष्ट करने की चेष्टा की निहित है । इसमें कवि का हृदय प्रेमभाव की निमग्नतामयता में राधा का मान का वर्णन करता है । कृति का विषय प्रसृतः शब्द पर्याय जितना होने के कारण कविभाव तारतम्य को पूर्णतः स्पष्ट नहीं कर पाया है, किन्तु जहाँ-जहाँ भी अवसर मिला है, उसके हृदय का भाव उस रूप में प्रकट उमड़ा पड़ा है ।

कवि ने सखी के माध्यम से कृष्ण के हृदय के विलम्ब और आरति के भावों को अपने सखी रूप में पदवाना है तथा उसने राधा और कृष्ण की रसपूर्ण अवस्था का वर्णन किया है । तभी तो राधा के लिये निपट रही थी^१ और कृष्ण के हृदय के रस दशा को उल्लेख करते हुए राधा से रस में विष जितनी घोरि तथा परीं बुरी के व्रज तिर विरस कां रस माधि^२ के कथन उनके मुख से अनायास निकल पड़े हैं । संयोग होने पर राधा कृष्ण की जिस भावदशा की जिस भाव दशा की अनुभूति कवि को हुई, उसे उसने परम प्रेम धरवाई^३ कहकर प्रकट किया है । नाम माला में

१- नाममाला, दोहा २४२

२- वही, दोहा २०६

३- वही दोहा २६१

कवि का विचार पदा की अवृथ्थ नहीं होने पाया है । उस प्रकार नाममात्र में हम कवि के भाव और विचार जगत के समन्वित दृष्टिकोण का आभास पाते हैं ।

रसमंजरी :

रसमंजरी में कवि की भाव देशा उस कोटि की हो जाती है कि संसार में जो कुछ भी रस है, उसके आधार की अवृथ्थि उसे पाना ही हो जाने जाता है ।^१ और उसके पाल्श्वरूप ही उसको प्रकट करने की और वह प्रकट होता है ।^२ विप्रश्च न बोझा नायिका प्रिय के साथ होने पर भी गाठ-बाँझ ने आवृथ्थ नहीं हो पाती है, क्योंकि उसे मय है कि कहीं हृदय में उत्पन्न नखनख का अंकुर दूट न जाय ।^३ मध्या नायिका के हृदय में लज्जा द्वारा रतिभाव दिन प्रति दिन बढ़ता जाता है । प्रिय के साथ मिलने होने पर उसकी मनोदेशा ऐसी हो जाती है कि वह न सौ पाती है और न जागना चाहती है ।^४ प्रौढ़ा नायिका में रतिभाव की वृद्धि का आभास अधिक जनों के मन में मिलता है । वह प्रेम रस से मरी रहती है उसे कीधु रात्रि मानी है और प्रातः होने की आशंका से उसे दुःख होता है ।^५ मध्यमा धीरावीश नायिका के हृदय में प्रियतम की पास पाकर नव अनुराग उमड़ता है ।^६ और विद्यांग में प्रेमभाव की तीव्रता के कारण परकीया प्रेषितमति का हृदय अवी की अग्नि के समान तमने जाता है ।^७

प्रौढ़ा विप्रश्च में तो रति के साथ साथ मय और वैश्य भाव भी जात गये

१- नन्ददास ग्रन्थावली, पृष्ठ २

२- ,, ,, बोझा ७

३- ,, ,, पृष्ठ ४४

४- ,, ,, पृष्ठ ५४

५- ,, ,, पृष्ठ ५८-६१

६- ,, ,, पृष्ठ ७२-७५

७- ,, ,, पृष्ठ १२३-२८ ।

हैं । कुंज सदन में उलियों को न देखकर उसे उलियों की उपस्थिति का मान ही नहीं रहता । अपने को जेठे समझकर वह कामदेव से मय हाती है और दीनतापूर्वक शिंजी से रसार्थ चिन्तित करती है ।^१

परकीया प्रीतकामनी खोती से कहती है कि प्रियतम कुछ जाने को कह रहे हैं, भगवान् कुछ ऐसा करे कि जैसे कुछ हो ही नहीं ।^२

जम्बूज नाक के छाणों का कथन करते समय श्रीराम के हृदय का दीनता और रूपा का मान सत्य ही प्रकट हो गया है ।^३

उपयुक्त उद्धरण रसमञ्जरी में नन्द के मन्त्र-विशेष-की मातृभाव की दिशा की सुचना देने के लिये पर्याप्त है । रसमञ्जरी में प्रेमरस के अतिरिक्त विनारस का भी समावेश है । जहाँ परकीया नायिका अपने हृत् को बुद्धिबल के सहारे धिमाने की चेष्टा करता है ।^४ मन्मथा उत्काठिता नायिका प्रिय को न जाने का कारण ज्ञात करने के लिये बुद्धित्व का आश्रम ग्रहण करती है ।^५ उसी प्रकार सुग्रीवा स्वाधीन पति का कै प्रसंग में मदन बाहरी^६ का उल्लास कर काम ने विचार पक्ष का समर्पण किया है । अतः रसमञ्जरी में मातृभाव के साथ साथ विचार पक्ष को भी समाविष्ट होने का अवसर मिला है ।

रूप मञ्जरी :-

रसमञ्जरी में काव्य की मातृत्व की अनुवृत्ति ही रूपमञ्जरी के रूप में होती है । उसे जान पड़ता है कि मन के सरस हुए बिना रसवस्तु का अनुपम नहीं हो सकता और मन को सरस करने की दृष्टि से वह रूपमञ्जरी में प्रेममञ्जरी का वर्णन करता है । उस

१- नन्ददास ग्रन्थामली, पृ० २०२-६

२- वही पृ० ३०३

३- वही पृ० ३२०-२६

४- वही पृ० ३०२-३०६

५- वही पृ० ३०६-३२

६- वही पृ० २६२-६६

वर्णन का आधार उपपत्ति मात्र है जिसका अनुभव उसे हृदयमति के रूप में रूपमंजरी के रूप में निष्कल होने की वारंता है उत्पन्न क्षम के उपरान्त होता है । कवि विनतीपूर्वक गिरिवर से कहता है कि मैं परम उदार गिरिवर, तुम क्यों के भी क्यों हो, यह तरि मर्यादा में हूँ रही है उसे पार लाजो ।^१

स्वप्न में अपने प्रियतम को पाकर रूपमंजरी के हृदय में अनुराग उत्पन्न होता है जिसे कवि ने उज्जा, विलम्ब, अवहित्थ और अर्थ द्वारा प्रकट किया है तथा उसमें उसी प्रकार अविकाशिक पैठता जाता है जैसे हाथी पक्ष में रूपमंजरी को रूपदर्शन के उपरान्त प्रियतम के रूप का अनुभव होता है किन्तु वह उसे प्रदत्त करने में असमर्थ है क्योंकि रूप के रूप के रूप को नैनो द्वारा ग्रहण किया जाता है किन्तु रिवर ने नैनो का वाणी नहीं दी है ।^२ वह कहता है कि रूपमंजरी, अकृष्ण के रूप का वर्णन करना चाहती है, किन्तु नहीं करती है, उसे यह है कि बोलने पर हृदय से मोहन की वृत्ति ही न निकल जाय ।^३ मनोगत भावों को प्रकट न कर पाने रूपमंजरी को इस स्थिति में अवहित्थ का भाव प्रकट होता है । रूपमंजरी के हृदय से मोहन के रूप वर्णन को सुनकर हृदयमती के हृदय में विलम्ब और रूप के द्वारा मग्नद्वारि के भाव का आभास होता है । यहाँ पर उस भाव में आमग्न (आमग्न) और उसके मुर्च्छित होने से वास्तविक अनुमान प्रत्यक्ष की प्रतीति होती है ।^४ सुवि जाने पर वह मुड़ी भी रहती है ।^५

स्वप्नदर्शन के उपरान्त प्रियतम के प्रति उत्पन्न प्रथमप्रेम को हाव और चेता के द्वारा रतिभाव की ओर ले जाने की चेष्टा की गई है ।^६ यही आन्तरिक भाव के रूप में आकुलता और सात्विक अनुभाव के रूप में स्टाप्स और स्वरंजन और वैचर्य

१- कदवाय ग्रन्थावली रूपमंजरी	पृ० १७४
२- वही	पृ० २१४
३- वही	पृ० २३०
४- वही	पृ० २३३
५- वही	पृ० २४६
६- वही	पृ० २५५
७- वही	पृ० २६६-६६

देखने को मिलते हैं ।^१ रूपमंजरी के द्वारा प्रियतम से प्रत्यक्षा में मिलने के लिये जाकुल होने पर उसके बाकुलता के भाव कवि ने अति बारबार कहकर प्रकट किया है ।^२ स्मिन्मत्तु के प्रकाश से रूपमंजरी के हृदय में मय के भाव को भी प्रत्यक्ष मिला है जो कवि के मातृ मर्द के कथन से प्रकट होता है ।^३ ग्रीष्म कर्तु के प्राग में, दिवस दशा के वर्णन करने में लाल ने जाकुलता को भाव को प्रकट करने^४ रूपमंजरी को मनोदशा की ध्वना उसी के मुख से अब मीरे शिबु जिम्मा न जाई^५ कहाकर दी है । उसका प्रियतम से सर्वप्रथम समागम होता है, क्योंकि उसने हृदय में उज्जा का मन्त्र है ।^६ उज्जा के कारण ही रूपमंजरी अंध से दिया बुझाकर अंधरा करना वांछती है और दिये के न बुझने पर वह प्रियतम से छिपट जाती है ।^७ इस प्रकार रूपमंजरी में नन्ददास की रति या प्रेमभाव के द्वारा अंगार रस की अनुभूति करने की अकाल चेष्टा की है । रतिभाव के अतिरिक्त उसमें वैय्य, मय, निर्वेद जैसे भावों को भी रचक प्रत्यक्ष मिला है । परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि यशरति लौकिक नहीं, एगवद् रति है और उससे कवि के हृदय के मन्त्रितभाव की ही महत्ता प्रकट होती है ।

अस्तुतः रूपमंजरी में जो विचारतत्त्व का समावेश ऊपर दृष्टिगोचर होता है, वह भाव प्रकाशन के सहायक के रूप में ही आया है । इससे यह भी ज्ञात होता है कि कवि ने माञ्जुशरण की धुन में विचारपदा की नितान्त उपेक्षा नहीं की है और जहाँ भी अवसर मिला है, उसे स्थान देने में संकोच नहीं किया है ।

विरह मंजरी:

विरहमंजरी के आरम्भ में ही कवि ने परम प्रेम उच्छ्वसन के कथन द्वारा ग्रन्थ में जाने वाले प्रेम या रति भाव की ध्वना देने की चेष्टा की है । कृति के रचना के समय नन्ददास विरहणी गोपियों के मानस में पैठकर उनके भाव जगत से परिकल्प प्राप्त

१- नन्ददास ग्रन्थावली रूपमंजरी	पृ० २६८-८६
२- वही ३	पृ० २८७-६२
३- वही	पृ० ३७२
४- वही	पृ० ४७६
५- वही	पृ० ४७६
६- वही	पृ० ५०६
७- वही	पृ० ५१०

कर चुका था और उसके परिचय हम अनुसूति को प्रगट करने के लिये ही विरहमंजरी का प्रणयन किया। इसमें देशान्तर विरह का वर्णन कवि ने इसलिये किया है कि उसमें पावकों का रससिक्त होने का साम्रा मिले।^१ देशान्तर विरह के इस वर्णन में स्मृति, विकलता, उग्रता, हर्ष, चपलता, अश्रुया, दैन्य, व्याधि, त्रितर्क आदि के द्वारा रविशिव की परिपुष्टि सहज हो हो गई है।

तत्त्वतः, विरहमंजरी सै नन्ददास के पाव ज्ञात की एक विशिष्ट स्थिति की और ही संकेत मिलता है। कवि का वारहमासा का विरह का चित्रण स्पष्टतः पाव चित्रण है। प्रत्येक मास के आगमन पर विरहणी के हृदय की जो दशा होती, कवि ने उसे मनोवैज्ञानिक ढंग से उपस्थित किया है। विचार पक्ष की दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि विरह मंजरी का आरम्भ ही विचारतत्त्व को लेकर हुआ है। श्रीकृष्ण सदाकृन्दात्म मे रहते हैं, फिर भी ब्रजवाला को उनका विरह विचारणीय है। कवि ने ब्रज-विरह के कारण पर पूर्ण प्रकाश डाला है। अनुसूति के साथ यह विचारतत्त्व ही है जिसके अवलम्ब से कवि कहता है कि यदि मित्र में अवगुण होते तो भी उन पर विचार नहीं करना चाहिये।^२ और न ही उन्हें किसी से कहना चाहिये।^३ ब्रजवाला संदेश में कहती है :-

हो ससि जाँ प्रिय नन्दकिशोर - अवगुन कहन लीं छुड़ मारे।

तुँ तुम तिनको कहियो ऐसे - दहक कहुँ न जग्यासै जैसै ॥^४

यही कछुरि कहुँ न जग्यासै जै द्वारा विचारतत्त्व की स्पष्ट प्रतीति होती है। वस्तुतः कवि ने ब्रज विरह के जिस रूप को विरहमंजरी में अपने काव्य का विषय बनाया है, बुद्धि तत्त्व का समावेश होते हुए भी उसकी नैसर्गिकता नहीं जाने पाई है।

१- विरह मंजरी	पृ० १७
२- वही	पृ० २३
३- वही	पृ० ८०
४- वही	पृ० ७३

रुक्मणि माल :-

रुक्मणि माल में वह स्थल अत्यन्त मानपूर्ण बन पड़ा है, जहाँ रुक्मणि विष्णुपालिका की देत की ध्वजा से चित्र लीला की रह जाती है । इस अप्रत्याशित ध्वजा से उसे विस्मय होता है । उसका मुख घुरफा जाता है और नेत्रों में आँसु पड़ जाते हैं । सती के पूरुषों पर वह कहती है कि पुण्य वृत्ति जातों से जाने से ही उनमें जल पड़ आया है ।^१ उसे अनुमन होता है कि उसके हृदय में विरहताप उत्पन्न हो गया है इसलिये वह बोलते समय मुँह ज्वर कर लेती है ।^२ जिससे उसके लम्पट श्वाश का मान दूसरों को न हो । कवि ने उसके विकलता के भाव का कौन जादू उभाव पर दृष्ट न कर न आये^३ के कथन है और रति भाव के प्रकट होने को द्वारा रहति क्या प्रिय रति प्रकटादि देत दितार्ह^४ कहकर जतलाया है ।

विरह भाव की उग्रता की स्थिति में रुक्मणि के हृदय में बारूक का भाव पैदा होता है । वाकुलता का भाव रुक्मणि में तब तक बना रहता है जब तक श्रीकृष्ण उसे ग्रहण नहीं कर लेते और कवि ने इस भाव की बारूक ललित रुक्मणि जानिप्रिया की बारूक, हरि जलर सौ आये^५ तथा जातुर जिपत वकौरो जैसे कथनों द्वारा सूचित किया है ।

रुक्मणि का पत्र पाकर प्रेम के कारण श्रीकृष्ण की जाँ मनोदला हुई, वह भी अत्यन्त मनोवैज्ञानिकता के साथ चित्रित हुई है । प्रेम की सुस्थिरता के लिये वैध भाव का आगमन अनिवार्य है । रुक्मणि माल में भी यही देखने को मिलता है । साथ ही इस ग्रन्थ में कवि की रति की समीप व विस्मय दोनों अवस्थाओं का चित्रण किया है । रति भाव में स्थित मनोदला का सख्त चित्र प्रस्तुत करने में

१- नवदास ग्रन्थावली रुक्मणि माल, अंक १-६

२- वही
३- वही
४- वही
५- वही
६- वही

अंक ७
अंक ११
अंक १२
अंक २७
अंक ७५

वह पूर्ण सजात रहा है। हाँ, हकमणि का सात्विक अनुभावों का कवि ने एक साथ ही परिणाम कर दिया है, जो असरता है। रति भाव के अतिरिक्त अन्य जितने भी भावों का यही समावेश हुआ है, कवि ने उनकी वही ही भाव प्रवणता से इस प्रकार रखा है कि वे रति भाव की ही परिपुष्टि हेतु समाविष्ट हुए विदित होते हैं और स्वतन्त्र रूप से अपना कोई महत्व नहीं रखते हैं।

भाव प्रवणता के साथ हकमणि कोल में विचार प्रसरता के भी दर्शन होते हैं। हकमणि कोल में प्रवाहित भावधारा में स्थल स्थल पर विचार तरंगें दिखाई देती हैं। इन तरंगों का स्वतन्त्र रूप से कोई महत्व नहीं होता, अपितु वे उक्त भाव धारा के प्रबलतर को ही सूचित करती हुई जान पड़ती हैं।

रासपवाध्यायी:-

उन ग्रन्थ में हृकदेव जी की कन्दना, श्रीकृष्ण की शोभा, शरद, रजनी, सुरली आदि के वर्णनों के अन्तराल में कन्दवास के हृदय का भावदरति भाव ही प्रख्यान रहा है। उसी भावमग्नता का स्पष्ट परिचय श्री कृष्ण की सुरली ध्वनि सुनने की हुई गौपियाँ की विरह दशा के साथ मिलना बारम्बार होता है। सुरली नाव को सुनकर गौपियाँ की जो दशा हुई, उसका विवक्ति करते हुए कवि कहता है :-

सुनत बली व्रज बहु गीत सुनि को मारग गहि ।

मवन मोति ह्रम कुण पुन किहू अटकी नहि ॥ १

जो गौपियाँ शरीर कृष्ण की ओर नहीं जा सकी, उनकी मनोदेश के कारण कवि ने कोटि बरस लग नरक मोग अब मुगते दिन मे के कथन द्वारा प्रकट किया है। कृष्ण के स्मरण द्वारा गौपियाँ को जिस बानन्द का अनुभव हुआ, उसकी सुचना कोटि स्थायी मोग क्षीन कोने कोलसब के कथन के रूप में दी गई है। प्रिय कृष्ण

१- कन्दवास ग्रन्थावली, रासपवाध्यायी, पृ० अंक ५२

२- ,, ,, ,, अंक ५३

के साथ विहार करने पर गोपी हृदय के गर्म का भी अनुभव कवि ने किया है जो नहि
 अचरु जो गरम करहि गिरिवर की प्यारी^१ के रूप में प्रकट हुआ है। गोपियों कृष्ण
 को उन्मत्त की नाईं दृढ़ती है। और कृष्ण की लीलाओं का अनुसरण करती है।
 प्रियतम द्वारा परित्यक्त प्रेयसी के विरहजन्य मास दशा को हृदयस्पर्शी रूप में प्रस्तुत
 करते हुए कवि कहता है कि उसके नेत्रों से बहती हुई जलवार, द्वार को धौंती हुई
 पृथ्वी पर जारही है और उसके मुख की हानव से बाकृष्ट होकर जो प्रमत्त उस पर मँडराने
 हैं, उन्हें भी उड़ाने में बल असमर्थ है।^२ यह है महाबाहु प्रियतम। कहीं यों कहती
 हुई ऐसे दोन और कृष्ण स्वर में विलाप करती है कि उसे सुनकर पदांगि हो नहीं,
 पूरे पाँवे और उता जादि मो इवित होकर राने जाते है।^३ यहाँ व्यांग रति
 का परित्यक्त सात्विक अनुमान श्रु द्वारा तो दिया हो गया है, स्तब्धा, दैन्य और
 कृष्णा की उपस्थिति द्वारा यह स्पष्ट भी हो गया है।

विरह विकलता की स्थिति में गोपियों अज्ञात प्रियतम के व्यवहार में
 उनकी निष्चुरता और गर्म का अनुभव करती हैं। कवि ने उसे गोपियों के द्वारा
 ही प्रकट कराया है। कृष्ण के प्रकट होने पर गोपियों में हर्ष का उचार होता
 है जिसे कोई कृष्ण के उर से लेकर कोई हाथ से लिपटकर और कोई गले से लिपट
 कर प्रकट करती है। कवि ने यहाँ पर परम आनन्द मयों है^४ के कथन द्वारा हर्ष
 की विशेष ध्वनना दी है। अपने प्रेम के प्रतिपादन का रसवचन के रूप में कृष्ण
 से पाकर गोपियों आनन्द मात्र से प्रियतम को हृदय से लगा लेता है और उसी हर्ष
 के द्वारा परिपुष्ट रतिभाव के बहिर्गुण होने का प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है।

कवि ने रति मास की रसमयीमा परिणति रासक्रीड़ा में दर्शाई है। इस
 प्रसंग में कवि को गोपियों का जो माधपूर्ण मनोवशा अनुमणनत छुं उसे प्रकट करना

- १- नन्ददास ग्रन्थावली रासप्रीत्याख्या पृष्ठ १०१
 २- वही पृष्ठ १४
 ३- वही पृष्ठ ३५
 ४- वही पृष्ठ ८

वह अविश्वसनीय के बाहर की वस्तु समझता है। प्रकट करना तो बुरी बात है, उसका अनुभव भी उसको नहीं हो सकता है। उससे विधित है कि रतिभाव उस ग्रन्थ में अपना पूर्ण अवस्था में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि रासलीला मावात्मक प्रकरण है और रास पराध्यायी में मावलहरियों निरन्तर बढोल्हियाँ करती हुई दृष्टिगत होती है तथापि जहाँ जहाँ भी अवसर मिला है कवि ने उससे बुद्धित्व को स्थान देने में कोई संकोच नहीं किया है। उसके आरम्भ में कवि ने गद्यामति मापा कीनी ^१ के कथन द्वारा बुद्धित्व का समर्पण किया है। गौपी गर्वहरण की दृष्टि से अन्तर्धान होने के उपरान्त श्रीकृष्ण जब प्रकट होते हैं तो गौपियों की प्राप्ति रीति विषयक तर्कपूर्ण प्रश्न में बुद्धित्व के दर्शन होते हैं। इस प्रकार उस ग्रन्थ में विचार पक्ष अधिक ठोस रूप से सामने आता है। यही विचारतत्त्व को केवल स्थान मात्र ही नहीं मिला है, प्रत्युत वह भावों से समन्वित होकर मनोरथ की प्राप्ति में सहायक होता है। वह गौपियों के उन्मुख प्रेमपूर्ण तर्कों का परिणाम है कि चतुर होते हुए भी श्रीकृष्ण उनके उन्मुख पराजय स्वीकार करके उनके कष्ट में ही जाते हैं।^२

सिद्धान्त पराध्यायी :-

इस ग्रन्थ में कवि ने रासपराध्यायी की सिद्धान्तिक व्याख्या की है। मावात्मक स्थल समान होने से यहाँ भी उन्हीं भावों का प्रय मिलता है जिनका उल्लेख रासपराध्यायी के विवेचन में मिलता है।

प्रियतम के हृदय में, प्रेमिकाओं के साथ किये गये मिलते प्रेमप्रसंग का स्मरण करके उनके साथ श्रीकृष्ण की अभिलाषा उत्पन्न होती है। यमुनातट पर कृष्ण ने जिन गौपियों के वस्त्र हरण करके लौटा दिया है, उन्हीं के साथ अब वे रासलीला

१- रासपराध्यायी, पृष्ठ २०, श्लोक १४

२- ,, ,, श्लोक १५

में र करना चाहते हैं ।^१ यहाँ मनकीर्णों द्वारा कृष्ण के हृदय की अभिलाषा का मापव्यक्त किया गया है । यही माप इस अन्य स्थल पर रम्याँ बसत रस रास द्वारा^२ प्रकट हुआ है । कवि ने गोपियों की सभी लौकिक एवं वैश्वी के परित्याग की वृत्ति में उनके हृदय के लौकविराग के माप का अनुमान किया है । कवि कहता है कि वर्ष, अर्थ, काम्य, कर्म जिनका आदेश निगम देते हैं, गोपियों ने सभी को छोड़कर कृष्ण का अनुसरण किया^३ प्रीतिम सुख रस को सुनकर गोपियों में एक ओर रतिभाव परिपूर्णता की ओर जाता है, दूसरी ओर खरार के प्रति त्याग वृत्ति दृढ़ होती है ।^४

जो गोपियों सशरीर कृष्ण के पास नहीं जा पाती, उनमें अर्थों द्वारा और सुरली नाद का अनुसरण करके कृष्ण के पास जाने वाली गोपियों में रस^५ द्वारा रति भाव प्रकट किया गया है । गोपियों के प्रेम वचनों के परिणामस्वरूप उत्पन्न कृष्ण के हृदय में आनन्द को कवि ने इस परे परे रस के कथन द्वारा प्रकट किया है ।^६ यद्यपि रासपंचाध्यायी की सैद्धान्तिक व्याख्या होने से सिद्धान्त पंचाध्यायी में विचारपक्व ही प्रदान है, तथापि स्मरणीय है कि प्रस्तुत प्रका में विचार पक्व बुद्धिमत्ता के अर्थ में ग्रहणीय है, सैद्धान्तिक अथवा दार्शनिक पक्व के अर्थ में नहीं । इस दृष्टि से विचार पक्व को प्रकट करने वाले तत्त्व, सिद्धान्त पंचाध्यायी में भी उसी प्रकार है जैसे रास पंचाध्यायी के प्रका में कह जाये हैं ।

प्रमरणीत:-

प्रमरणीत में उल्लेख के मुख से कृष्ण का नाम सुनते ही रस के द्वारा गोपियों में प्रेम भाव का खरार होता है और उनकी जड़ता की ही अवस्था हो जाती है, उनका गला हँस जाता है, बाणी गद्गद हो जाती है व चींटी भी नहीं पाती ।^७ वस्तुतः कवि यहाँ प्रेमभाव के उदय को रोमांच, अह, कंठावरोध आदि के द्वारा सूचित

- १- नन्ददास ग्रन्थावली सिद्धान्त पंचाध्यायी, अ. २२
 २- वही अ. ३६
 ३- वही अ. ३४
 ४- वही अ. ३२
 ५- वही अ. ५२-५३
 ६- वही अ. ६३
 ७- नन्ददास ग्रन्थावली प्रमरणीत अ. ३

T 1552

करता है। उल्लव द्वारा निर्गुण ब्रह्म का उपदेश आरम्भ करने पर उनमें चित्तर्क का आगमन होता है। इस ग्रन्थ में कवि ने तर्क और स्मृति के द्वारा गौपियों के प्रेम को प्रकट किया है। चित्तर्क का यह स्थिति यही समाप्त नहीं होती है। यह उल्लव के निर्गुण ब्रह्म के उपदेश के साथ साथ अग्रसर होती है और अन्त में गौपियों का उस मनोदशा को जन्म देकर लुप्त हो जाती है। गौपियों कृष्ण की निष्ठुरता और उससे उत्पन्न व्याधि का अनुभव करती है। कवि ने उसे गौपियों के ही मुख से ही प्रकट किया है :-

सुख जलनिधि हम बूढ़हिं,

कर अवलम्बनदेहु ।

निहुर है कछुां रहै ॥^१

विवशता और केवल मिथित उन्माद का चित्रण भी दृष्टव्य है गौपियों कहती है वे प्रियतम, दर्शन देकर पुनः अन्तर्धान हो जाने की छविवा लुप्त है किसे किताई ? हम तो तुम्हारे वश में हैं, इसी से तुम्हारे प्रति हर्ष कातर स्वर में अपनी वेदना व्यक्त कर रही हैं। तुम्हारे लिये सुख से अधिक होने पर हम वैसे ही तड़का तड़का कर प्राण दे देती जैसे जल से बला किये जाने पर मछलियाँ देती हैं।^२ फिर चिन्ता^३ और प्रलापों^४ के द्वारा कवि ने गौपियों के प्रेमभाव को व्यक्त किया है। गौपियों के मायावेश की स्थिति में कृष्ण के समा लप्ते और चरित्रों का दर्शन होने लगता है। उन्हें अपने रौम रौम में कृष्ण की उपस्थिति का मान होता है।^५

प्रमर के पति उपालम्प के प्रश्न में पुनः चित्तर्क का आविर्भाव होकर श्रीकृष्ण के गुण कथन करते करते गौपियों में उल्लव का आगमन होता है। यहाँ कवि ने विरह दशावली की परिणति के रूप में बड़ा मावपूर्ण व आकर्षक चित्र उपस्थित किया है। प्रमरगीत में गौपियों की स्थिति रति का जैसा अनुभव हुआ है, उसने विरह की दशा

-
- | | |
|--------------------------------|--------|
| १- नन्ददास ग्रन्थावली प्रमरगीत | अ-द ३० |
| २- वही | अ-द ३१ |
| ३- वही | अ-द ३४ |
| ४- वही | अ-द ३५ |
| ५- वही | अ-द ४२ |

व्यवस्थाओं द्वारा प्रकट किया है और तर्क, चित्तक, व्यंग तथा उपात्त्यों के द्वारा उत्तरांतर बल प्रदान किया है। गोपियों के अतिरिक्त उद्व के भी मनोगत भावों को कवि ने प्रकट किया है। उनके हृदय के प्रेमभाव को अमिताया, बावो, गुणवाचन आदि के द्वारा प्रकट किया गया है।^१ इस प्रकार प्रमरगीत में विरह की दशाओं के द्वारा गोपियों के प्रेम की व्यञ्जना की गई है।

प्रमरगीत में कवि छुम माव निम्पण की शक्ति को उभर प्रकार से प्रकट है की, उससे बुद्धि फल का भी सम्यक् परिचय मिलता है। गोपियों की माव प्रवणता को सर्वप्रथम है किन्तु उनके विचार तत्व को प्रकाश में लाने का श्रेय नन्ददास को ही है। प्रमरगीत में गोपियों के तर्क चित्तकों के रूप में बुद्धित्व कवि का मावद्वारा को निरन्तर गति प्रदान करता है और जब वह पारा परिवृद्ध होकर हृदय में प्रेम सागर के रूप में परिणत हो जाती है तो बुद्धित्व भी उसी में विलीन हो जाता है। गोपियों की मावदशा का जो परिचय प्रकाश के आरम्भ में मिलता है।^२ वह यद्यपि उद्व के साथ तर्क चित्तकों के जा जाने पर दायण होता हुआ प्रतीत होता है और जाता है कि कवि मावात्कर्ष की ओर जाने की अपेक्षा तर्क चित्तकों के ही जाओ में पड़ गया है तथापि किचित् गहनता से विचार करने पर ज्ञात होता है कि उसके अन्तरात् में माव लहरियाँ निरन्तर उद्वलित होती रहती हैं और जबसे पाते ही तीव्रवेग से प्रवहमान होकर तर्क चित्तकों के जाओ को निर्मूल करके बहा देती हैं। तब वहाँ गोपियों की ओर देखिये, वहाँ उद्व को और या श्रीकृष्ण की ओर, सर्वत्र भावों की सरस वारा हीदृष्टिगत होती है। तर्क के लिये किसी और भी स्थान नहीं रह जाता है। यही कवि का मावात्मक दृष्टिकोण की उपलब्धि है।

१- नन्ददास प्रथावली, प्रमरगीत, अंश ६६

२- ,, ,, ,, अंश २-६

पदावली:-

उपसृत कृत्तियों में व्यक्त कवि के भाव चित्रण से परिकल्प प्राप्त कर लें, वे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें रति या प्रेम भाव का ही प्रमुख रूप है चित्रण हुआ है। दैत्य, विरम्य आदि जो भाव उनमें आये हैं, वे अपने स्वतन्त्र रूप की अपेक्षा रतिभाव की ही पुष्टि करते हुए विहित होते हैं। कवि की पदावली के अवलोकन से भी यही बात ज्ञात होती है। उसमें भी प्रेमभाव का ही प्रमुख स्थान मिला है।

पदावली में राधा और गोपियों के प्रेम के रूप में कवि की भावानुभूति की सर्वाधिक छवना मिलती है। कवि ने राधा के हृदय में कृष्ण प्रेम वारम्भ पूर्वानुराग द्वारा दर्शाया है। राधा में यह पूर्वानुराग ओ स्वामी आदि सात्विक अनुभावों द्वारा प्रकट किया गया है। कवि ने राधा और कृष्ण की वरम परिणति सम्पत्ति रति में दिखाई है जिसका यथा तथ्य चित्रण करने में उसने स्वच्छन्द वृत्ति का परिकल्प दिया है।^१

गोपियों के रति भाव हास विहास और रूप दर्शन की अभिलाषा^२ द्वारा प्रकट होता है। वहाँ में बिहोला फूलों सम्य राधाकृष्ण के हृदय का प्रेम, परस्पर हास्य और विवशता के द्वारा प्रकट किया गया है।^३ पारगुन में पुनः विवशता का भाव अत्यन्त स्पष्ट रूप से चित्रित हुआ है। यही कवि विवशता को पृथक् रस के रूप में प्रेम विवश रस कहता है :-

औरहु प्रेम विवश रस को छु
कहत कल्याण नहिं जाई ।^४

वसन्त में गोपियों प्रेम भाव में आगमन होकर वृन्दावन की मरुता अनुभव करती है। उनका प्रेम भाव कोकिल, मोर, लीन, प्रमर आदि को देखकर उदीप्त होता है और सात्विक अनुभाव स्वैद द्वारा अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होता है।

१- नन्ददास ग्रन्थावली पदावली, पद ५४
२- वही पद ७६
३- वही पद ७८
४- वही पद १६४
५- वही पद १८३

यशोदा के प्रेमभाव का आगमन वात्सल्य के रूप में कृष्ण जन्म के साथ होता है। कवि ने इस प्रोक्षित रूप भाव को फूली है यशोदा माय, टोंटा मुख घुमि के,^१ कल्लर प्रकट किया है। बाज-झोड़ा के प्रक्षेप में वात्सल्य भाव की अनुसृति का कवि ने परित्यक्त किया है। कवि कहता है कि यशोदा अपने पुत्र को मयूर बचनो से जानती है, कलवा के लिये माखन, म्मि, मिठाई और मलाई लाती है। माता के वचन सुनकर कृष्ण तुलनाते हुए उठते हैं और यशोदा का हुक्य इस से पर जाता है।^२

सखाओं के प्रेमभाव का चित्रण गोविन्द लीला और पद्मलीला के प्रयोगों में मिलता है। यहाँ कवि ने गावत फागु बमार हरपि मरि^३ कल्लर ग्व लो के प्रेमभाव का चित्रण किया है। प्रेमभाव के अतिरिक्त नन्ददास के पदा में हास्य, अमर्ष, उत्साह, मय, विस्मय आदि के भावों का भी लिखित चित्रण मिलता है।^४ चोरीलीला के प्रक्षेप में हास्य और अमर्ष का मान होता है। गोपी यशोदा से कहती है, कि रानी तुम अपने पुत्र के कर्म को नहीं देखती ?

कवि के भाव पदा का इस प्रकार परित्यक्त करने के उपरान्त कहा जा सकता है कि उसकी कृतियों में रतिभाव को ही प्रधानता प्राप्त हुई है। उत्साह, लुप्ला, निवेद, हास, श्रौव, और विस्मय के भावों को भी कवि के काव्य में स्थान मिला है। किन्तु एक तो उन भावों का चित्रण ही अत्यन्त सीमित हुआ है और दूसरे जहाँ भी चित्रण हुआ है उससे मान, परिपूर्णता को प्राप्त नहीं हो सका है। इसी अतिरिक्त जहाँ एक और कवि ने प्रेमभाव के उद्दीपन के लिये उपदर्शन गुण वचन, स्वप्न दर्शन, मनोहर दर्शन, निर्जन एकान्तस्थान आदि की वर्णनां, उन्हें प्रकट करने के लिये क्लृ, स्वरणी, वैषण्य, वेपथु, रोमांच, प्रलय आदि अनुभावों का तथा परिपोषण के लिये अंतर्मुख, झोड़ा, सोप, हर्ष, गर्व, आकुलता, विवस्त्रता, आशंका, अवलित्य केन्य, मद, लज्जा, चपलता, चित्तक, अमर्ष आदि

१- नन्ददास ग्रन्थावली पदावली, पद २८

२- वही पद ३१

३- वही पद १६२

४- वही पद २४, १०७, ११६ आदि।

सुखारी माधुर्य का आश्रय लिया है, वही हृदय और विचार तत्व से सुखारे उसे सर्वोपरि करने का प्रयास किया है।

नन्ददास के काव्य में रस

अष्ट-शाय-काव्य में शृंगार के विविध रूपों का जितना व्यापक एवं सर्वांगीण विवेक हुआ है, उतना शृंगार वर्णित काव्य में कहीं नहीं हुआ। प्रेम की तीव्र अनुभूति एवं अमृतपूर्ण प्रेयणशक्ति ने इनसे शृंगार वर्णन की और भी अधिक जीवंत एवं हृदयाकर्षक बना दिया है। नन्ददास के काव्य में भी कृष्ण गोपिकाओं के स्मरण, मान, प्रवास जादि प्रयोगों की तुल्य जनतारणा हुई है। कवि की दृष्टि शृंगार के स्मरण और विप्रलम्ब दोनों पक्षों में समान रूप से रमी है। श्रीकृष्ण सिद्धान्त पंचाध्यायी, उपसंहारी, रासपंचाध्यायी, स्याम आहं एवं माया दशमस्कन्ध में तो ये पक्ष परस्पर इतने संयुक्त हैं कि एक के समान में दूसरा अर्थात् निष्प्राण प्रतीत होता है। यही नन्ददास के शृंगार वर्णन की मरजा है। स्मरण और विप्रलम्ब, इन्हीं दो रूपों के सामंजस्य से नन्ददास के काव्य के शृंगार पक्ष का निर्माण हुआ है।

स्मरण वर्णन :-

शृंगार के दो पैदा, स्मरण और विप्रलम्ब — ये ही स्मरण का महत्व विशेष है। विप्रलम्ब में भी स्मरण ही का कामना रहती है। यही कारण है कि बहुत कवियों ने राधा कृष्ण एवं कृष्ण गोपिकाओं के स्मरण का वर्णन अत्यधिक मनोयोग से किया है। स्मरण के इस वर्णन में उन्होंने प्रायः कामशास्त्रीय आधार को अपनाया है। कृष्ण तो गोपिकाओं से काम विषयक बचन भी कहते हैं — काम-विषय मैं बचन कहें सब रस के पान ।^१

१- श्रीकृष्ण सिद्धान्त पंचाध्यायी, ४८

नन्ददास ने राधाकृष्ण की अनुरागित एवं उनके पारस्परिक प्रणय का विकास वात्स्यायनस्था से ही दिखाया है। श्याम शगुन एवं मायावस्मत्कन्व के वर्णनो से रेशा ही ध्वनित होता है। यही कारण है कि नन्ददास के राधा और कृष्ण अपने वाकपिक बन पड़े हैं। श्याम शृंगार का सबसे सुन्दर वर्णन हमें रामपञ्चाध्यायी में मिलता है। कृष्ण के सुखी वादन करने पर गोपिकाएं प्रमावेश में उन्मत्त होकर विभिन्न विध्न बाधाएं पार करती हुई मनोहर श्याम के पास पहुँचती हैं। उनके तुराई की ध्वनि सुनकर प्रिय की सभी यन्त्रियों मानों संकुचित होकर अवर्णोद्भिय में समा जाती हैं।^१ उनके दर्शन पाकर वे वात्मविह्वल हो जाते हैं। उनके अपलक नयन उन वन्द्यह्वी गोपिकाओं को ऐसे निहारने लगते हैं जैसे दाँ चक्री घुमाकर ही और देख रहे हों।^२ श्यामवदन कृष्ण से जब गोपिकाएं मिलती हैं तो रेशा प्रतीत होता है कि नीलवन से विद्युत धटा बा मिली हो।^३ कृष्ण मन्द मन्द स्थिति से उनका स्वागत करते हैं।^४

श्याम शृंगार की दृष्टि से नन्ददास की द्वितीय महत्वपूर्ण कृति है + अपमञ्जरी। इसमें कृष्ण अपमञ्जरी का मिलन स्वप्नावस्था में दिखाया गया है। स्वप्न में स्वप्न रसमञ्जरी अपने वस्तुमय एक सुन्दर नायक का प्रतीक करती है। सौन्दर्य की अपूर्व छटा देखकर उसका प्रणय उद्दीप्त हो उठता है। तन मन से वह उसी पर अनुरक्त हो जाता है। प्रिय के द्वारा देत दात किये जाने पर उसकी निद्रा टूट जाती है और वह चीत्कार कर उठती है। उसकी यह दशा देखकर उसकी छत्री उन्मत्त हो उठती है।^५ नन्ददास ने इसके उपरान्त उन्मत्त की आशंका तथा अपमञ्जरी की प्रणय विभुव स्थिति का अत्यन्त मार्मिक अंकन दिया है। उसकी क्यनीय दशा पर अनुकम्पा कर प्रिय उसे पुनः दर्शन देते हैं। प्रिय को देख कर वह उज्जित हो जाता है।

-
- | | |
|--------------------|------|
| १- रामपञ्चाध्यायी, | १।६६ |
| २- वही | १।६६ |
| ३- वही | १।६६ |
| ४- वही | १।७३ |
| ५- अपमञ्जरी | १७६ |

पियरि निरति तिय उज्जित मई ।
 सति पावै बावै दुरि नहं ।^१
 किन्तु प्रिय उसे प्राप्त कर ही लेते हैं :-
 तामे सैज कुमैसता ऐसी
 बाल-बाल रति बेली जैसी
 कहु सटा कहु वल कहु मरुहारी,
 ले वैं तस नाता विहारी ।^२

इसके उपरान्त कवि ने कृष्ण रसमन्जरी का प्रथम समागम वर्णन किया है । प्रिय से
 रमण करने के उपरान्त उसका शरीर कलते हो जाता है । वे एक दूसरे के हृदय
 से लकर ली जाते हैं । नन्ददास ने उनकी सुरताते की दशा का अंजन अत्यन्त
 अङ्कुरक रूप से किया है ।^३ इस तरह स्पष्ट है कि नन्ददास के काव्य में समागम
 के तीनों अंगों समागमपूर्व, समागम, एवं सुरताते का विस्तृत वर्णन है । नन्ददास
 ने कृष्ण और गोपिकाओं में रति का क्रमिक विकास दिखाया है । समागम के
 आश्रयों का वर्णन भी नन्ददास के काव्य में वे अनेक स्थानों पर हुआ है । प्रायः
 ये निमंत्रण कृष्ण के द्वारा दिये गये हैं । इसी प्रकार सुरताते का वर्णन भी नन्ददास
 के काव्य में उपलब्ध है । यह वर्णन अविकारितः कृष्ण के स्पर्श में हुआ है । नन्ददास
 से समागमवर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने समागमवस्था में नायक
 नायिका की मानसिक स्थितियों का अत्यन्त हृदयानुरूपक वर्णन किया है ।
 समागम गन्ध स्यात्लेख, उत्साह, आत्मविस्तृति आदि का जितना सुन्दर वर्णन
 नन्ददास ने किया है, उतना शायद ही किसी ने किया है । रसमन्जरी में यह
 मादकता अपने सभी उत्कर्ष पर है ।

पुष्पिमार्ग के अनेक कवियों के समान नन्ददास ने भी समागम शृंगार का वर्णन
 करते हुए राक्षोहा, जलक्षोहा, रिहोलाक्षोहा, तथा लोली का विस्तार से उल्लेख

१- रसमन्जरी ४६६
 २- वही ५०४-५०५
 ३- वही ५१६-५२०

किया है। इनसे अर्थात् धृगार का समुचित परिचायक हुआ है। उस ग्रीष्म का वर्णन हमें रासपञ्चाध्यायी तथा श्रीकृष्ण सिद्धान्त पञ्चाध्यायी में मिलता है। रास के इस वर्णन में ऋक्षदास ने तीक्ष्णता का त्याग दिया है स्वतः स्वतः पर स्यादा का जति-क्रमण करते प्रतीत होते हैं, किन्तु फिर भी उनके वर्णन में अस्वामाकितता नहीं है। जलक्रीड़ा का वर्णन रासपञ्चाध्यायी एवं माषा दशमस्कन्ध में हुआ है। जल में जाकर निमज्जित गोपिकाओं के मुख उस जल की सतह के ऊपर अत्यधिक शोभायमान प्रतीत होते हैं। ऋक्षदास ने इस पर यह उत्प्रेक्षा की है कि मानों यमुना में स्वर्ण के कण दौपित होकर अपनी कीर्ति विकीर्ण कर रहे हों।^१ जल क्रीड़ा वर्णन पढ़ा सुनकर मन पड़ा है :-

मञ्जुल जमुलि परि प्रिय काँ लिय जल में छत
जनु बलि लीं बरविष कुन्द मकरदानि सेलत ।^२

माषा दशमस्कन्ध में वीरहरण लीला का प्रस्ताव जलक्रीड़ा से सम्बद्ध है। गोपिकाओं के जल स्नान करते हुए कृष्ण तट पर बड़े वस्त्रों का अपहरण कर लक्ष्मण के कुत्ता पर चढ़ जाते हैं।^३ वस्त्रों का ग्रहण करने के लिये जाती हुई ब्रज बालाओं का ऋक्षदास ने अत्यन्त मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है --

रूप उदयि परि परि रस जायें ।
मीन चलत जिमि मीन के पायें ॥
छोतछ बलिल कंठ परजते ।
तहैं ठाढ़ी पार थार बँपत ॥ ४

अर्थात् धृगार में मधुर गाय के उत्कर्ष का व्यञ्जना करने के लिए ऋक्षदास ने लिछौला ग्रीष्म आदि का भी विस्तार से वर्णन किया है। रासक्रीड़ा, जलक्रीड़ा, लिछौल-क्रीड़ा आदि सभी मनोरम हैं, किन्तु लीला में जो आकर्षण है, वह इनमें किसी में भी नहीं है। प्रिय के हाथ में पिचकारी लेकर गोपिकाओं

१- रासपञ्चाध्यायी, ५।१५
२- बली ५।२६
३- माषा दशमस्कन्ध, २२।२४
४- बली २२।२४-२५

के नेत्र ठो है रह जाते हैं । झोड़ा प्रारम्भ हो जाती है ।

पहिले कान्ह डुअर पिवका मरि झल तियन पे मे ला

मानो-सोम बुयाकर जीवित, झल प्रेम को बेजा ।^१

राधा और कृष्ण की छोटी झोड़ा अत्यन्त मनोर है । प्रायः ऐसी झोड़ाओं में राधा कुभा के रूप में वर्णित है । कहीं कहीं तो यह सर्वथा एक अवयव किशोरी के रूप में प्रस्तुत की गई है । स्नेह से व्याप्तचित्त झोड़ा झोड़ाओं से ही नन्ददास का समांग वर्णन उतना समीप व मार्मिक बन सका है वस्तुतः नन्ददास के शृंगार वर्णन में पर्याप्त गम्भीरता है । ऐसी प्रतीत होती है कि कृष्ण एवं गोपिकाओं में पारस्परिक स्नेह की विस्तृष्टता है, उनके स्नेह में प्रेम का उदात्त प्रवाह है ।

स्नेह वर्णन में रूप का वर्णन एक महत्वपूर्ण को होता है । नन्ददास ने भी स्नेह शृंगार के वाक्यांशों में नायक, नायिकाओं के रूप का अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है । वस्तुतः रूप वर्णन एक काव्य दृष्टि है । जिसका उद्देश्य वाक्यार्थ रूप में स्थापित में मिलता है । कवियों की आवश्यकता नहीं कि नन्ददास ने सभी कृतियों का वर्णन किया है । स्नेह वर्णन में भी नन्ददास ने यथासम्भव शोभिता व शोभिता का प्रयत्न किया है, ऐसे स्थल वस्तुतः कम हैं जिनमें हमें नन्ददास का अतिश्रम मिलता है । स्नेह के माधुर्य वर्णनों में नन्ददास ने व्यञ्जनाक्षरित का आश्रय लिया है । रूपशोभा के प्रथम स्नेह एवं सन्तानों की दशा का अनेक भी व्यञ्ज्य हो है, वाच्य नहीं । स्नेह वर्णन की इस शोभिता में भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रतिबिम्ब है ।

स्नेह वर्णन की मोति विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन भी नन्ददास ने अत्यधिक मनोरोग से किया है । शृंगार के एक ही पक्ष का विस्तार से वर्णन करना कवि का अभिप्रेत नहीं था । नन्ददास का मतानुसार स्नेह की विप्रलम्भ के अभाव में शोभित नहीं हो सकता । यही कारण है कि कवि ने किसी भी कृति में मात्र स्नेह का वर्णन किया है, विप्रलम्भ को उसमें यथावित स्थान दिया है । कई कृतियों में तो केवल विप्रलम्भ शृंगार का ही वर्णन है ।

सुगतर के दो पैदों समाने और विप्रलम्ब के अतिरिक्त नन्ददास ने एक अन्य प्रकार के विप्रलम्ब का भी वर्णन किया है, जिसे लाल वियोग कहा जा सकता है। इसकी सृष्टि तब समाने की है किन्तु साधारण दृष्टि से देखने पर यह विप्रलम्ब प्रतीत होता है। रास के समय गोपिकाओं के गर्व के कारण कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने से इस विप्रलम्ब की स्थिति सम्भव हुई है। नन्ददास ने इस लाल वियोग की अप्रिव्यक्त रामपदाध्यायी एवं श्रीकृष्ण शिवान्तपदाध्यायी में की है। विरह की गम्भीरता की दृष्टि से इस वियोग का स्थान भी महत्वपूर्ण है। लाल वियोग का वर्णन करते हुए नन्ददास ने गोपिकाओं की विरहोन्मत्त दशा को अत्यन्त सजीव जीवित रूप में अंकित किया है। मालती, कैतकी, सुमताफर, बेट, कंदन आदि से गोपिकाओं के द्वारा प्रिय का पता पूछना, प्रिय के अभाव में प्रेम में आवेश के कारण लोलाह करना, रोना, प्रणाम करना, उपास देना, वैय्य व्यवहार करना आदि उनके प्रतीक रहे हैं जिन्हें माध्यम से कवि ने उनकी व्यथा को अप्रिव्यक्त किया है। रास पदाध्यायी में गोपिकाओं का एक उपास दृष्टव्य है :-

वहाँ भीत । वहाँ प्रान्नाथ । यहाँ अचरन परी ।

अपननि जाँ बरिहाँ काकी रत्नवारी ।^१

गोपिकाओं के प्रिय उनके राग को उदीप्त करके सहसा अन्तर्धान हो गये हैं। उनकी सभी उच्चारें अर्तप्त रह गई हैं। लाल वियोग का वर्णन करते हुए नन्ददास प्रकृति को विशेष रूप से ग्रहण किया है। वस्तु स्थिति तब यह है कि गोपिकाओं ने अपनी व्यथा विशेष रूप से यमुना के तटवर्ती कुंजों, उतावों व फूलाँ को चुनाई है। उन्होंने से विरहोन्मत्त ब्रजवालाओं ने प्रियगमन का मार्ग पूछा है। इस प्रकार मानवीकरण सा हो गया है। प्रकृति को संश्लिष्ट चित्रों की अवतारणा लाल वियोग में नहीं हुई है। नाम परिणयात्मक शैली का ही अपनाया है :-

हूँत लुगि ब्रजवाला मोहन प्रिय को तहँ ।

तूत, प्रयात, कंदन, निधि, जल अंध, पनवणहँ ।^२

नन्ददास के काव्य में कतिपय ऐसी शृंगारात्मक उचित्यो उपलब्ध हैं जिनमें स्थायिभाव रति या तो रसावस्था तक पहुँचा ही नहीं और यदि पहुँचा भी है तो उसमें किसी न किसी प्रकार का अनौचित्य आ गया है। उनके हृन्द ऐसे हैं जिनमें भाव विशेष का उदय, उसकी शान्ति अथवा दो विरोधी भावों की परस्पर सन्धि और या फिर विभिन्न भावों की सामानान्तर अभिप्रेक्ष्यता पाई जाती है। साहित्य शास्त्रीय शब्दावली में इसे क्रमशः भावोदय, भाव शान्ति, भाव सन्धि एवं भाव शकलता कहा गया है। अनौचित्य को ये सभी स्थितियों रसामास के अन्तर्गत आती हैं।

नन्ददास के साहित्य की सम्यक्प्रवेण बहुशीलता करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका अविकल काव्य विरह काव्य है। रासवभाष्यायी, श्रीकृष्ण पंथाध्यायी अभिप्रेक्ष्यता, स्थायि भाव आदि कृतियों में अनेक शृंगार की भी व्यञ्जना हुई हैं। साहित्यिक दृष्टि से नन्ददास के काव्य में शृंगार रस की निष्पत्ति ली है। रस रूप परमेश्वर श्री कृष्ण इसके आलोकन हैं।^१ गोपिकाओं के रति स्थायिभाव की व्यञ्जना वाचिक, वाकिक, लक्षित्व आदि विभिन्न अनुभावों के माध्यम से हुई है। कवि ने अपनी कल्पना शान्ति और प्रतिभा के द्वारा प्रतिभास को आत्मसात करके उसका वास्तविक रूप सजीव चित्रण किया है। यही कारण है कि उनके काव्य में व्यञ्जित, शृंगार भावों को रसान्वित कर सका है। डॉ० स्नेहलता श्रीवास्तव के शब्दों में नन्ददास प्रतिभा सम्पन्न और स्वभाव से रसिक कवि थे। उनके जीवन में सौन्दर्य और विरह की व्यक्तित्व अनुभूति हुई थी। अतः वे रसपूर्ण चित्रण में पूर्ण सफल हुए हैं।^२

नन्ददास के काव्य में प्रयुक्त शब्दों

कवि नन्ददास ने अपने काव्य में शब्दों में अनेक प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। शब्दांशों में वे अनुभाव के स्वाभाविक प्रयोग ने उनकी भाषा

१- नन्ददास की मंगलिका, विवेचन और विश्लेषण, डॉ० स्नेहलता श्रीवास्तव, पृ० ६८
२- वही पृ० ६८

को वस्तु श्रुति मधुर बनाया है। अकारों के प्रयोग में कवि को अनोखी छूक और काव्य में अर्थ गम्भीरता लाने की कुशलता का परित्यक्त मिलता है। नन्ददास का उद्देश्य अपने काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने का नहीं था, उनके काव्य अङ्कारों का प्रयोग भाव और भाषा को सजीव व चित्राकर्षक बनाने के लिये ही हुआ है। उनके प्रसृत अर्थाङ्कारों में है उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उपदेश, स्मरण, प्रतीप, उदाहरण, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति, विभावना, और अस्मिता विशेष उल्लेखनीय हैं। रूप वर्णन में स्वल्प वर्णन करना तथा भाव चित्रण में भावात्कर्ष लाने के लिये कवि ने उत्प्रेक्षा ही विशेष काम लिया है। नन्ददास की उत्प्रेक्षाओं की कल्पना बहुत मार्मिक और प्रभावशालिनी होती है। उनमें मौलिकता रहती है, बेतरापी की उड़ान और स्वार्थ की कलाबाजी नहीं है। रूप मञ्जरी में अनेक छवित्वों सुन्दरारिणी बन पड़ी हैं। विरहमञ्जरी में विरह भाव की गहन वेदना के परित्यक्त के निवृत्तित का अविकल सहारा लिया गया है। सुदामा चरित, प्रियामङ्गल और गणेशदेव लाला ग्रन्थों में उचित की विविधता बहुत अल्प है। कवि के सम्पूर्ण काव्य के अध्ययन से शक्त होता है कि काव्य कला का सर्वोच्च उत्कर्ष तो उनकी रास-पञ्चाव्यायी में ही है। मानसमञ्जरी यद्यपि कोष-ग्रन्थ है परन्तु रास के मानस मनोबोध के वर्णन में अङ्कार सांख्यिक ने वर्णन की रसिकता को आकर्षक बना दिया है।

कवि द्वारा प्रसृत कुछ अङ्कारों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं :-

उपमा: सज्जन प्रकट मयें हुस देना

लोभोगिनि तिय के से नैना ।^१

उत्प्रेक्षा: मोठी सुनि सुनि यह मन आवी, मैं मनो चटकाट पडावे ।^२

नवला निकलति तोर जब तोर चुबत घर नीर ।^३

बाहु व्ये को रूप जनु दीय जग्या जा ऐन,

उहि उहि परत मंसा जिमि नानारिन के नैन ।^४

हूमन सो उपटित प्रफुल्लित बली, जनु मोहि हठाति है, दंसि अकली ।^५

१- विरह मञ्जरी, ६३

२- रूप मञ्जरी, ४५

३- बली १०३

४- बली ८०

५- विरह मञ्जरी, पंच मञ्जरी बलदेवदास कवचनदास, पृष्ठ ३० ६०

प्रतीप पुनः लज्जित लज्जित लज्जित, कल लज्जित लज्जित,
 दुग्ध दक्षिण दुग्ध लज्जित है मीन मय जलजल ।^१
 दमस्त उस्त दस्त की जाती, को है दासिनी को है माती ।^२
 गम्योत्प्रेक्षाः वाचने पग बंवालाई - अब बलि लज्जित नैनन जाहुं ।
 इत उत वस्त वस्त अमुरांग । जात करन कानन को लगे ।^३ ४
 अपक ज्यो ज्यो सैलम बल उधुराई । ज्यो-त्यो नैन मीन हतराई ।^४ ५
 इति विधि बलि वैशाख यह कीर्त्या सुख दुख लज्जित ।
 लक्ष्मी मई लुहार की लिन पानि दिन जानि ।^५ ६
 वृष्टान्तः प्रेम एक इध विन को एकहि ली लाय
 गांधी ली लीयो नही जन जन हाथ विनाय ।^७
 उदाहरणः फलन के मार नमित हुम रीते ।
 ल्यति पाह बडे जन वैरी ।^८
 अत्युचितः उपजि विरह दुख दवा अना लन लाय तमे हैं ।
 कीउ कीउ हरि के मुल्या लवि लवि लल मय है ।^९
 कलियो उदुप उदार सुन्दर नन्दसुमार ली ।
 बलि कृष्ण कीनी जवार लार मार लै लार दिय ।^{१०}
 अतिशयोक्तिः लोचो अटा बटा बतराहि । लिन पर केनी केनी कराही ।^{११}
 बौरहि मोंति प्रमर लव जाये । लोर लोर कहु यत्र से गाये ।^{१२}
 दीपक भावो अति दुख रैन, कलियो बंद गांधिदे ली ।
 वन अल लिय के नैन लोहनि वरस्त रैन दिन ।^{१३}
 सुन्दरः जनुवन ते विजुरी विजुरी मानिनि लल कलि ।
 किवाँ बंद ली लुचि बडिका रल गरी पलि ।^{१४}

-
- १- अपमजरी, ११६
 २- ' ' १२०
 ३ ४ ' ' १२३, १२४
 ५- ' ' १२५
 ६- विरहमजरी १७
 ७- अपमजरी १२५
 ८- ' ' १२६
 ९- लक्ष्मीमाला १७
 १०- विरहमजरी १२
 ११- अपमजरी १६
 १२- ' ' १२५

विभावना: ता मूपन के भवन काँज, दीप न वारत साँफ ।

विनाही दीपहि दीप जिति विषय कुँधरि पट माँफ ।^१

कवन सम्य जायो यह सजनी,

हुन्दु जनल बरवै सब रजनी ।^२

दिन जः रजनी परै तुषारा ।

सीतल महा अगिनि की मरारा ।^३

प्रजरि परत अब जौ सब बाँधा बदन लागि ।

विधि गति छँ विपरीत तब पानी ही में जागि ।^४

अजीति: गति दिरोत रही तब मैं ।

गरजै बन बरवै तिय मैं ।^५

अनुपास ६० महाकाति मालती बाल यमक पित्तु चोरित ।

६० बनसार तुषार मलय मंदार काँकारित ।

मल्ल अंजुलि मरि मरि पिय को तिय जल मँजत ।

ज्यौँ जति सी अरिहिंदे धुँध मरुदेनि लैलत ।^६

पुच्छकित्प्रकाश बमकि बमकि दलनावलि दूति फिरि कहरन माँफ दुराई ।

दमिक दमकि दामिनी एवि पावत, बाधन में दुरि बाई ।^७

यमक आसन गसन समान, गलियत मारै शरीर ससि ।

दोने दरसन दान, आसन लोये तु पुन्य बल ।^८

मास मास के दिवस करि मास रख्याँ नहिं वेद ।^९

नन्ददास का अप्रसूत योजनावली में हमे सर्वत्र कवि की सौन्दर्य भावता के दर्शन होते हैं । उपमानों के चयन में भी कवि की सौन्दर्य चेतना सतत जागृत रही है । प्रकृति चित्रण में नन्ददास ने जहाँ उसके आलंबन रूप में चित्र लीचे हैं, वहाँ उन्होंने

१- रूपमंजरी, ६६

२- वही ३५२

३- वही ८६

४- विरहमंजरी ७४

५- वही ५६

६- रासकाव्यायी, १।६२

७- वही २।२६

८- पदावली ४३ नन्ददास छन्द के अनुसार

९- विरहमंजरी ७२

१०- वही ६२

प्रकृति एवं मानवीय चेतना में साम्य स्थापना कर दी है । प्रायः साम्य की उन्नत स्थापना सौन्दर्य तत्त्वों से श्रेष्ठ है । रासपवा-व्यायी के शब्दों में वे चित्रों में यह प्रकृति विशेष रूप से उद्दिष्ट होती है उदाहरणार्थ --

रजनी छुल छुल देत ललित प्रकृति नू पावती ।

ज्यों नव जीवन पाइ लसति गुनमती बाली ।^१

अपनी प्रति के द्वारा नन्ददास ने प्रकृति की माँ रसस्निग्ध बना दिया है ।

रासपवा-व्यायी के एक उदाहरण ऐसे :-

ताही दिन उदुराज उदित रस रास सहायक,

कुम कुम मँछित त्रिया वदन जन नागर नायक ।^२

नन्ददास की उपमान योजना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे उदाहरण से किसी अन्य अर्थ को और इंगित करते हैं । लक्षणात्मक अर्थ से प्रकृति की गहनता तो उद्दिष्ट होती ही है, साथ ही उससे सौन्दर्य का द्विगुणित हो जाता है ।

नन्ददास ने अपनी शृंगारात्मक कृतियों में सादृश्यपूर्ण अप्रस्तुत योजना तीन आधारों पर की है --

१- वर्णों साम्य के आधार पर

२- रूप साम्य के आधार पर

३- गुण, वर्ग अथवा प्रभाव साम्य के आधार पर ।

इन तीनों आधारों पर निर्योजित उपमान अपनी प्रभावविष्णुता में अर्थ बन रहे हैं । प्रभाव साम्य पर आधारित अप्रस्तुत योजना का एक उदाहरण दृष्ट्य है --

जाकीं कुंदर स्याम कथा छि छिन नई लगे ।

ज्यों लपट पर लुबति वात हुनि जति अनुरागे ।^३

१- रासपवा-व्यायी १।४०

२- रासपवा-व्यायी १।४२

३- रासपवा-व्यायी १।४३

किन्तु नन्ददास के अप्रस्तुत विधानों में वे अधिकारों रूप एवं धर्म अथवा रूप एवं वर्ण साम्य पर जाग्रत हैं। कवि ने रूप एवं गुण दोनों की क्षमता की ओर विशेष ध्यान दिया है। यही रूप धर्म के साम्य से सम्बन्ध रखने वाली कतिपय पंक्तियाँ अन्तर्हित की जाती हैं।

(ज) समग यदन सब चितवन पिय के नैन बने यो ।

बहुत सरद शशि मादे अतरे उं बकोरे ज्यो ।^६

(जा) कहु रघ राते नैन अनु जावक मीजे मीन ।^७

रूप एवं वर्ण साम्य के आधार पर नियोजित अप्रस्तुत विधान भी अपने आप में वाक्यार्थक बन पड़ा है। 'दलिये' :-

जति आदर करि लई मरु पिय पै ठाठी अनु ,

हविलि छटनि मिठि हेक्यो मंजुल बन मुरति अनु ।^८

तथा

कुल के वाँक हवि शीव ग्रीव नें चली नाठ सी ।

अलक जतिन के मार नमित्र मनु कमलयाँ सी ।^९

नन्ददास की इन साम्य गणिनाओं में सबसे अधिक वाक्यार्थक तत्त्व है कल्पना। कल्पना का वैभव उत्प्रेक्षाओं विशेष रूप से देता जा सकता है। हा० दीनदयाल गुप्त के शब्दों में नन्ददास की उत्प्रेक्षाओं की कल्पना बड़ी मार्मिक और प्रभावशाली होती है। उनमें मौलिकता रहती है, बोंसर-पैर की उड़ान और शब्दों की कलाबाजी नहीं है।^५

नन्ददास ने काव्य सौन्दर्य की विधि के लिये जिन अप्रस्तुतों का उपयोग किया है उनमें वे अधिकार प्रकृति के चित्र से लिये गये हैं। नेत्रों और मुख के लिये कमल^६

१- रासपंचाध्यायी १।६८

२- नाममात्र, ५५

३- रासपंचाध्यायी १।६६

४- ११ १।७६

५- अष्टाध्याय और अल्मसम्प्रदाय, पृ० ८८०

६- रूपमञ्जरी ५१, ६६६

बल्लभों के लिये बलि^१ जानु के लिये गंगा^२ व्रमण के लिये कमला लिला^३ दशना के लिये विद्युत^४ आदि उपमान ऐसे हैं। तत्कालीन वातावरण एवं जीवन से भी उपमानों का व्यन हुआ है। नायिका को राजा से छ^५ यौवन को सावज से^६ दिन को पहाड़ से^७ दुपहर को छाछन से^८ शरीर को देश^९ से उपमित करना उसी प्रवृत्ति का परिचायक है। कुछ अप्रस्तुतों का प्रयोग पद्य कवि ज्ञात से भी हुआ है। नेत्रों का मीन से^{१०} तथा माँहों का गव्वर से^{११} उपमेयापेमान सम्बन्ध स्थापित किया है। नन्ददास ने कुछ उपमान घरेलू जीवन से भी लिये हैं। शरत् रत्नी का मनु के^{१२} सुख का दर्पण के^{१३} हृदय को स्मृतीत से^{१४} उष्ट नायिका को हल्दी मिले घूने के^{१५} सदृश्य कहना उसी प्रवृत्ति का प्रतीक करता है।

नन्ददास के काव्य में अलंकारों का विधान प्रायः तीन प्रकार से हुआ है —

- १- अमूर्त प्रस्तुत के लिये मूर्त अप्रस्तुत का विधान
- २- अमूर्त प्रस्तुत के लिये अमूर्त अप्रस्तुत का विधान
- ३- मूर्त प्रस्तुत के लिये मूर्त अप्रस्तुत का विधान।

इन तीनों में ही कवि ने अपनी विवायक शक्ति का कुदर परिचय दिया है। इससे अतिरिक्त नन्ददास ने प्रतीकात्मक उपमानों का भी आवेदन किया है, किन्तु उनका विशेष महत्त्व न होने के कारण उनका पृथक् विवेचन नहीं किया गया

१- रासुपमा-यादो	१।७६
२- बली	१।१२
३- नामाला,	५२
४- बली	५७
५- पदावली	१७६
६- उपमेयरी	६२
७- बली	४६७
८- उपमेयरी	४६८
९- बली	६३
१०- नामाला	५५
११- बली	७६
१२- उपमेयरी	१६६
१३- बली	२७, २८, २९
१४- बली	३५

है । इस विषय में नन्ददास की एक विशेषता और भी है उन्होंने प्रकृति के उपमानों का खोजने करते हुए कहीं कहीं प्रकृति की धृगारात्मक रूप में ग्रहण किया है यथा --

ताही इन उड़हराज उवित रस रास सहायक
जात हरे छुट्यो ब्रज जान्हे मिल्यो जग ।^१

कहीं कहीं प्रकृतीकृत को भी वे लिये गये उपमान भी धृगारात्मक हैं --

नाहिने उधरै गुड न रंसे । परसठ देस बहु कुव जैवे^२
हरिज जस रस बिधि कवित नाहि, हुन कवन फल ताहि,
सठ कठपुतरी की बुरि, बाँवे को छु वाहि ।^३

इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्ददास की कृतियों में अलंकारों का विधान अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है । अनेकी उपमा तथा उत्प्रेक्षा के लिये प्रमाणों का व्यवहार भी, अन्य कवि कम स्थान पर करे हैं ।^४

नन्ददास काव्य शास्त्र के ज्ञाता, संस्कृत भाषा के पंडित तथा साम्प्रदायिक सिद्धान्त के आचार्य थे । उनकी रचनाएं इसका प्रमाण हैं ।

हृद याचना :

कविता तथा हृदों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । हृद कविता को गेय बनाते हैं, उसकी शीलात्मकता प्रदान कर उसे गद्य से भिन्नत्व प्रदान करते हैं । हृदों के द्वारा कविता प्रभावोत्पादक तथा सरस बन जाती है । हृदों की सख्या अनन्त है । प्रत्येक कवि भावों तथा विषयानुसार उनका चुनाव कर लेता है ।

१- रासमंथ्याजी, १।४२

२- रासमंथ्याजी, २५

३- रासमंथ्याजी, ३५

४- भारतीय प्रमास्थान काव्य, पृष्ठ ४३२

नन्ददा । ने अपने ग्रन्थों में रीति, शैली तथा शीघ्रता के अति अधिक अपनाया है । उनसे पूर्व के कवियों जैसे जायसी, तुलसी आदि ने आख्यान काव्यों के लिये शीघ्र शीघ्रता पद्धति का ही अनुसरण किया था यही एक ही प्रचलित शैली में ही यही पद्धति दृष्टिगोचर होती है । नन्ददास ने माया दशमस्कन्ध रूपमंजरी, विरहमंजरी तथा रसमंजरी ग्रन्थों में इसी शैली शीघ्र शीघ्रता पद्धति का प्रयोग किया है । शीघ्रता के स्थान पर कहीं कहीं उन्होंने शीघ्रता के अर्थ का प्रयोग किया है । डा० दीनदयालु गुप्त के अनुसार शीघ्रता तथा शीघ्रता के अर्थ में नन्ददास ने कोई पैदा नहीं माना ।^१

नन्ददास गानविद्या में निपुण है । उस निपुणता का प्रकाशन उनके पदों में तो हुआ ही है किन्तु केवल रचना में ही सीमित का अपूर्व मायु है जिसका सबसे अधिक उत्कर्ष शीघ्रता के अर्थ में है, विशेष रूप से रासपवाध्यायी में, ज्ञात होता है कि कवि की उक्ति में अपूर्व कविता है, वाणी में प्रौढ़ता है और भाषा में लौघ और लय है । यह बात उनके शीघ्रता शैली से मिलित केवल में ही यही भाषा में है, परन्तु अन्य केवल में यह गुण अस्तित्व नहीं होता । कहीं कहीं शीघ्रता तथा शीघ्रता दोनों का समुचित प्रयोग हुआ है । शीघ्रता तथा शीघ्रता किसी नियत क्रमानुसार नहीं रहे गये ।

नन्ददास जी के द्वारा प्रयुक्त केवल के कुछ उदाहरण उपस्थित है :-

अनेकान्वयी भाषा :-

इस ग्रन्थ की रचना शीघ्रता के अर्थ में की गई है । उदाहरण स्वरूप दिये गये इसके निम्नलिखित शीघ्रता के द्वितीय और तृतीय कारणों के उपरान्त अन्त्याजी में मात्राओं की कक्षा दी गई है :

वाम

वाम तेज और वाम तनु वायु जिन, गुरु वाम । १३ - १६ -- २४

वाम जात जो हूँ - वनी कृत हरि व्याम । २३ - १६ -- २४

१- अष्टाध्यायी और नल्लम सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ८८५
२- नन्ददास ग्रन्थावली अनेकान्वयी भाषा, शाला १४

इयाम लार्ह :

इस ग्रन्थ की रचना रौला, दोहा और दस मात्रा की टैंक वाले एक मिश्रित छन्द में की गई है :

नीकी राखे कुँवरि, त्याम एत मेरां नीकी । ११ - १३ -- २४

कुह किरपा करी, लाल मेरे को टीकी ११-१३ -- २४

सब मोतिन धी लोहेगी - हम तुम बाढे प्रीति, १३ - १६ -- २४

और कहु मन में वही, यही जात की रोति १३ - १६ -- २४

परस्पर कीजिए १ -- १०

नन्ददास जी की इस छन्द के प्रयोग की प्रेरणा शूरदास जी से प्राप्त हुई है । शूरदास जी ने इस रौला, दोहा और दस मात्रा की टैंक वाले छन्द का प्रयोग शूरसागर के दशमस्कन्ध में दानलोला के वर्णन में किया है ।^१

नामाला-: कसे

अनेकार्थ भाषा की प्रीति ही नाममाला की रचना में दोहा छन्द में की गई है :

सदन सुम, आराम, गृह बाल्य (य) निल्य स्थान १३-१६-- २४

मदन सुम कृप-यातु के, गहँ सेवारी त्यानै १३-१६- -- २४

स्मरणाय है कि अनेकार्थ भाषा और नाममाला दो सूक्तों के अर्थ और अर्थों देने तथा साथ ही अपने मतों को प्रकट करने के लिये दोहाछन्द का प्रयोग करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है ।

१- नन्ददास ग्रन्थावली अनेकार्थ भाषा , इयाम लार्ह, छन्द ४

२- दो०शूरसागर (ना०प्र०सभा) पद २२६६

३- नन्ददास ग्रन्थावली नाममाला दोहा १०

रत्नमञ्जरी, रूपमञ्जरी और विरह मञ्जरी:

इन ग्रन्थों में दाँहा, बाँपाई और बाँपई शब्दों का प्रयोग किया गया है:

लज्जा मदन समान सुहाई दिन दिन प्रेम बाँप अधिकार है । १६-१६-३२

पिय ली सोवत लोये न जाई । मन मन इमि सोवे सुदाई ।^१ १६-१६-३२

तू अनु जागे तै कछु मई । हूँ बाकेली ठाड़ी रहि गई ।^२ १६-१६-३०

सखारि मूली सी रही कूली जगन बाय । १३-११-२४

जय रहे वक बाँपि जिमि, सुन्दर नैना पाय ।^३ १३-११-२४

जाग्रहु बलि बेसात कुत निदरन कुत करन पिय । ११-१३-२४

उपज्याँ मन अमिलाप , बन बिहरन गिरिवरन ली ।^४ ११-१३-२४

स्मरणयोग्य है कि इन ग्रन्थों में कवि ने बाँपाइयों की किसी नियत सूच्या के बाद दाँहों के प्रयोग का कोई क्रम नहीं रखा है । वर्णान्क्रम के विचार से रूपमञ्जरी और विरह मञ्जरी में दाँहों के प्रयोग का प्रायः निश्चित क्रम दृष्टिगत होता है । कवि ने एक प्रकार का वर्णन यह एक बात बाँपाई में कहने के उपरान्त उसका अन्त दाँहों में किया है । विरहमञ्जरी में यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है वही कवि प्रत्येक मास का बाँपाई में वर्णन करके उसका अन्त दाँहों में करता है । इसी दृष्टि से विरहमञ्जरी में शरीठा हृद का प्रयोग भी निश्चित क्रम में हुआ है, जबकि कवि प्रत्येक मास के आगमन को सुवना शरीठे में देने के उपरान्त ही बाँपाई में उस मास का वर्णन करता है, किन्तु रत्नमञ्जरी में इस क्रम का पूर्ण निर्वाह दृष्टिगत नहीं होता है ।

१- रत्नमञ्जरी पृ० ५४-५५

२- वही रूपमञ्जरी पृ० २०४

३- वही दाँहा २५५

४- वही विरहमञ्जरी दाँहा १३

नन्ददास संस्कृत के विज्ञान से और काव्य उत्थापन ग्रन्थों के ज्ञाता थे वेदा की रसमञ्जरी आदि ग्रन्थों से विदित होता है । ऐसी वशा से कुछ स्थानों पर काव्य उत्थापन सम्बन्धी वृत्तियों का पाया जाना कुछ आवश्यकतक वा लगता है । कहीं कहीं छन्द की दोषों के विषय में छा० दीनदयालु गुप्त का मत है कि कुछ तो प्रतिलिपिकारों का मूल है और कुछ समय है, कवि से ही छन्द हो ।^१ प्रतीत तो यही होता है कि प्रतिलिपिकारों की असामयानी से ही दोषों से दोष उनका कृतियों में बाधे होंगे । गुप्त जी ने ही अपने अष्टाध्याय में उपमञ्जरी ग्रन्थ का निम्नलिखित पदित्यों में जो छन्द की दोष होने की बात लिखी है वह वा० ब्रजराज दास की द्वारा नन्ददास ग्रन्थावली में नहीं मिलता है ।

सुन्दर सुमन सुखेय विद्याय (५१) अरगण मरगण वल्लु ह्या (५१)
चंदन पर चंदन परवाय (५१) मंद ह्रांय अमीर हुराय (५१)
पिक गवाय कैकी कुल्काय (५१) पयैया पै पिउ पिउ ह्युयाय । (५१)
मधुर मधुर लु दीन वजाय (५१) मोहन नन्द सुमन गुन गाय (५१)

अष्टाध्याय और बल्लभ सम्प्रदाय पृ० ६८६ नन्ददास ग्रन्थावली से उक्त पदित्यों का अन्तिम बदल (५) गुरु है :

सुन्दर सुमन सुखेय विद्याय (५) अरगण मरगण वल्लु ह्याय (५)
चंदन चरनि चंद उगवाय (५) मंद ह्रांय अमीर वहाय (५)
पिक गवाय कैकी कुल्काय (५) पयैया पै पिउ पिउ ह्युयाय (५)
मधुर मधुर लु दीन वजाय (५) मोहन नन्द सुमन गुन गाय (५)

नन्ददास ग्रन्थावली, उपमञ्जरी, पृ० ४८०-४८३ पं० उमाशंकर सुमल से नन्ददास से उपरिलिखित प्रथम तीन पदित्यों के अन्त में (५) गुरु दिया गया है । अन्तिम पदित के अन्त में (५१) गुरु लु ही मिलता है ।^१

उक्तमणि कोल :-

राक्षसाध्यायी और सिद्धान्त प्रभाष्यादीः

एन ग्रन्थों में राँडा क्षन्ध का प्रयोग हुआ है ।

मधुर यस्तु ज्याँ वात निरन्तर हुत तौ मारी । २४ मात्राएं
 किन्न बोवि वोवि कटु बन्धु तिकु जलिस्य हविहारी ।^१ २४ मात्राएं

राँडा क्षन्ध में ११ और १३ मात्रा की परिकल्पित से २४ मात्राएं होने चाहिए ।
 किन्तु नन्ददास का उक्त कृतियों में यत्किमो दोष दिताई देता है जिसके लिये भी
 प्रतिलिपिकार ही उदाहरणी प्रतीत होते हैं । डा० जगन्नाथदास रत्नाकर ने राँडा
 के लक्षण शीर्षक लेख में लिखा है कि राँडा क्षन्ध में ११ मात्राओं पर विरति
 होना आवश्यक नहीं है, पर जो तौ अच्छी बात है ।^२ उस दृष्टि से पर्येक देखा
 जाय तो उनके स्थलों पर दोष का स्वतः परिहार हो जाता है :

जहाँ काँ उपदेश हुनाँ व्रजनागरी ।

रूप क्षोड जगप्य जगुन बागरी ।

प्रेम हुआ रस हसिनी उपजायनि हुत पुन ।

सुन्दर स्याम बिला सिनी नम कृन्दावन पुन ।

हुनाँ वृज नागरी ॥^३

प्रकट है कि उसमें काँ चरण किलौकी कै हैं और चार चरण दाँसे के तथा
 अंत में दस मात्रा की एक टेक है । शेष क्षन्धों का झठन श्याम जहाँ में प्रयुक्त
 मिश्रित क्षन्ध की माँति राँडा, दोहा और अन्त में दस मात्रा की एक टेक से
 हुआ है :

१= नैग्र०, पृ० १४ क्षन्ध १

२= नन्ददास रामरत्न मटनागर, पृ० २०६

३= नैग्र०, मधुरगीत, क्षन्ध १

कौल कहै सखि कहा दाँव सिधुपाल नरै ।
 व्याह करन कौ गया नृपति पीप म के देखे ।
 बल बल जोरि वरात कौ ठाठों कौ बनि बाढि ।
 इन झलकिर दुलही हरी हुविन ग्रामस सुत काटि ।
 जाकुने स्वारथी ॥^१

उल्लेखनीय है कि कवि ने उन्नत अन्तिम पद मात्रा की पंक्ति का गठन उस प्रकार किया है, मानो उसमें पहली चार पंक्तियों का चार दो दिया हो । उक्त गौपी खंड से अन्वित मंरगीत के पहले, दूसरे चौर्य से अट्ठारवे तक के छंद हमें अफवादस्वरूप है, जिनके अन्त की पद मात्रा की पंक्तियों या तो कुर्ना ब्रजगरी या वृत्ता मुनि स्याम के रूप में ही दृष्टिगत होती है ।

पदावली:

नन्ददास के अविकसित पद कौल के रूप में है । इसीलिये उनका छंद विधान का निर्वाह प्रायः नहीं मिलता है । फिरोज शास्त्रीय छन्दों की अपेक्षा शास्त्रीय रागरागनियों ही उनके पदों में पाई जाती हैं । नन्ददास ने कविय, खंथा, जगजगरी, आदि छन्दों के प्रयोग का ही प्रयत्न किया है । किन्तु उनके काव्य में उन छन्दों का अपरिमाणित और अविकसित रूप ही मिलता है । और इनमें कला की वर पवित्रता नहीं दिखाई देती जो राँगा दाँहा वाले छन्दों में है ।

वस्तुतः नन्ददास के व्यक्तित्व का परिचय रासपुंवाख्याओं में प्रयुक्त राँगा और मंरगीत में प्रयुक्त राँगा, दाँहा तथा १० मात्रा की पंक्ति वाले मिश्रित छंद से ही मिलता है । अन्य छन्दों में भी छन्दों का प्रयोग वर्ण्य विषय के अनुसार ही हुआ है, किन्तु कवि ने उनका प्रयोग काम चलाने रूप में किया गया है, इसलिये उनमें यर लाजित्य, भास्य और थेयता नहीं जानी पाई है जो राँगा छंद वाले गन्य या मंर गीत में मिलती है ।

नन्ददास के काव्य की माषा:-

ब्रजमाषा के रत्नों में नन्ददास का प्रसूत स्थान है । ब्रजमाषा की साहित्यिक रूप देने, उसे कलात्मक, सरस, मधुर और शक्ति सम्पन्न माषा बनाने वाले सुरदास, रसखान, मतिराम, घनानन्द और आधुनिक युग के मारतेन्दु, रत्नाकर आदि कवियों के साथ नन्ददास को विरहित नहीं किया जा सकता । नन्ददास ब्रज माषा के धितरे थे । इन्होंने माषा में पर्याप्त कलात्मकता का समावेश किया । माषा पर उनका अमूल्य बिकार था । माषा बिकार के कारण ही वे और कवि गठिया, नन्ददास गठिया कहलाए थे । वास्तव में नन्ददास ने अपनी ब्रजमाषा प्रयोग से एक बिकार की ही कारीगरी दिखाई है । राजमवाध्यायी के तो एक एक छन्द गाने की तरह जड़ा हुआ है । जिस प्रकार कुंदर तार बनाने वाले माँती माणिक्य और हीरे के साथ नीलम पन्ना और मूँ के ताराश ताराश कर रंग में रंग का जोड़ मिलाता है, और बड़ी सामयानी से तार को गुथता है, उसी प्रकार नन्ददास ने छोट छोट कर कुंदर अमनिसूर्ण मधुर और साधुप्राप्तिक वणों की मालाये गुथी है । हाँ छाती प्रसाद के छंदों में छन्द अनुशास की फँकार से नन्ददास ऐसे घातावरण की सृष्टि करते हैं कि पाठक जपित्त हो जाता है । छंदों की अमन और अर्थ की गम्भीरता एक दूसरे से स्पर्श करते हुए प्रकट होते हैं । अष्टशाय के किसी दूसरे कवि ने छन्द गठन और अमन निर्माण की ऐसी कामता नहीं दिखाई ।^१ वस्तुतः नन्ददास की माषा का प्रसाद और शक्ति माधुर्य संस्कृत के गीत गोविन्द और विद्यापति कीपदावली की याद दिलाते हैं ।

नन्ददास के सम्पूर्ण ग्रन्थ ब्रजमाषा में लिखे हुए हैं । परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थों की माषा में वह प्रौढ़ता और माधुर्य नहीं है जो उनके कुछ चुने हुए ग्रन्थों में है । नन्ददास ने अपने ग्रन्थों में बहुतों द्वारा रस का ही चित्रण किया है उल्लिखित उनकी माषा में माधुर्य व प्रसाद गुणों का समावेश हुआ है । अजि तथा पुरुषावृत्ति के छन्द व्यन को अवसर नहीं है । माषा की शक्ति, माधुर्य के अनुसार छन्द व्यन पर

बहुत निर्भर रहती है। नन्ददास की भी माया में माय के अनुसार शब्दों के प्रयोग का एक पारंगत गुण है जिसमें माय का एक चित्र पाठक के सामने जाता है। उस गुण की पालिका (रास पंचाव्यायी की नीचे लिखी हुई पंक्तियाँ देखियें :-

गोपियों सुरजी नाम के सहारे कृष्ण के पास जा रही है। कृष्ण ने उनके लपुंगों की फँकार सुनी और फिर एक एक कर जाता हुई गोपियों को उन्होंने देता। उस समय कृष्ण की मावमन्ता के चित्र को जिकित करने में नन्ददास की मधुरमाया पूर्ण अभ्य है --

लिके लपुंगनाद सुने जब परम सुखये ।
तब हरि के मन नैन सिमिटि सब भ्रमनन, जाये ।
सुसुके सुसुके सुति मली माँति ली, प्रकट भई जब,
पिय के जो जो सिमिटि मिले हैं रसिक नैन तब १

इन पंक्तियों का सम्पूर्ण शब्दावली तो मायवातिक है ही, परन्तु केन्द्रागत के लक्ष्य में प्रयुक्त सिमिटि शब्द पर इन पंक्तियों का शब्दार्थवात्क में सिमिटि हुआ है। इसी प्रकार, कृष्ण के बटपटे बानवों को उन्तर गोपियों एक दूसरी पर मूल माय से अपना माय प्रकट करती हुई तथा एक दूसरी का माय व्यन करती हुई किस प्रकार की स्थिति में हुई इस पुरा चित्र कवि ने नीचे की शब्दावली में किया है :-

कन्द परस्पर लखी लखी तिरछी अलियन अस,
उप उदवि, इतराति रंगीली मोन पीति नस, २

इस पद में एक एक शब्द उस प्रकार चुन चुन कर रखा गया है कि प्रत्येक शब्द प्रेमी के अलङ्कृत माय को प्रकट कर रहा है। यहाँ इतराना शब्द बहुत अर्थार्पित है। गोपियों के समीप हुए पूर्ण हृदय की उमंग, कृष्ण के प्रेम को दृढ़प्रतीति और उनकी अक्रावित पर गोपियों का चिन्तितमाय, उस एक शब्द से पूर्ण उपेक्षा प्रकट

१- रास पंचाव्यायी उदयनारायण तिलवारी पृ० २१ ।

२- रासपंचाव्यायी उदयनारायण तिलवारी पृ० २१ ।

हो रहे हैं । राम क्रीड़ा में भी गायन वादन तथा नृत्य भाव के चार्त्तिक तथा रास के उदञ्जल भाव के परिचायक शब्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है जैसे --

उत्तुर कंकन किकिनि करतल मधुल सुरली,
ताल मुक्कम उप्पम वी एकहि धुर धुरली
मधुल सुरज टोमार, ताल मङ्गार पिळी धुनि,
मधुर वज की तार मधर हुंजार रलि धुनि,
तेय्यि मूडु पद परकनि चट्कनि कतारन की,
तटकनि मटकनि माळकनि कल कुंडल चारन की ।^१

इसी प्रकार का गुण नन्ददास के मङ्गरगीत की भाषा में है । जिस स्थल पर गोपी विरह का वर्णन है वहाँ भाषा बहुत प्रभाव प्रसारिणी और भाव वाहिनी बनी है, जहाँ तक पूर्ण स्थल है वहाँ भाषा तर्क तथा पाण्डित्य पूर्ण है और वहाँ गोपियों के उपात्तम वाक्य है । वहाँ भाषा की व्यञ्जना शक्ति का परित्यक्त प्राप्त होता है ।

नन्ददास की भाषा का दूसरा गुण है मधुर और परिवित शब्दावली का प्रयोग । इस प्रकार के प्रयोग से उनकी भाषा में भाव स्पष्टता तथा का गुण उनके श्रुतियों में विशेष रूप से आ गया है । इस गुण को काव्यसमीक्षा की भाषा में प्रसाद गुण कहते हैं । उनमें नेत्रों के लिये, बल्लभ कुल्लू वूम सुमारें ।^२ सजावट और शोभा के लिये बानरु^३ लावण्य के लिये तुनाई^४ आदि शब्दों के बरेलु और भरत प्रयोगों ने भाषा को भावपूर्ण प्रसादता का गुण दे दिया है । नन्ददास की शब्दावली में संस्कृत भाषा के शब्दों का बहुत प्रयोग हुआ है परन्तु वे शब्द बहुधा ब्रजभाषा के साधों में उठे हुए हैं और ब्रज के उच्चारण के रंग में रंगे

१- राक्षसभाष्याथी उदयनारायण त्रिवारी पृ० ६६-६७ ।

२- " " " " पृ० ६६-६७ ।

३- " " " " पृ० ४

४- " " " " पृ० ६

बारी, फारी शब्द :

गरव (बारी) जाकी रचक रचगरज, जणसे मरि पविजात ^१

लायक (फारी) अहाँ दिप्र बन ठामे न कोने या लायक नायक कुं दीजे ।^२

बरदास - बहुत मति बदन कहीं बहुतहि कर बरदास, कुपा करि दीजिये ।^३

मुहावरी, कहावती, तथा ब्रजभाषा के छे शब्दों में प्रयोग के कारण नन्ददास जी की भाषा में सरलता तथा सजीवता के गुण आ गये हैं । कवि की भाषा में प्रयुक्त कुछ ब्रज वाणी के छे शब्द देखिये :-

ब्रजवाणी के घरेलू शब्द :

बीर - अरी बीर । चलि गाला अहाँ यह दिनती बेरो । ^४

छरिका - कलत पुनत लजा नही करे बीर ते बीर,

कि छरिका अवपलौ ।^४

पुत - मेया आउ लीं फरे - पुत लीं नाके बाहे । ^५

बैगि - बैगि पठै नन्दलाल को जीव दान दे मोहि ।^६

रस - वन उपवन के रस गुस भावै तिरि देखै ।^७

नन्ददास की पदामली तथा उनके ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि का ब्रजभाषा पर पूर्ण अधिकार है । नन्ददास की उत्कृष्टता से उनकी काम भाषा भी जलिया लीने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । कृष्ण, कृपा, देखल आदि शब्दों का समुचित प्रयोग, शब्द शक्तियों का अपूर्व शक्ति, अंकारों का भावोत्कर्ष-कारो समावेश, भाव प्रवाह के अद्भुत शब्दों का विधान, मुहावरे और उक्तिवित्ति

१- उपमहरी पविमहरी पददास, क० दास १२३ नं० ५६१

२- ल्याम लाई, नन्ददास पु० १२५ नं० ५६१

३- ल्याम लाई, नन्ददास पु० १२५ नं० ५६१ पवित्र नं० ७६

४- ११ ११६ पवित्र नं० ७६

५- ११ ११६ पवित्र २५

६- ११ ११६ पवित्र ३६

७- ११ ११६ पवित्र ७६

८- ल्यामलाई, नन्ददास, पु० १२४, पवित्र नं० ५७

की स्वाभाविकता, रीति, वृत्ति और गुणों का समुचित समालोचन आदि कल्पित विशेषताएँ देती हैं, जिनसे नन्ददास की कृतियों में वर्णित प्राणवत्ता और प्रभाव विष्णुता आ गई है। अष्टशय काव्य में माया के वैभव एवं समृद्धि की दृष्टि से नन्ददास अपना सानी नहीं रखते।

नन्ददास ने केवल सुन्दर शब्दों के मोती, नाण्ड्य, शोरा, नीलम आदि जोड़ते हैं, अपितु छंद बन जाने पर उस पर पालिश भी करते हैं। यही कारण है कि उनके पदों में माधुर्य उच्च श्रेणी का पाया जाता है। उनकी काव्य में माधुर्य व प्रभाव गुणों की प्रधानता है। उनके शब्दों में लघुवर्ण ही अधिक है। अत्यन्तपूर्वक दीर्घवर्णों का प्रयोग कम किया गया है। उनकी काव्योक्तियों को उनकी जीतस्थी माया ने और भी अधिक मनोहर बना दिया है। उनकी रासपवाध्यायी छंदमयी मंगल और मंत्रांगित में माया का प्रवाह और जीत की वृत्ति मधुर गुण दर्शनीय है। रासपवाध्यायी में तो उन्होंने एक एक शब्द काव्य पटुता के साथ चुन चुन कर छंद की उक्तियों में पिरायेया है किन्तु पाठक का मन सहज में ही हल लेते हैं। शब्दों की वृत्ति मधुर बनाने के लिये शब्दों को अनेक कवियों ने लोहा मरोड़ा है। नन्ददास ने भी यह स्वच्छदता ली है। यद्यपि छंदपुति या छंद के लिये मूल माया के प्रचलित शब्दों को लोहना माया के प्रयोग का एक अग्रगुण ही होता है। परन्तु नन्ददास ने इस प्रकार शब्दों को लोहा मरोड़े करते समय उनकी मधुरता और प्रभावता को बनाये रखा है।

परन्तु नन्ददास की माया की दृष्टि से चौपट या चौपाई आठे ग्रन्थों में अधिक एकल नहीं हुए हैं। उनके दोहों और सारों की माया वैसी व्यवस्थित, माधुर्यपूर्ण और मधुर है वैसी चौपाइयों की माया नहीं है। ऐसा लगता है कि कवि की कविता शक्ति और माया का लित्य के प्रस्फुटन करने में चौपाई छंद समर्थ नहीं है। उसे केवल यह मत सही सा लगता है कि चौपाई और चरवा छंद जितने अवधी भाषा में एकल होते हैं उतने ही माया में नहीं। यही एक और बात स्पष्ट है कि कवि के भाव गाम्भीर्य, रोचक, उत्प्रेक्षा से पूर्ण उसकी सूचित तथा अनुप्रासों ने माया की

शिथिलता वाली कमी की काफ़ी होमा तक पूर्ति की है। इस प्रकार यद्यपि नन्ददास की भाषा पूर्णतः निर्वीच नहीं है पर उसके पदों लक्ष्य की जगमगाहट मन को मोह लेती है।

निष्कर्ष :-

कवि की काव्य कला का उपर्युक्त प्रकार से विशेषण एवं विवेचन प्रस्तुत करने के उपरान्त यह कहना शेष रह जाता है किजब प्रकार बीज बाहु जल एवं प्रकाश इन तीनों तत्वों की विद्यमानता से संकुचित होता है उसी प्रकार कवि की काव्य कला का बीजाक्षुरण भी उसी स्थल पर हुआ है जहाँ अनेकार्थ भाषा, श्याम छान्द और नाममाला के रूप में बानों उक्त तत्त्व विद्यमान हैं। यद्यपि बीज रूप से उसकी कला अनेकार्थ भाषा व श्यामछान्द में पकित है ही दृष्टिगत होती है तथापि नाममाला रूप द्वितीय तत्त्व को उपस्थिति होने पर ही उसका अक्षुरण ही सका है। अनेकार्थ भाषा, श्यामछान्द और नाममाला के प्रादुर्भूत कवि की उक्त कला का परिष्कार, रसमंजरी, उपमंजरी और विरहमंजरी में हुआ जान पड़ता है। काव्य कला का जो रूप मान, भाषा, छन्द अलंकारादि के द्वारा इन ग्रन्थों में सामने आता है, वह कवि की कला का आभास देने में पूर्ण अर्थ है। यह बात उपमंजरी व विरह मंजरी के विषय में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस प्रकार कवि का काव्य कला मंजरी ग्रन्थों में परिष्कृत होकर पल्लवित एवं पुष्पित होने योग्य हो जाता है और उपमणि कोल, रासपूजाध्यायी तथा सिद्धान्त पद्माध्यायी में उसका पल्लवित एवं पुष्पित रूप ही हमें देखने को मिलता है। यह कवि की कला की ही विशेषता है कि उसके आश्रय से कवि भागवत दशमस्कंध का आधार ग्रहण करने पर भी उक्त तीनों ग्रन्थों की मूल काव्य रूप में प्रस्तुत कर सका है, जिसमें भाषा शैली बाहुता, कसुता, सरिता, कांठकारिता, रमणीयता, प्रवाद और सुन्दरता से सुशोभित है। ऐसे कवि की नैसर्गिक मान प्रमणता एवं सौन्दर्यप्रियता का परिचय मिलता है। कवि की सभी कृतियों को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि उसका काव्य कला व्यक्तित्व सम्पन्न

मौलिकता से युक्त है और उसमें कसुता, लालित्य, समासिकता, सन्दर्भ-विवेकीयता एवं प्रभावोत्पादकता का सम्यक् समावेश हुआ है। कृत्तियों में अनुप्रास, उपमा और उत्प्रेक्षा का सहज सन्निवेश कवि की अङ्कुरण पटुता का परिचायक है। यह बात नहीं है कि ये सभी विशेषताएँ उनकी सभी कृत्तियों में मिलती हैं। परसुत काव्य कला की दृष्टि से उपमणरी, विरलमणरी, रुक्मणि माल, राउमवाध्यायी, सिद्धान्त पद्माध्यायी और मधुरगीत ही कवि की उत्कृष्ट रचनाएँ ठहरती हैं। उनमें से भी अन्तिम चार ग्रन्थों का महत्त्व अधिक है। उनके द्वारा कवि में व्यक्तित्व की स्वभावगत सौन्दर्य प्रियता, वरलता, पूर्ण तल्लीनता और आत्म विस्मृति, ध्येय की एकाग्रता एवं मधुर भावद्वारि परायणता का यथेष्ट प्रकाशन हुआ है। निश्चय ही ये कृत्तियाँ आकार में लघु होते हुए भी रूपकावली की उत्कृष्ट कवित्व शक्ति की साक्षी हैं।

चतुर्थ अध्याय

सुर की काव्य कला का रूप, माधुर्य, रस, अलंकार, छन्द और माया

वस्तुनिक हिन्दी काव्य समीक्षा जगत में पार्श्वव्याप्त्य चित्तन को काकी महत्वपूर्ण स्थान प्रदत्त कर दिया है। आलोचना के जो मानक प्रमाण निर्धारित किये गये हैं उनमें प्रमाणात्मक पार्श्वव्याप्त्य प्रणाली का ही है। यद्यपि काव्य शास्त्र की परम्परा पारम्परिक में भी पूर्णता को पंहुची हुई थी तथापि इसका को बख्शीकार नहीं दिया जा सका कि आलोचना के क्षेत्र में पार्श्वव्याप्त्य विद्वानों की विशेष देन है।^१ अस्तु वे हमने अनुकूलि का सिद्धान्त प्राप्त किया, कालरिज से कल्पना का विवेचन, ज्ञाने से अभिव्यक्तिवाद, रिचर्डस से मनोवैज्ञानिक दृष्टि और आन्वयानस से आँदात्म्य का सिद्धान्त। इन्हीं के साथ पार्श्वव्याप्त्य समीक्षा जगत के कुछ विवाद भी हिन्दी में गये। कला का प्रयोजन क्या -- यह प्रश्न भी हिन्दी जगत में उठने लगा और पार्श्वव्याप्त्य जगत की मोति ही यहाँ भी कला कला के लिये तथा कला जीवन के लिये -- ये दोनों सिद्धान्त उठ खड़े हुए। हिन्दी के समीक्षकों ने भी कई बार साहित्यिक कृतियाँ और कृतिकारों का मूल्यांकन भी इन आधारों पर किया।

यदि सुरदास जी पर ये सिद्धान्त लागू किये जाते हैं तो ज्ञात होता है कि सुरदास जी ने काव्य रचना के लिये काव्य रचना के लिये नहीं की। काव्य रचना उनका साध्य न होकर केवल साधन था। उनका साध्य तो मगवद्भक्ति था। वे पहले मगवद् भक्त थे बाद में कवि। बल्लभाचार्य के शिष्य होने से पहले वे विनय के पद गाया करते थे और उनके शिष्य होने के पश्चात् उन्होंने मगवद् लीला का वर्णन करना आरम्भ किया। इन दोनों कालों में ही मगवद् भक्ति उनका उद्देश्य थी और कविता बस साधन मात्र। सुरदास की भक्ति को लक्ष्य भक्ति का नाम दिया गया है। लौकिक व्यवहार में जो मित्रता का आदर्श उपस्थित किया जाता है उसी आदर्श भाव को लक्ष्य भक्ति में मगवद्

मगवान् के प्रति रहता है । मगध अपने सखा मगवान् है कोई स्वार्थ नहीं रहता अपितु केवल मित्र भाव है अतः प्रेम व्यवहार करता है । श्री मद्भागवत, दशम स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में ज्ञाना कृष्ण की स्तुति करते हैं । उसने मागधत्कार कहते हैं -- ब्रज के निवासी उन नन्द गोपों का बन्धु है जिनका परमानन्द पूर्ण अनात्म ब्रज मित्र है ।^१ कृष्ण मन्त्रों ने मागधत्कार के इन वाक्यों में सत्य पत्रित का स्वरूप देता । बरह्म सम्प्रदाय में अष्टशाय मन्त्रों का कृष्ण के अष्ट सखा माना जाता है । शूरदास जी ने कृष्ण की आठ जी, गौचरण लीलाओं में अपनी सत्य पत्रित का प्रकाशन किया है । इनके अतिरिक्त शूरदासर, दशमस्कन्ध उत्तरार्ध के स्यामा वरिष्ठ मज्जन नामक प्रकाश में भी उनकी सत्य पत्रित का प्रकाशन हुआ है । यहाँ पर उन्होंने मगवान् का सबसे बड़ा मित्र बताया है और सत्य पत्रित की महत्ता का भी उल्लेख किया है । शूर कहते हैं --

ऐसी प्रति की वलि जाऊँ ।

विहासन तजि बलें मिलन को सुख हुआमा नाज ।

शूर स्याम की कौन बतावै मन्त्रन कृपा अथार ।^२

शूरदास जी ने काव्य रचना बनपनी उस पत्रित का प्रकाशन करने के लिये की कवि की उपाधि प्राप्त करने के लिये या प्रकाशक से कुछ धन प्राप्त करने के उद्देश्य है नहीं । उस मन्त्रन उद्देश्य के कारण उनकी काव्य में भी महानता आयी । जब तक काव्योद्देश्य गरिमापूर्ण नहीं होता तब तक काव्य में कमी गरिमा का समावेश नहीं हो सकता । उसके फलस्वरूप उद्देश्य से लिखी गई कविता सदा हल्की कुल्लो हो रहती ।

१- अहो माग्यमहो माग्य नन्द गोपे ब्रजोक्तान् ।

मन्त्रिण परमानन्दं पूर्णं ब्रज अनात्मन् ॥

भागवत, दशमस्कन्ध अध्याय १४, श्लोक ३२

२- शूर सागर, उत्तरार्ध, पृष्ठ ५६६ ।

भारतीय मत में कवित्व को ईश्वर प्रदत्त या जन्मसिद्ध स्वीकार दिया गया है। ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा, निपुणता, शस्त्रों का अध्ययन, काव्यज्ञों से शिक्षा ग्रहण और पुनः पुनः अभ्यास — इन सबको समन्वित रूप से कवित्व का हेतु माना गया है।^१ वास्तव में कवि पहले अपना असाधारण ब्रह्म है वाच्य जगत और अन्तर्जगत् का निरीक्षण करता है और फिर कल्पना, बुद्धि और भाव तत्त्वों के सहारे उस निरीक्षण को कविता का रूप देता है। उसका मानसिक अनुभूति ही कविता का यान्त्रिक पक्ष है। रचना के समीपक क्रमों के कवि की आन्तरिक अनुभूति को बहुत महत्त्व दिया है। सुगं और रचने की चेतन और अचेतन के व्यापारों के समन्वय को कविता का आधार मानते हैं। जैसे भारतीय परम्परा में माना जाता है कि भाव ही रस रूप में परिणत होता है उसी प्रकार पार्श्वान्त्य चिन्तन के अनुसार भी सभी कविता में हृदय और मलितक दोनों का ही स्थान माना जाता है।

भारत के काव्य में स्पष्टतः यह परिलक्षित होता है कि उनके पदों का आधार भाव ही है। वेता कि जहाँ जा चुका है पणित भाव से प्रेरित होकर ही वे कविता के क्षेत्र में प्रवृत्त हुए। उनके काव्य में उनके व्यक्तित्व की आप में स्पष्ट रूपेण कलकती है। भारत के भाव विधान में मनोविज्ञानिकता को विशेष स्थान मिला है। उनका वास्तव्य और विरह वर्णन तो विश्व साहित्य में वैजोद है। आलोचना के नवीनतम सिद्धान्तों पर भी, जिनके अनुसार मनोविश्लेषण का बड़ा महत्त्व है, उनको कविता लगी उतरती है और भारतीय आलोचना पद्धति के अनुसार भी ब्रह्मास महान कवि उभरते हैं। काव्य के भाव पक्ष का पक्ष दोनों में ही बड़े अनुपम है। इन दोनों पक्षों को अनुभूति पक्ष और अक्रियणित पक्ष कहा जाता है। पार्श्वान्त्य समीक्षाओं द्वारा प्रतिमादित रागात्मक तत्त्व, कल्पनात्मक, बुद्धित्व और शैलीत्व तथा भारतीय समीक्षाओं द्वारा प्रतिमादित भाषा, शैली, रस और बल्लार विधान आदि तत्वों का समाहार इन्हीं दोनों के अन्तर्गत ही जाता है। यद्यपि शैली का सम्बन्ध जाकार और अक्रियणित पक्ष से अधिक है फिर भी उसे वस्तु या भाव से

१- कवित्व निपुणता लक्षणाद्वय का व्यापक है जगतात् ।

काव्यका शिक्षायाम्यात उति उल्लेख्यते ॥

काव्य प्रकाश, प्रथम उल्लास ।

बला नहीं दिया जा सका । दण्डी और कुत्त ने भी स्वीकार किया है कि शैली का सम्बन्ध कवि के व्यक्तित्व से है । जैसे निर्मल वात्मा और सुन्दर शरीर का सम्बन्ध मनोहर स्नेह प्रेरक होता है । उसी प्रकार पाद और हृद का उचित सम्बन्ध भी । अब देना यह है कि शैली की रचनाओं में यह सम्बन्ध कहीं तक उपलब्ध होता है ।

स्वरों के आरोह अवरोह से काव्य कर्णप्रिय बनता है । स्वरों के आरोह अवरोह का परमात्मिक राग रागिनियों में मिलता है । इसीलिए हृदय के कोमलतम भावों की अभिव्यक्ति के लिये कवियों ने प्रायः शान्ति शैली को अपनाया है । हृदय की रागात्मक धृति के योग से जब हृत् और हृत् की वस्तुति तो प्रथम होकर अनेक भावों की उपलब्धि हुई वारा में अस्त परंपरा और कल्पना का प्रसारण करती हुई अकस्मात् कल कल ध्वनि से कवि के कण्ठ से फूट पड़ती है तो उसे गीत की रक्षा प्राप्त हो जाती है ।^१ बाबू गुलाब राय ने अपने सिद्धान्त और अध्ययन में प्राति के जाण उस प्रकार बताये हैं --

सौम्य में प्राति काव्य के तत्त्व का प्रकार है -- शीलात्मकता और उसके अनुकूल सरस प्रवासनी कोमल ज्ञान्त पदावली, निमी रागात्मकता (जो प्रायः आत्म निर्वेदन के रूप में प्रकट होती है), शक्ति-मत्ता और भाव की एकता । यह काव्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक अन्तःप्रेरित होता है और इसी कारण इसमें कला होते हुए भी कृत्रिमता का अभाव रहता है ।^२

हृदय की कोमल भावनाओं को व्यक्त करने के लिये गीत शैली निस्तान्त उपयुक्त है क्योंकि गीत का मधुर स्वरों के स्वरों के रेशमी धुन में बाध कर चलते हैं । अपनी मखिल भावना को व्यक्त करने के लिये शूर को एक परम्परागत विकसित गीत शैली प्राप्त हुई । क्योंकि संस्कृत साहित्य में ही अनेक कवियों ने

१-शूर और उनका साहित्य डा० हरमोहन लाल शर्मा पुष्प २८५-२८६

२- सिद्धान्त और अध्ययन प्रथम संस्करण, पुष्प १०८

झुगार और प्रेम की भावना के साथ फावत-प्रेम का सम्बन्ध कर दिया था । बख्शेव का गीत गौविन्द उस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है । हिन्दी में वैधिल कोटिल विद्यापति ने भी अपने राधाकृष्ण विषयक झुगारिक गीतों को ऐसी तान छोड़ी जिसकी दूर विधिय कवि विलाद्वय की ५७ कल ध्वनि को परामृत कर मिथिला के वाप्रद्वय पुर्ण को मुग्धित करती हुई दक्षिण की ओर से प्रवृत्त मन्त्रित स्वीर का वाधार उ उधर की ओर बढ़कर प्रज में काहिन्दी कृतस्थ कदम्बों को आन्दोलित करती हुई वृदावन के कोटिन्दु कलवात के के वाम से भी पुन्दर करीत पुर्णों में गुजने लगी । यही परम्परागत गीत रंजीत गुर को प्राप्त हुई । किन्तु गुर ने उसमें नवीनता का विचार किया । उनके विनय के पदों के माप, मापा, बद विन्यास -- सभी हस्त काव्य से प्रभावित हैं क्योंकि ये पद उन्होंने आचार्य बल्लभ द्वारा पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित किये जाने से पूर्व लिखे थे । परन्तु पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पश्चात् जब उन्होंने लिखित प्रश्न छोड़कर सब विधि जगम विचारहि लाते हुए अनु लीला पद गावें कल्कर कृष्ण का चरित गान दिया तो उनके पदों का चाल भी बदल गया । आचार्य हुशाराम सभी ने ठीक ही लिखा है -- उस गायन में ऐसी नवीनता रागिनी है, जो गुर सागर में न जाई हो ? कहा जाता है कि गुर के गान ऐसे राग रागिनियों में थे हैं जिनमें वे हृद के तो जाण भी अब प्राप्त नहीं हैं । ऐसी राग रागिनियाँ या तो गुर को अपनी दृष्टि है या अब उनका प्रचार नहीं है ।^१ आचार्य हुशर जो के हृद भी दृष्ट्य है, गुर सागर में कोई राग या रागिनी हूटी न होगी । उससे अब जाति प्रेमियों के लिये भी बड़ा खजाना है ।^२ वृदावन जी ने गुरसागर में भावात्मक स्थलों का ही मनोरम वर्णन दिया है, क्या के प्रचार का निर्वाह नहीं किया । उनका उद्देश्य, वस्तुतः, क्या कहना नहीं था । उनका उद्देश्य तो अपने दृष्ट देव की लीलाओं का हृदयग्राही रूप में वर्णन करना था । हा० शरवश लाट सभी ने कहा है, उनका उद्देश्य था -- अपने प्रभु के प्रेम में मग्न होकर उनके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए मानव भाव रसाकृत को पदों के प्रवाह में बहा देना, जिससे शिखर छोड़कर जग मनोमुक्ति में भावभूमि का उधर फूट निकले ।^३

१- गुर वीरम, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ३८३

२- आचार्य हुशर वृदावन द्वितीय संस्करण पृष्ठ २००

३- हा० शरवश लाट सभी ने कहा है, उनका उद्देश्य था -- गुर और उनका साहित्य, द्वितीय संस्करण पृष्ठ २६६

सुगत रैली गुर की स्वभाव के सर्वथा अनुकूल थी । प्रवन्धात्मकता के बन्धन में जंम जाने पर कवि कुत उड़ान नहीं कर सकता और उसे मनोरम एवं सामान्य सभी स्थलों का वर्णन करना पड़ता है । गुर के पद इस बात को प्रमाणित करते हैं कि भाव सुष्म सौरभ के सुन्दर स्वार के लिये पवित्र प्रेम प्रवाह के प्रसार के लिये, मृगार संसृमभरि के मधुमय विकास के लिये और कविता कल्पिनी के कौतुकमय विरास के लिये गीत रैली ही सर्वोत्कृष्ट रैली है । गुर के पदों में काव्य और छानि का बड़ा ही मनोरम समन्वय हुआ है । गुर ने परम्परागत गीति रैली को परिमार्जित कर दिया है । और इस रैली में काव्य रचना करने में जितनी सफलता गुर को मिली है उतनी शाय ही किसी अन्य कवि को मिली हो ।

गुरदास जी की गये पद रैली में विविधता और विविक्तता केने ही उपलब्ध होते हैं । उन्होंने अपने दृष्टदेव श्री कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन किया है, रत्निनागर, रक्षिदेवर, गोपीबल्लभ कृष्ण की रति श्रीराजों का विजय किया है तथा उनके विरह में वर्तमान गोपियों के हृदय की माधनाओं का भी अभिव्यञ्जन किया है । ऐसे तीनों ही स्थलों पर कवि भावनिष्ठता ही उठता है और निरालुता ही काव्य: प्राणी करावत को चरितार्थ कर देता । एक एक बाल श्रीराजों को लेकर, एक एक रति वैष्ठा को लेकर तथा विरह को एक एक टीस को लेकर कवि ने कई कई पदों की रचना की है । कवि का मन उसमें इतना रम जाता है कि पुनरावृत्ति दोष नहीं रह जाती । एक छोटी ही बात को लेकर मयित भावना में तल्लीन कवि अनेक व्यापार योजनार्य प्रस्तुत करता है, अनेक क्षारिदों की उद्घाटना करता है और क्रम से क्रम मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन करता है । यशोदा का हरि को पाउने में कुत्ताना यों ही उड़ती नजर से देखे जाने योग्य नहीं है । उसमें मातृ हृदय कीविशालता की प्रेक्षणी है जिसे दर्शन मात्र से हृदय पवित्रता में स्नान कर लेता है :

बसोदा हरि पालने कुलधै ।
 हलराधै हलराय मरसाधै, जोर-जोड़ कहु गाधै
 मरे जाउ को जाउ निरिया, काहे न बान पुलाधै ।
 तु काहे नहि कोहि जाधै, तोको का-ह सुलाधै ।
 कबहु पलक हरि मुख लेत है कबहु जपर फरकाधै ।
 सोधत जानि मोन ह्वै के रहि, करि-करि सैन बलाधै ।
 हरि अन्तर बहुलार उठै हरि, बहुमति पवुरै गाधै ।
 जो सुत सुर जपर-हुनि दुरलभ, सो नंद यापनि पाधै ।^१

ऐसे वर्णनों में बहुत मनोवैज्ञानिक रूप व्यक्त किया गया है । बाउ सुलभ वपलता और चिन्तापूर्ण चैष्टाओं का उपसृत पद में बहुत सच्चा तारतम्य है । कवि ने बाऊ की अंतः प्रकृति में भी पूरा प्रवेश किया है और उनके भावों की सुन्दर स्वभाविक व्यञ्जना की है ।^२ इस वाक्य वर्णन से सुर ने वात्सल्यरस की कार्यक्षमता सिद्ध कर दी ।

जाने बखर सुर ने ग्वाल बाऊ के साथ कृष्ण का लेना, गौवारण, गोपियाँ के साथ बाउ बिलार बादि का वर्णन भी भावात्मक गेय पद शैली में किया गया है । साथ ही साथ सुर ने कुछ ऐसे गीतात्मक कथानक भी लिखे हैं जिन्में भावात्मकता की अपेक्षा प्रवन्धात्मकता अधिक है । इनकी दो शायी में रसा वा सकता है -- कृष्ण के अलौकिक कार्यों से सम्बद्ध प्रश्न जैसे, राजा की का वय, वत्स-हरण, कालीय दमन बादि तथा उनकी प्रेम लीलाओं से सम्बद्ध प्रश्न जैसे वीरहरण, दानलीला, मानलीला बादि । उन प्रश्नों में सरलता, स्वाभाविकता और सीधता के ही विशेष दर्शन होते हैं । सुरजीविषयक पद की गेय पद शैली में ही लिखे गये हैं । विरह के पदों में उनकी शैली अन्तर्हृत् को गर्ह है उसके ममत्त की अन्तरात्मा के दर्शन होते हैं । यह विरह वर्णन दृगार का रङ्ग-राजत्व तो प्रतिपादित करता ही है, ममत्त की विस्मृत वात्मा की क्षणभंगुरता के भी दर्शन कराता है ।

दृष्टकूट पद शैली :-

संत कवियों ने मन्त्रित नाम की अम्लियकित के लिये गेय पद शैली को अपनाया था और रहस्यात्मक भावों को प्रकट करने के लिये दृष्टकूट पद शैली को । मन्त्रित के दो-
 नै इस शैली का प्रयोग सर्व प्रथम वैष्णव कौणिल जियापति ने किया । मलिक मुहम्मद
 जायसी के पदपावत में भी कहीं कहीं उस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । तुलसीदास ने भी
 इस शैली में अनेक दाँहे लिखे । किन्तु शूरदास जी के पदों में इस शैली का परिपूर्णतः
 साहित्यिक रूप मिलता है । ये भी वेही गेय शैली में ही लिखे गये हैं पर इनमें स्वा-
 मय कविता की अपेक्षा वस्तुकारिकता और सरलता की अपेक्षा सुलभता अधिक है ।
 साहित्य लहरों के पद तो दृष्टकूट कहलाते ही हैं, शूर सागर के भी इस प्रकार
 के पद मिलते हैं । साहित्य लहरों इस शैली की प्रादुर्भाव कहा जा सकता है ।
 इन पदों में शूर ने वस्तुकार की दृष्टि के साथ साथ रहस्यात्मक सौन्दर्य का भी
 निरूपण किया है । इस शैली में शूर ने जियापति की मीति विरह प्रकाशों का
 चित्रण तो किया ही है, साथ ही साथ राधाकृष्ण की अनेक मंगिमाओं, छुटाओं
 और रति शोकाओं का भी वर्णन किया है । साधारण पाठक को तो ये पद
 सरलीकृतपरक लगते हैं परन्तु शूरदास ने तो उन्हें सज्जन समाधि के पद कहा है ।
 ज्योतिष ग्रन्थों की मीति इन पदों में वर्णनात्मक रूपों का प्रयोग बहुलता
 के साथ हुआ है और साथ ही कुछ रुढ़ रूपों का भी प्रयोग किया गया है ।

वर्णनात्मक शैली :

शूर ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग उन स्थलों पर किया है जहाँ उन्होंने
 किन्हीं बातयानों या पौराणिक प्रकाशों को और उल्लेख दिया है । श्रीमद्भागवत
 के कथा प्रकाशों पर आधारित अनेक पद शूरसागर में गाँते जा रहे हैं । हम उनकी
 शैली गेय पदों की शैली से विन्न हैं । हमने काव्य शौष्ठव का अभाव है और
 लगता है कवि की वृत्ति इन प्रकाशों में रही होगी । हमने न तो कवि के व्यक्तित्व
 का प्रतिबिम्ब उद्घाटित होता है और न अल्लिखित चित्रण को ही दर्शन होते हैं ।

ऐसे सारे वर्णन चलताऊ रूप से कर दिये गये हैं और उनमें काव्य प्रतिभा, पाचुक्ता, बहुलता और कला फैलन नहीं होते। इनसे बहुत सभ्य ऐसा लगता है कि कवि शीघ्रता से जैसे जैसे कर्ष्य वस्तु का वर्णन करके अपने फार्ज से कारिग होने को चुन ले है।

हूर सागर में कृष्ण के अंतप्राशनादि संस्कार, माणिक वादि निस्थ फर्माँ से सम्बद्ध वर्णन पसंत, छोटी लीला, दि-हाँल लीला आदि प्रकारों का चित्रण इस भाँति किया गया है कि उनमें व्यापारों और वस्तुओं की लम्बी लम्बी धुवियाँ के अतिरिक्त और कुछ नहीं छील पड़ता। ऐसे वर्णनों में गम्भीरता और कलाकारिक तल्ली का धार अभाव है। बाँल वनसरण, फालीय दमन लीला, गोवर्द्धन लीला, रासलीला, आदि के वर्णनों में कवि का हृदय न रमने के कारण बुलाना मिला आ गए हैं किंतु कवि की आगे बजने की उतनी अवीरता नहीं फाँलती जिसकी मानवत के आयातवाद वाले स्थलों में। अर्थात् की रमणीयता के कारण ऐसी में तो सौन्दर्य का समावेश है परन्तु पावों का मार्मिक चित्रण उनमें नहीं मिलता।

भाव और रस

अन्व मन में अनुसूतियों को अमिथ्यत करने की लालसा अदम्य होती है। इसी से वह सौन्दर्य की और भी स्वाभाविक रूप से ही आकर्षित हो जाता है। वह अपनी अनुसूति को भी सुन्दरतम रूप में अमिथ्यत करना चाहता है। कवि के विषय में तो यह बात और भी अविरल होती है। इसी आधार पर काव्य के दो पक्ष हो जाते हैं -- अनुसूति पक्ष तथा अमिथ्यमित पक्ष। प्रेष्ठ काव्य में इन दोनों पक्षों का उचित समन्वय होता है। अनुसूति पक्ष के अन्तर्गत ही पावों का समावेश किया जाता है।

सूरदास ने मगवान की लाल, शक्ति और सौन्दर्य विभूतियों में ही केवल सौन्दर्य को ही अपनी काव्य रचना का विषय बनाया। उन्होंने लुलुषी की भाँति समस्त जीवन का, विविध अवस्थाओं का और विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण नहीं किया है अपितु ब्रह्म कृष्ण जी की पात्य और भाँवन से संवित

जीवन की कियों ही दितार है । इसी कारण गुरु का जीवन सीमित है । उन्होंने वायु और यौवन से सम्बन्धित वात्सल्य और बृंहार रक्षों को अभिव्यक्त है ही बरफार रखा है । उन्होंने तो अपने आपकी कृष्ण गीणियों, उनकी प्रोढ़ाये, बाल सुलभ वापत्य, नन्द और यशोदा का वात्सल्य, सुरली, रास, यष्टना, वृन्दावन, कालिन्दा तट के निरुज वादि तक ही सीमित रखा और प्रेम की सांकेतिक गति में उनके अतिरिक्त किसी को न जाने दिया । उन्होंने कृष्ण का लोकरज्ज रूप ही लिया लोकराज्ज रूप नहीं । कृष्ण के बरित में जो थोड़ा बहुत लोकरज्ज दितार पड़ता है उसमें गुरु की वृद्धि लीन नहीं हुई है ।^१ किन्तु वात्सल्य और बृंहार के दो-मो का जितना अधिक उत्पादन गुरु ने अपनी बन्द आँखों से किया उतना किसी अन्य कवि ने नहीं । उन दो-मो का कौना कौना वे माँक आद ।^२

नन्द के घर खेलते हुए कृष्ण का एक वि दृष्टय है --

पति यह पाठ रूप सुरारि ।

पाइ पैं जनि रहति उन मुन, न्यावति नन्द नारि ।

कबहुं हरि कीं जाइ अशुरी, बलन सिखावति ग्यारि ।

कबहुं हृदय लाइ दित करि, रैत अचन डारि ।

कबहुं हरि कीं विलै बूमति, कबहुं गावति गारि ।

कबहुं लै पाई दुरावति, ह्या नहीं बनवारि ।

कबहुं अंग पूष मि बनावति, राई लौन उतारि ।

गुरु गुरु नर एवं मोहै, निरति यह बनुषारि ।^३

यही पर कृष्ण बालम्बन है, यशोदा आपस, कृष्ण का अवि, अन्क मुनक,
पैज्जीवजाते हुए बलना, नावना आदि उदीपन है । यशोदा का कृष्ण को छेसना

१- सुरदास (आचार्य सु०७) पृष्ठ १७२

२- सुरदास (आचार्य सु०७) पृष्ठ १६७

३- सुरदास (अमा) पद ७३६

बुझना, आवेग में शिमाना आदि समझाव है और हफ्ते ज्वारी मान । उस प्रकार यहाँ मातृसत्य रस के सभी तत्व उपलब्ध हैं । इसी प्रकार पुष्टवनि आवत कान्ह का एक चित्र देखिये --

किलकत कान्ह पुष्टवनि आवत ।
मनिष्य कनक नंद के आगेन विम्ब पकरिबै आवत ।
क्यहु निरलि हरि जायु जोह कौ कर सौ पकरन चाहत ।
किलकि हंथत राजत द्वे दंतियाँ, पुनि-पुनि तिहि अक्राहत ।
कनक भूमि पर कर-भग लाया, यह उपमा एक रावति ।
करि करि प्रतिमद प्रतिमनि पडुवा, कमल बैठको लावति ।
बलदस पुन निरलि जसोदा, पुनि पुनि नन्द तुलावति ।
जबेरा तब ठै डोफि, सुर के प्रभु कौ भुव प्रिया वति ।^१

कृष्ण जो अपनी दाह को पकड़ना चाहते हैं और किलकारी मार कर द्वे दंतियों दिखाते हुए इस पड़ते हैं । यशोदा उसके बसेकर फूली नहीं समझती और इस शोभा को देखने के लिये कन्द का बार बार तुलाती है । जैसे सुर जड़े होते हुए भी कुम्भ वृष्टा थे, उसी प्रकार कृष्ण होते हुए भी वे माता के हृदय से विभूषित थे । निम्नलिखित पद में माता के हृदय की अमिलाषाओं का कितना स्वभाविक चित्रण किया गया है --

जधुमति मन अमिलाष करै ।
कब मेरीं जात पुष्टवनि रौं कब बरती पगु द्वेक धरै ।
कब तैं दात दूध के देखै, कब लोतरे सुत जवन भरै ।
कब नन्दहि बावा कहि बोलै, कब जन्मी कहि माँहि रहै ।
कब मेरीं जंघन गहि गोहनई जाँह लोह कहि माँहाँ मागरै ।
कब वीं तनक तनक कहु सैं हैं, अपने कर सौं सुरतहि भरै ।
कब होति बात कह्यो माँ वीं, जा जनि ते दुःख दूरि हरै ।^२

१- सुरदास (समा) पद ६६४

२- सुरदास (समा) पद ७१६

माता के हृदय में दुर्वर्त के विफास के प्रति अदम्य उत्प्रेरणा रहती है । यशोदा के मन में यह तीव्र अभिलाषा है कि उसका लाल पुटनी बल उसके पास बार्थ । उसने दूध के दोतरी को देखकर वह प्रसन्न हो गई । वह अपने लाल के मुँह से तौतली माणिक में भी रुचि सुनने को लालायित है । यशोदा उस दिन की बात जोड़ रही है जिस दिन उसका लाल उससे हँस हँस कर बात करेगा । कितना श्यामायिक चित्रण है । कितना मनोवैज्ञानिक ॥

यशोदा की ये सारी अभिलाषायें एक एक करके पूरी होती हैं । कृष्ण पुटनी चढ़ने लगते हैं और यशोदा रस के दानों उसे अपने पास छुआते हैं :

कवहुँ दारि पुटनी लपट, गिरत उठत पुनि पावरी ।

हलै नन्द लुण्ठ लेत है, उल्लै जननि लुण्ठैरी ।

दम्पति सोइ करत जासुस में, श्याम तिलोना कीन्हारी ।^१

माता पिता ने देवारी कृष्ण को तिलोना बना लिया ।

यशोदा कृष्ण को दूध पिलाती है पर कृष्ण जिद करते हैं और दूध नहीं पीते । तब यशोदा उसी मन में सम्मयस्की के प्रति स्पर्श के मात्र को उद्बुद्ध करती है :

कजरी को प्य पियतु लाल, जासी तैरी बेनि बड़े ।

जैसे देखि और कृष्ण वाउक, त्यो बल वैस बड़े ।

यह पुनि के हरि जीवन लगी, ज्याँ त्याँ ल्याँ लड़े ।^२

कृष्ण दूध तो पी जाते हैं पर चुरन्त चाँटी को देखते हैं कि बड़ी या नहीं । चाँटी को ज्याँ का त्याँ पाकर चुरन्त यशोदा से कहते हैं :

१- ब्रजभाषा (भा) पद ७९६

२- वही पद ७९२

मेया कबहिं बड़ेति बाँटी ।

कित्ती बार माँहिं दूध पियत मँ, यह बजहुं है बाँटी ।

तु जाँ कहति बल की बैना ज्यौं हूँ जाँवा माँटी ।

काइत गुह्त नह्यावत जे है, नागिन वा सुई लौटी ।

कान्याँ दूध पियावति पचि-पचि घैत न मासन राँटी ।^१

कृष्ण बड़े चाँते है और बाहर लेने जाने लाते है । माता का दुध वाड़ा रंता लु
होता है । उसे रंता है कि पर से निकलने पर बच्चा कहीं उबर उबर न बचक जाय ।
यह उसे हाँऊ का मय दिखाती है :

लेन पूर जात कत नाह्य ।

जाहु हूँयाँ मे हाऊ जायाँ, तुम नहिं जानत नाह्य ।

एक छरिका अवहौं मणि जायाँ, रावत पैस्याँ लाहि ।

कान तौरि यह लेति उवन के, छरिका जानत जाहि ।^२

कृष्ण बड़े-साँते-है-म जा लेने जाते है और लेल ही लेल मे हा थियाँ है उनका
फगड़ा भी हाँ जाता है, वे हाँमे की ब्यस्था मे कह उठते है --

लेन मे काँ काजौं गुँथौ

हरि हारं जाते श्रीदामा, वरवस ही कत करत रिझौ ।

जाति-पौति उमरें बहु नाही, नाही वसत सुम्हारी ह्यौ ।^३

लेल ही लेल मे वल्लाम ने कृष्ण को मारे लिया हुआ बताया तो उन्होंने माता से
जाकर शिकायत की :

१- हूर तागर (अमा) पद ७६३

२- वही पद ८३८

३- वही पद ८६३

मैया मोहिं दाऊ बहुत लिफायी ।
 मोक्षो करत मोल को लीन्धो, तू बहुतति कब जायौ ।
 गोरि नन्द बसोदा गोरि, तू कत स्यामल गात ।
 बुटकी दे दे ग्वाल न्यावत, हंसत सब सुखात ।^१

साथ के बच्चा को कृष्ण गाय बराने के लिये जाते देखते हैं । उससे कृष्ण को
 गाल स्वभावगुण अनुकरण की प्रवृत्ति जाग उठती है । वे कहते हैं किन्हीं बड़े लो गये
 हैं वरि गौराण के लिये जाना वासते हैं ---

मैया ली गाए बरावन जेही
 तू करि महर नन्द बाबा ली, बड़ौ म्याँ न ठरे ली ।^२

एही बीच कृष्ण को मासन बारी की जादत पहु जाती है । वे गालों के
 साथ ग्वालिनो के पीछे उनके घरों से मासन बुराकर लाते हैं । कभी पकड़े जाते हैं
 तो माति माति के बलाने बनाते हैं । एक दिन जब उनका साथ मटकी में ही था
 तभी ग्वालिन वा पहुँची । तुरन्त देखकर बोले कि गौरस में चौटियो धुष गई थी,
 मे तो केवल उन्हे ही निकाल रहा हूँ । किन्तु ग्वालिन मो स्काय दिन की बात
 लो तो धन करे । प्रतिदिन की बात कही तक सहे । वे उन्हे पकड़ कर यशोदा के
 पास लाती हैं । पर यशोदा का मातृ हृदय उन शिष्यायता को कैसे स्वीकार कर
 सकता है ? उन्होंने तुरन्त उग्रदिया :

मेरो गप्पोल तन्मसो, कहा करि जाने दधि की बारी ।
 साथ न्यावति जायति ग्वालिन, जीम करि किन थारी ।
 कब सीकिं बड़ि मासन जायौ, कब दधि मटकी पोरि ।
 अंगुरी करि कबहुं नहिं बाट्यत, बा ही मरी कमारि ।^३

१- बुरसागर (अना) पद ८३२

२- बही पद १०३०

३- बही पद ६१९

बहै जनि ग्वारिन झूठी बात
 कबहुं नहि मनमोहन मेरी, वेतु बराबत बात ।
 बोलत है बलियो तुतराँरी, बलि बरनन घ सभागत ।
 केले कीं मासन की बारी, कल बारी दधि बात ।
 पेहां लाह तिऊ के धरि काँ, जामन मय झतराति ।
 धुरण दोषि देति गौचिन्द को, गुर लीगनि न जाति । ५

गौचारण में कृष्ण का बड़ा मन जाता है । बलराम उनकी गायें लब्ध
 करते हैं और उन्हें वन के फल तोड़कर दे देते हैं । अतः कृष्ण भी उन्हीं के साथ
 गाय बराने जाने को कहते हैं और ग्वारों के साथ नहीं --

मैया री मोहिं दाऊ टैरत ।
 मोकीं वन फल तोरि दैत है, बापुन गेयन बैरत ।
 और ग्वारो जो कबहु न जैहीं, वे सब मोहि सिपागत ।
 में अपने दाऊ को जैही, वन देखें सुत पावत । २

और कभी उसी बलदाऊ की सलायत भी कितने कष्टों से की जाती है :

मैया बहुत दुराँ बज्जाऊ ।
 कहन लग्यो वन बहोँ तमाखीं सब मोड़ा मिलि जाऊ
 मोहूँ काँ चुचकारि गयोँ लै, जहाँ खन वन फाऊँ ।
 मागि बलोँ, कहि गयोँ उखोने, कारि साहरै हाऊ । ३

कितना स्वामाधिका चित्रण है । पर्वों को यदि किसी व्यक्ति की कोई बात अच्छी
 लग जाती है तो वह उसे देवता की कौटि में पहुँचा देता है और यदि उसकी उसे

- १- बुरसागर (श्रीम) पद ६५२
 २- वही पद १०४२
 ३- वही पद १०६६

पौरों वात दुरी आता है तो अगले ही ५ ण उधे वह रात एक बनाने में भी नहीं
सूझता । बच्चा किसी भी व्यक्तित्व बच्चा अस्तु को सामान्य स्तर पर न रखकर
असामान्य बना देता है । सुरदास जी ने ही यह कामता की कि वे बालकों के दृष्टिकोण
से जगत को देखें । जगत को दृष्टि व्यक्तित्व की दृष्टि से विवृत करना उतना कठिन
नहीं होता जितना कि बच्चों की दृष्टि से । अंग्रेजी के उन्नीसवीं शताब्दी के महान
उपन्यासकार डिफिन्स में भी यह कामता प्रशंसनीय रूप में विद्यमान थी । फिन्स सुर
के समझा उस कला में वे भी नहीं एक पाते । वास्तव का वह जितने विविध चित्र
सुरदास ने उतारे हैं उतने शायद ही किसी अन्य माया के साहित्य में उपलब्ध हों ।
उसका एक एक पद उद्धृत करने योग्य है । पर विस्तार मय से कुछ बोद्धे से उदाहरण
देकर ही संतोष करना पड़ता है ।

प्रकृति के स्वप्नद वातावरण में ही कृष्ण और गोपियों के प्रेम का विकास
हुआ । वचन के सत्ता होती ही किशोरावस्था में प्रिय और प्रिया जन गये । यह
प्रेम अनानक उठ सहे हुए लफान के रूप में नहीं बनता । उसका विकास तो
स्वामात्मिक रूप से लता के विकास की भाँति हुआ है । उस प्रेम को हम जीवन्तस्व
के रूप में पाते हैं, सहसा उठ सहे हुए लफान या मानसिक विप्लव के रूप में नहीं,
जिसमें अनेक प्रकार के प्रतिस्पर्धों और विभिन्न जावाओं का पार करने की लम्बी चोटी
रफा सही होती है ।^१ यह तो उस प्रथम स्वामात्मिक आकर्षण का परिपाक है
जो दो पक्षों को चंचल बनाकर स्वामात्मिक गति से एक दूसरे की ओर चलने के लिये
प्रेरित करता है और स्वयं सघन होता हुआ उन्हें परिवीक्षित कर अन्त में एक दूसरे
से दृढ़ता से साथ जकड़ देता है, जो साथ साथ हँसते, खेलते, उठते बैठते और चलने
फिरने में स्वामात्मिक इसी मजकूर और खेद लाह के साथ परिपुष्ट हुआ है और
विक्षा स्फुरण मय किन्तु निश्चित और निश्चित गति से हुआ है । यह वह
जोम नहीं है जो वाञ्छनी उषा में अगहार्ड लैर चटक्ती हुई कलियों के अंतराल
से उड़ते हुए धीरे का समीरण से परिचय पाकर रस पान लिप्सु मधुपों को एक

के अन्तर दुधरी की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है । गोपियों के प्रेम का ज्वर बरसाती धास फूस नहीं है । उसकी जड़ इतनी गहरी है कि उसे बाह्य किंमन का आन्तरिकता ही नहीं पहुँची, केवल आन्तरिक रूप से जो हरा मरा रहता है ।^१

किशोर कृष्ण के सरोर के प्रत्येक अंग से हवि फूटती देकर गोपियों उनकी ओर आकर्षित क्यों न होती ? कृष्ण जी का रागा से प्रथम परिचय इस प्रकार हुआ :

लैलन हरि निरुसं ब्रजसौरी ।
गये स्याम रत्नित्मया के तट अंग उलसत चंदन की रतौरी ।
आँक ही देखी तह राधा, नैन चित्ताल माउ दिये रोटी ।
नील वसन फारिया हरि पहिरे, बेनी पाठि अलित मककारी ।
संग छरिफिनी बलि अति आभति, दिन थोरो अति हवि लन गौरी ।
सुर स्याम देखत ही रोके नैन नैन मिठि परी झौरी ।^२

कृष्ण जी राधा की ओर आकृष्ण हुए क्योंकि वह भी कम जुन्दर नहीं और उनका वार्तालाप इस प्रकार आरम्भ हुआ :

बुझत स्याम कौन हू गौरी
कहौ रहति, काको तू बेटी, देखी नाहिं कबहुं ब्रज गौरी ।
काहे को हम ब्रज लन आभति, छैलति रहति आपना पौरी ।
सुनत रहति क्षननि नंद उँटा करत रहत मातन दधि बौरी ।
कुँहरो कहा बौरि लम ठे हँ, लैलन चठां संग मिठि बौरी ।
सुरदास प्रभु रत्निक सिरामनि बातनि सुरह राविका भौरी ।^३

१- सुर और उनका साहित्य छा० हरबंस ठा० रमाँ तृतीय संस्करण पृष्ठ ३२७

२- सुरदासर (समा) पद १६१०

३- वही (समा) पद १२६१

प्रथम मिलन में ही छेड़छाड़ आरम्भ हो गई । कृष्ण का सौन्दर्य जैसे ही सामंजस्यता चर्चा का विषय था । फिर उनकी केशरिय बन्धन बपड़ता और घेण्टु बादन निमुणता ने मिलकर तारी गौपिया पर ही जादू कर दिया । गौपिया उनके सौन्दर्य पर क्या कुछ नहीं कर सकती ?

तनी निरति हरि प्रति जौ ।

कोउ निरति नह इन्ह मूली, कोउ चरन जुग रग ।

कोउ निरति छुर रहि थकि कोउ निरति जुग जानू ।

कोउ निरति जुग जब सोमा करति मन अनमाहु ।

कोउ निरति कटि पीत कनी मेखला उचि कारि ।

कोउ निरति छुनामि को खनि हाथी मन मन बारि ।^१

राधा को तो उनके रूप में नित्य स्वीकृति के दर्शन होते हैं :

स्याम को कोह की पहिचानि ।

निमिष निमिष बह रूप न बह छछि रति को जे जेहि जानि ।

इन लोभी, उत रूप परमनिधि कोउ न रहत मिति मानि ।^२

प्रथम परिचय के पश्चात् ही राधा और कृष्ण का साथ साथ लेटना, एक दूसरे के घर जाना जाना और परस्पर कार्य में साथ बंटाना आरम्भ हुआ तथा पनसट प्रस्ताव, यमुना विहार, मरे घर में सकेतो द्वारा वार्तालाप, छिछोला, रास जादि की लोलाये होती रहीं । इन्हीं में निहित होकर यह प्रेम स्वच्छ रमण के साम्राज्य में जा उतरा :

१- गुरुरागर (अष्टा) पद १२५२

२- वही पद २४७०

झलु किशोर झलु नागरिया ।

अपनी झुजा स्याम सुज ऊपर, स्याम सुजा अपने उर धरिया ।

झीड़ा करत त्मात तरुन लट स्यामा स्याम उमंगि रस भरिया ।

यों लपटाए रहे उर उर जाँ, मटकत मनि क्वचन मे जरिया ।

उपमा कहि देखे, को लायक, मन्मथ कोटि चारने करिया ।

सुरदास बलि बलि जौरी पर, नन्द कुंजर वृष मातु-हुंजरिया ।^१

सुरदास जी ने अनेक भावों की कल्पना की है और विविध प्रकार से उनका चित्रण किया है । उनकी उमड़ती हुई भावधारा उदाहरण रचने वाले कवियों के समान गिनारों हुए संचारियों से बंधकर बहने वाली न थी ।^२ उनके वर्णन शास्त्रीय विवेचन को आधार मानकर नहीं किये गये । उन्होंने तो ऐसे चित्रण किये कि उनके आधार मानकर शास्त्रीय सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सकता है ।

किन्तु सुर के शृंगार वर्णन को शृंगार के ही स्तर पर नहीं छोड़ देना चाहिए सुरदास जी पहले मकत थे, बाद में श्रुंख और । उनके राधा और कृष्ण रीतिकान्ति नायिका और नायक नहीं हैं । राधा और कृष्ण तो उनके आराध्य हैं । उन्होंने राधा और कृष्ण के प्रेम का जो चित्रण किया है, वह माधुर्य मयित के आदेश में किया है, शृंगार वर्णन या नायिका प्रेम वर्णन करने के लिये नहीं । फिर भी नायिका प्रेम के उदाहरणों का सुर सागर वैभवान्वित नहीं है । कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :

बलात याचना --

यह धुनि चकित पर ब्रजवाता ।

तुनी सब जमुन मे वृकाति, कहा कहत गोपाता ।

कही सुरगे, कही गग केहरि, एत चराचर सुनिये ।

क्वचन कलस गढ़ाये कब ह्म। देसों यों यत गुनिये ।^३

१- सुरदास (समा) पद २२०६

२- सुरदास (आवाय कुंज) पृष्ठ १६७

३- सुरदास (समा) पद २१६

कृष्ण जो गोपियों के यौवन विकसित अंगों की ओर उपमानों द्वारा श्रेष्ठ करते हैं यह उन्हें अभी तक उस परिवर्तन की मानसिक अनुभूति नहीं हुई है । अतः कृष्ण की उक्तिओं की वे नहीं समझ पाती ।

मदन विदग्धा --

त्व राधा एक मान बतावत
सुख सुखकार सुखि सुनि सखजहिं, बली अलक सुरमखवति ।
एक ली जावति बल लीहैं, ताहीं कहति हुनावति ।
टेरि क्यौं मेरे पर जैहौं, मैं जमुना तैं जावति ।
त्व सुख पाए बल हरि पर कौं हरि प्रियतमहि मनावति ।
सुर ज-प्रभु चितमनन कोक गुम, तातैं हरि हरि व्यावति ।^१

प्रिया विदग्धा --

स्वाम को मान दें गई राधा ।
नारि नगरिनि काहुं लाय्यौं, कोउ नही, कान्ह क्यु करत हैं बहु राधा ।
चिते हरि वदन याकौं हंसत मैं लरको, मैं उतहि गए क्यु हरिब कीन्है ।
मानते मान के ली नाहीं पुनै, ये महा बहुर चतुराई लीन्है ।
बाबुहो रैनि दोउ ली ये मिलौं, हरे कहि परस्पर मनहि जानी ।
सुर ब्रजनागरी नारि नगरिनि ली, किरौ लुरत हैं जगुन पानी ।^२

प्रोषित पत्नी--

विधुरे रा मेरे जाउ स्याती ।
निजहि न जात प्रान ये पायो, काटति नाहिन छाती ।
हौं अपराधनि दही मथति ही, मरि जावन मदमाती ।
जौं हौं जानति हरि कौं बलिवां, मान हौं हि ली जाति ।
दाकत नीर कै मरि कुंदर, क्यु न बौह दिन राती ।^३

१- सुरजागर (अप) पद २६४२
२- वही पद २६४३
३- वही पद २६६६

विप्रलम्ब --

राधा चकृत मई मन्माही ।
जब ही स्याम द्वार ह्वै मोहके, ह्या कार्य बयाँ नहीं ।
बापु न जाइ छली जाँ देखे, मिले न नंद कुमार ।
जागत हो फिर गये स्याम जन कति न्यारी विचार ।
सुनै मदन अरुणो मेँ ही, नौकरी उकाकि निहारुयाँ ।
मोते वृकि परो मेँ जानो, लतै मोहि विवाह्याँ ।
एक अमिमान हृदय जार बैठी, रते पर फहरानी ।
सुरदास प्रभु गर द्वार ह्वै, तब व्याकुल पक्षितानी । १

कलान्तरिता--

सखि मिलि करी कहुँ उपाउ ।
मार मारन बह्याँ विरहिनी, निदरि पायाँ दाउ ।
हुतासन वृज जात उन्नत, बैत्यो हरिदिसि वाउ ।
कृष्ण वर रिपु नन्द बाहन, हरिपि हरिपि त बाउ ।
वार अवकी प्रान प्रीतम विजय उता मिठाउ ।
रति विचारि भू मान कोन्हीं, लौउ वहि किन जाउ ।
सूर सखि सुकाउ रहिहीं, को विरोधनि राउ । २

इसी सम्बन्ध में गोपियाँ ने सुरदास के जम्बूव मे जाँ उचित्यो कहा है वे भी दर्शनीय हैं । वेपे तो प्रीतिका को प्रमी को समी बरहूँ प्यारी जाती है परन्तु जब बह वस्तु प्रिय को उतनी अच्छी लगने लो कि उसे प्रिया से मिलने का समय ही न मिले तो प्रिया उस वस्तु को देखकर बयाँ

१- सुरदासर (समा) पद २६६३

२- वही पद २७०३

घासकछ्पा --

राधा रुवि रुवि रैव छारति ।
 तापर छुन छुयं विछावति, बारम्बार निछारति ।
 बचन गवने हरिहैं हरि मेरे, हरि पि दुःखहि निछारति ।
 बादे न्यहं बचानक ही कहि, छुग पाधे छारति ।
 रहि अमिनाबहि मैं हरि प्रगटे, निरहि मयन छुवानी ।
 बह छु श्री राधा माया को, छु उनहि जिय जानी ।^१

छण्डिता—

प्यारी चितं रल पुन पिय को ।
 अवन अवार, क्कोठनि बदन, लाग्यो काहु तिय को ।
 छुरत उठी दरपन का लोन्है, देखो बदन छुवारी ।
 बपनो सुख उठि प्रात देखि, तब छुम कहूँ छियारी ।
 काजर बदन, क्कोर क्कोठनि, छुवे देखि क्कोठ ।
 छुर स्याम नागरि सुख जावेत, बदन क्कोठो नहि जाहँ ।^२

मानसती (छोटी की शिखा) --

मन मन पछितायाँ रहि जैहैं ।
 छुनि छुवरि बह क्कोठ गर हैं, छुनि न छुछ रहि जैहैं ।
 मानहु मैं मज्जीठ प्रेम रंग, तैसे ही गहि जै हैं ।
 काम छरब, छोरें हरि नम्बर, देखत ही बहि जैहैं ।
 हतै मंद की पात छोटी, कस कोऊ कहि जैहैं ।
 छरत मजन छुनि कूम छुर स्याँ, मदन अगिनि दहि जै हैं ।^३

छुरछापर (छमा) पद २६४३

बही पद ३१००

बही पद ३१६८

उत्कण्ठिता —

छलिता को छुन दै गर स्याम ।

आसु बहो रैनि तिलोरे, प्रान पियारा हाँ तुम वाम ।

अह कहिक अनतहि पग पाटे, बहु नायक के मेद अपार ।

साँफ सप्य आवन कहि बार, लोह बहुत करि नंदकुमार ।

बह बेठी हरि मारग जीवति, इक एक पल बीतत एक जाम ।

सुर स्याम आवन की जासा, सैन स्मरति व्याकुल काम ।^१

ईश्यां न करे । प्रिय को पुस्तको से अधिक चिपटे हुए देखकर भी कई बार प्रिय कह देता है — हमसे तो ये पुस्तको भी अधिक माग्यशाली हैं जो इन्हें आपका इतना अधिक साहाय्य प्राप्त होता है । गौश्यां भी देखता है कि सुरली को कृष्ण जी के अवरोध पर बैठने का सामान्य प्राप्त होता है और कृष्ण जी सुरली से इतना अधिक प्रेम करते हैं कि कई बार साँफियों को और उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करते हैं । अतः वे सुरली को सुराने की सचिती है :

छी रा सुरली लोचै जोरि ।

बिन गुमाउ कोन्है अपने बस प्रीति सबन की लोरि ।

क्यहुँ कर, क्यहुँ अवरनि, कटि क्यहुँ लोषति जोरि ।

ना जानौ कहु मैलि मोहिनी, राखे बग की मोरि ।

सुरदास प्रभु को मन सजनी, वाध्याँ राग की लोरि ।^२

को भी क्या ? उनके प्रेम का आलम्बन कोई सामान्य लोचन से सुखत पुरुष तो है नहीं । उसका तो प्रत्येक क्षण इतना सुन्दर है कि उसके लिये कितना भी सौख्य उपयुक्त उपमान ही नहीं मिलते । नेत्रों को ही लोचन —

१- सुरसागर (समा) पद ३०६६

२- वही पद १२७१

देखि हरि नू के नैनन की धवि ।

एहैं जानि दुःख मानि नू अनुदिन, मानहुं अम्बुज कैत है रवि ।

लगेरीह अति वृथा बपल मये, गए वन मृग जलमीन रहै दवि ।

तखं जानि तनु तजत, जखहिं कहु पटतर देवै कहत कवहुं कवि ।

हनुं येरं, पवि छरि रही छौं, बाधै नहीं कहत कहु बह कवि ।^१

इसै नेत्रों का भार क्या कभी लाजा जा सकता है , किन्तु गोपियों दाँप भी
फिरों दे ? दाँप भी उनहीं के नेत्रों का है --

जाकी बैझा जानि परो री ।

कोऊ कोटि करै नहिं छूटै जो जिहि वरनि वरो री ।

पारै ही तै हनै ये ऊं, बबल बपल बनैरे ।

वरजत हो वरजत उठि वीरै मये स्याम के वीरै ।

ये उपजे बाँधै नान के, छपट मये बजाइ ।

धूर कहा तिनकी संगति, जै रहै पराहं जाइ ।^२

वियोगे वर्णन

सुरदास जी ने दो प्रकार के वियोगे का वर्णन किया है -- वात्सल्य वियोगे
और शृंगार वियोगे ।

वात्सल्य वियोगे --

वियोगे वर्णन का आरम्भ सुरदास जी ने वात्सल्य वियोगे से प्रारम्भ किया
है । कृष्ण जी ने अपना लीलावाँ से जन मानस को ही नहीं प्रकृति के की की को
भी सुवर्णित कर दिया था । यशोदा, नंद, ग्वाल हंस ग्वालिन तो कृष्ण की लीलावाँ
को देखकर हृत्-सागर में निमग्न होते ही हैं गायो, लतावाँ हंस मृत्ता ों के मनो को

१- सुरदास (समा) पद १८२३

२- वही पद ३०९४

भी वे बाहुला दित करते हैं । किन्तु ब्रज भूमि उस कुल एवं बाहुलाव को बहुत अधिक दिन तक नहीं भोग पाती । अकूर जो कृष्ण जो को बुलाने जाते हैं और उनकी जाने की बात सोचकर सब नर नारी व्याकुल हो जाते हैं :

देति अकूर नर नारि विच्छे ।

पदुर्मजन जप हेतु बाले झूठे, बारि छर नहीं सब कहि संतोष ।

मस्ति व्याकुल दारि पाह गहि छे परी, नर उपनदे की जाहू लै ।

कहति ब्रजनारि मैं नि नार डारि कै, जहनि की काज मथुरा कहा है ?

धूर नृप धूर अकूर धूर मय, पदुष देवन कल्यां क्मटी मरा है ।^१

कृष्ण जो के जाने की बात सुनते ही देशवा व्याकुल हो जाते हैं । वह तो अपने छाल को एक क्षण के लिये भी अपनी जाति से अफिल नहीं होने देना चाहती । उसे चाहें प्राण ही क्यों न देने पड़े पर वह अपनी जाति के तारे कृष्ण को मथुरा भेजने को प्रसन्न नहीं है :

मेरीं माई निधनी की बन मायी ।

बारम्बार निरसि कुल मानति, तबति नहीं पल बायी ।

धितु धितु पारसति अकम लावति, प्रेम प्रकृत हूँ बायी ।

करिहँ कहा अकूर स्माये, देहँ प्रान अबायी ।

धूर स्यामवन हो नहिं पछाये अवहिं कस किन बायी ।^२

पुत्र के प्रति मात के हृदय में कितनी ममता है । उस गम्भीर धारा में सारे स्वार्थ डूब जाते हैं । माता अपना सर्वस्व त्याग करके भी अपने पुत्र को अपनी जाति से अफिल नहीं करना चाहती । ज्ञात में माता के प्रेम की समानता और किसी का प्रेम नहीं कर सकती । माता स्वयं को मिटा कर भी पुत्र के कल्याण की कामना करती है । यह मावना फिर स्वर्गीय मावना से कम पावन है ।

१- शूरसागर (समा) पद ३५८५

२- वही पद ३५६९

जब यशोदा को जाता है कि कृष्ण जो ब्रह्मर जी के साथ जायेंगे हा तो उसके मुख से कितने मर्मस्पर्शी शब्द निकलते हैं --

जलोदा बार बार यों माध्व

हे कोउ ब्रज में रहित हमारी, बल्लभ गुपाल हि राहै ।^१

तथा

जिहि सुख तात कहत ब्रजपति सों, मोहि कहत है माध्व ।

तेहि सुख चलन सुनत जीवति सों, विवि सों कहा बसाव ।

को कर कमल मथानी वरि है, को माखन अरि लैहै ।

वरापति मेधे बहुनि ब्रज ऊपर, सों गिरि बल लैहै ।^२

पर जब स्वयं निवनी को वन ही उसे ससार को निःसारता का उपदेश देने जाता है, तब तो उसका हृदय ही टूट जाता है :

यह धुनि गिरि वरनि मुक्ति पाता ।

कहा ब्रह्मर ठाँही लार्ह, जिये जात दोउ प्राता ।

विरव सप्य को हारत लकुटिया, पाप पुन्य हर नाही ।

कहु नफा है तुमको यामे, सोचो धौ मन माही ।

नाम सुनत ब्रह्मर तुम्हारी, क्रूर मर सों जाह ।

सूर नन्द वानी अति दयाकुल होहैहि रैन विहाई ।^३

नंद बाहे रेशी बिह्वलतापूर्ण उचित्यो न कह रहे सों । वृद्धि और तर्क उनके मामों को अबाध रूप से उबल पहुँचने से रोकते हैं । वे हृदय पर पत्थर रखकर यशोदा को समझाते हुए कहते हैं --

मराँसों काँह को है मोहि ।

सुनहिं जलोदा कंस नृपति मय तू जनि व्याकुल होहि ।^४

१- ब्रजसागर (समा) पद ३५६२

२- वही पद ३५६५

३- वही पद ३६६८

४- वही पद ३५६६

अक्षर जो रथ पर चढ़ते हैं तब तो यह दशा आ पहुँचती है जब हृदय इतना मर जाता है कि बाणी माया को अभिव्यक्त करने में असमर्थ होकर मूक हो जाती है, कण्ठ गद्गद् हो जाता है और टूटे फूटे शब्द हो मुख से निकल पाते हैं। सुरदास जी ने इस वरम अस्मृति का विवर्णन इस प्रीति किया है --

जब रथ अक्षर चढ़े

तब रसना हरि नाम मापि कै, लोचन नीर बड़े ।

महरि पुत्र कहि छोर लायौ, तरु ज्यौ वरनि छुटाइ ।

देखति नारि चित्र सी ठाढ़ी, चित मे कुँवर कन्हाई ।^१

जब अक्षर जो और कृष्ण जी को विदा देने नन्द जी भी जाते हैं, तब तभी तो यह भी वाशा है कि कृष्ण जी भी नन्द जी के साथ लौट आयेंगे। किन्तु जब कृष्ण जी नन्द जी से भी विदा लेकर चले जाते हैं और नन्द जी असह्य व्यथा के मार को लिये अकेले आते दीख पड़ते हैं तो यशोदा वैदना के आविर्भाव के कारण नन्द जी को भी सुरा मला कहती है और मूक जाता है कि स्वयं नन्द भी तो विश्वशङ्के और व्यथा से इतने ही पीड़ित हैं जितनी यशोदा जी :

जशोदा कान्ह कान्ह कै कुँवर

फूटि न गई कुँवारी चारौ, कैसै मारग सुकै ।

इक तीं जरी जात बिनु देखै, अब तुम हीन्हौं पूं कि ।

यह कहित्या मेरे कान्ह कुँवरि बिनु, फाटि न मई हँ टूकि ।

बिहूँ तुम बिहूँ मै चरन अहाँ पति, अब बोलैत उठि पायै ।

सुर स्याम बिहरन की हम पे, देन बयाह जाए ।^२

इन शब्दों में पुत्र विरोगिनी माता के हृदय की टहरी व्यथा को अभिव्यक्ति मिली है। इन कटु वचनों को पत्नी की वृष्टता नहीं समझ लेना चाहिए। किन्तु यशोदा को भी यह उल्लासना सुनना पड़ता है --

१- सुर सागर (समा) पद ३६१०

२- घड़ी पद ३७५२

तब तू मारिखों करति ।

रिखनि बार्ग कहि जू आवति, अब छै माहुँ परति ।

राँव छै कर दावति छै, किरति वर वर परति ।^१

यशोदा को यह चिन्ता रहती है कि कृष्ण राजा भले ही हो गये हैं किन्तु उन्हें बेला मौजिन कौन दे सकता है बेला वह स्वयं देती थी । उसके पुत्र को किस प्रकार का मौजन व्यक्ति प्रिय है, किस प्रकार का नहीं -- यह बात वही कौन जानता होगा ?

इषपि मन समुत्पाद्यत लोम

सुल हाँत न्यनीत देखि मीरे मोहन के सुख जागे ।

प्राक्काठ उठि पासन राँटी को बिनु मागे देह ।

को मीरे वा कान्ह छेँर को बिनु बिनु अंकम छेँह ।^२

प्रेम में आत्म विस्मृति की भावना गहरी हो जाती है और मिलन की उत्कृष्टता का उसके समस्त मायो को तिराभूत कर देता है । तभी तो यशोदा देवकी और बलुदेव की वा बनकर मथुरा में रहना चाहती है जिससे वह अपने लाल को अपना बाँसो से देखती रह सके --

हाँ तो मारें मथुरा ही मैं बेहो ।

दासी छै बलुदेव राउ की, दरसन देखत रैछ ।

मोहि देखि के लोम हँसो, वरु किन कान्ह हँसे ।

छेर अहीछ जाउ दहो, जनि न्हातहु वर रनसे ।^३

पुत्र वियोग से व्यथित माता के हृदय से निकली ये उभित्तियाँ कितनी मनोवेज्ञा निष्ठ और स्वाभाविक हैं ।

१- सुरसगर (सप्त) पद ३७५६

२- वही पद ३७६१

३- वही पद ३७८८

विप्रलम्भः

प्रेम का निखार वियोग के काल में जाकर होता है। यही काल प्रेम की कसौटी होता है। अयोग काल में प्रेम रखना बड़ा सरल है किन्तु वियोग वह अग्नि है जो प्रेम स्वर्ण की परीक्षा करके निर्णय देता है कि प्रेम वास्तविक था अथवा स्वार्थमूर्ति का साधनमात्र। साहित्यिकों ने भी वियोग शृंगार को अयोग की अपेक्षा अधिक उच्च स्थान दिया है क्योंकि जहाँ अयोग में प्रिय सा निश्चय से प्राप्त हुए हृदय की अनेक सात्विक वृत्तियों को तिराहित किये रहता है, वहाँ वियोग उन्हें उद्बुद्ध कर पावों के प्रसार के लिये समस्त विश्व का चित्र खोल देता है।^१ अयोग की अवस्था में तो प्रेमी एवं प्रेमिका एकान्त एकान्त चाहते हैं क्योंकि प्रेम गली अति सीकरी या में जाने न समर्थ। किन्तु वियोग काल में उनकी जात्मा का प्रसार हो जाता है और वे व्यक्तित्वात् स्थिति को छुटकर सामान्य मान भूमि पर आ जाते हैं। वह अन्य व्यक्तियों की ही नहीं पशु पक्षियों एवं जड़ पदार्थों से भी सहाभुमति की आकांक्षा करते हैं। श्री राम ने भी लग लूँ तथा मधुकर श्रेणी से भी सीता के विषय में पूछताछ की थी, यह ऐसी सात्विक अवस्था है जिसमें मानव हृदय से दुराग्र का आवरण हट जाता है और उसका हृदय अपने स्वाम्याधिक निर्मल रूप में उक्तियों के साथ लिपटा बल जाता है। पशु पक्षियों और लता पादपों के साथ ही सम्बन्ध जाँहने की प्रेरणा देने वाला यह मान कथ है।

संसार के लगभग सभी महान कवियों ने विरह वर्णन को अपना प्रिय विषय बनाया है। उन सभी के हृदय में एक विरहणी बैठी हुई है जो मन्त्रमूर्ति के काव्य में सीता बनकर, कालिदास के काव्य में शकुन्तला बनकर, और मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में उर्मिला बनकर रौंई है। मूर के हृदय में विराजमान विरहणी उनके काव्य में राधा बनकर रौंई है। सुरदास जी ने जैव अयोग शृंगार का विशद वर्णन किया है

१- डा० हरमेश ठा० शर्मा और उनका साहित्य पृष्ठ ३३६ (तृतीय संस्करण)

वैसा ही विरह का मी । कृष्ण जो के चले जाने पर गोपियों को विरह की अग्नि में जलना पड़ता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गोपियों के विरह के विषय में लिखा है कि इसमें परिस्थिति की गम्भीरता नहीं है । उन्होंने लिखा है —

परिस्थिति की गम्भीरता के अभाव से गोपियों के वियोग में भी वह गम्भीरता नहीं दिखाई पड़ती जो सीता के वियोग में है । उनका वियोग सीता बैठे का काम सा दिखाई पड़ता है । सीता अपने प्रिय से विमुख होकर कई सौ कोस दूर दूसरे द्वीप में राजा लोके के बीच पड़ी हुई थीं । गोपियों के गोपाल दो चार कोस के एक नगर में राज कुल में रहे थे । सुर का वियोग वर्णन वियोग वर्णन के लिये ही है, परिस्थिति के अनुसार ही नहीं । कृष्ण गोपियों के साथ शीघ्र करते करते कुंज या मण्डप में जा क्षिप्त हैं, या यों कहिए कि थोड़ी देर के लिये अन्तर्धान हो जाते हैं । वस गोपियों मूर्च्छित होकर गिर पड़ती हैं ।^१

इस पर टिप्पणी करते हुए डा० हरबेश लाल शर्मा लिखते हैं --

आचार्य शुक्ल जी के इस कथन की आलोचना हमारा ध्येय नहीं : हमारा तो यही निवेदन है कि वियोग— वियोग ही है, चाहे वह दूरी निकल हो या अन्तः, प्रियतम कहीं समीप ही दिखा हो या दूर प्रेमाप्लावित हृदय में विरह के लुप्तान से विदारण उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है, विरह की गम्भीरता की माप क्या प्रिय के निवास की दूरी ही पर आधारित है ? हमारी समझ में तो प्रिय के चले जाने पर यह निश्चय कि न जाने अब कभी मिलन होगा या नहीं, विरह की पूर्ण अनुभूति के लिये पर्याप्त है, उसमें काल या देश का हस्तक्षेप हमें उपयुक्त नहीं ज्ञेयता । रास की चरमावस्था और सयोग की मधुरतम अनुभूति में वियोग -- काण मर के लिये ही सही क्या अवश्य नहीं होगा ?

हमारा विमल मत है कि प्रिय से अलग होना निश्चित रूप से वियोग का कारण है, प्रिय चाहे दो बार कोस दूर जाकर रहे या एक ही गांध में रहता हुआ किन्हीं कारणों से प्रिया से न मिल सके। विरह की गम्भीरता की माप प्रिय के निवास की दूरी पर आधारित निश्चित रूप से आधारित नहीं है। किन्तु विरह की गम्भीरता की माप परिस्थिति की गम्भीरता तब निश्चित रूप से है ही। क्या गौपियों के विरह तथा सीता के विरह में केवल प्रिय के निवास स्थान की दूरी का ही अन्तर है, इसके अतिरिक्त कोई अन्तर नहीं? हमारी समझ में सीता का विरह वस्त्र जिन् परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुआ है वे निश्चित रूप से गौपियों के विरह की उत्पादक परिस्थितियों से कुछ गुनी अधिक गम्भीर हैं। अतः कुछ जी का यह मत स्वीकार कर लेने में हमें कोई संकोच नहीं करना चाहिये कि गौपियों के विरह में परिस्थिति की वह गम्भीरता नहीं है जो सीता के वियोग में है। पार्श्ववात्य समीक्षा क लानेवाहनस ने काव्य में जीवादात्य के समावेशों लिये जिन बातों को आवश्यक माना था उनमें प्रबल एवं सम्यक् मायावेश भी एक था। सम्यक् मायावेश को चित्रण से उनका तात्पर्य था कि जितनी गम्भीर परिस्थिति हो उतनी ही गम्भीर मायावेशों का चित्रण किया जाय।

कृष्ण जी के चलते समय ही गौपियों को वियोग की बहुत आकर जकड़ लेती है :

चलत जा नि चित्तवति ब्रज सुवती मानहु लखीं चितौ ।
जहाँ तु तहाँ एक टकर रहि गई, फिरति न लोचन फेरौ ।
विषरि गई गति मोति देखी, कुनति न प्रवन्न टेरौ ।
मिछि तु गई मानौ पै पाना, निवारति नहीं निवोरौ ।^१

उन्हीं हृदय में जैसे ही यह स्याल जाता है अप वेति तें रा स्याम काँ मिलनौ
बड़ी दूरि तमी बँ टोस से दिल्दिला जाती है :-

बनल ते बिरह बगिनी बति ताती ।

मायम चलन कहत मनुवन को, पुनै तपति बति छाती ।

न्याहहि नागरि नारि बिरह बस, जरति दिया ज्या बाती ।

जै जरि मरी प्रागट पावक परि, ते तिय अधिक सुहाती ।^१

कृष्ण जो को विदा देकर गोपियो लोट कर घर को चली तो उनके पैरों की उच्छा ही बागें चलने की नहीं हो रही थी :

पाछे ही विलम्बत मेरे लोचन, बागें परत न पाथे ।

मन छे चली मावुरी सूरति, कहां करां ब्रज जाय ।

मवन न मई पलाका बम्बर, मई न रथ के लग ।

धुरि न मई चरन छपटाती, जाती उहे लीं छी ।

ठाढ़ी कहा करां मेरी लज्जा, जिहिं धियि मिलहिं गुपात ।

सुरदास प्रभु पैठे मनुपुरी, सूर फि परो ब्रजवात ।

बिरह में गोपियों की दशा दयनीय हो गई है, वे कृष्ण जी की क्रीड़ाओं को याद करता रहती हैं । वैसे तो ब्रज में सारी चीजें व्याप्त हैं किन्तु ब्रजपति के बसान में सब कुछ सुना जाता है :

विवारत ही लागे दिन जान ।

तुम बिनु नन्द सुवन रहिं गोकुल, निशी मई कल्प समान ।

पुरति छन्द, कल धुनि को गुंजरि, सुनियत नाहीं कान ।

चलत न रथ गहि रही स्याम, को अब लागी पक्षतान ।

है कोउ जाय कहै माथां सी, कीरज परहिं न प्रान ।

सूर प्रभु तुम्हारे दरस बिनु, पुरत नाहिं बसैमान ।^२

कृष्ण जी पर गोपियां अपना तन मन याँवन सब कुछ बार चुकी हैं । पर अब वे शृंगार फरकें ही क्या करें ? शृंगार प्रिय को लुमाने के लिये ही तो किया जाता है :

सुत तमारे भैननि नहिं जेन, तिरक ललाट न दीन ।
 सुचिल वस्त्र, जखीं अति भली, दिखियत हैं तन शीन ।
 प्रेम हुणा तीनों जन जानै, विरही, चातक, मीन ।
 सुरदास पीतति तु हृदय मे, जिन दिय परबस गीन ।^१

ये प्रकृति के साथ भी सामंजस्य स्थापित करती है । जुमना भी उन्हें कृष्ण
 जी के विरह में ही काली पड़ी हुई जीत पहुँची है । मानस हृदय के भावों का
 प्रकृति के साथ भी भारतीय कवियों ने सामंजस्य स्थापित किया है । गौपियाँ पथिक
 से कहती है :

देसियत काळिन्दा अति कारी ।
 अहाँ पथिक कह्यो उन हरि शो, मई विरह सुर जारी ।
 गिर प्रजक तै गिरति वरनि पथि तरंग तरफा जन मारी ।
 तट बारु उपचार बुर जलपूर प्रसूद प्रनारी ।
 निरि दिन चकई पियजु रटति है, मई मनीं अनुहारो ।
 सुरदास प्रभु जो जमुनागति, शो गति मई उमारी ।^२

कृष्ण जी का सुरली, जिससे वे कभी सीतिया हाथ रसती थीं, अब उन्हें याद
 आती है । कृष्ण जी के चले जाने पर वे पश्चात् सुरली कभी बड़ी ही नहीं । अब
 जगह सुनापन हो गया :

माईं बहुरि न बाजी बने ।
 को जेहें मेरे तटिक हुवावन, गारनि रहो फि री रेन ।
 सुनीं पर सुनीं छु से ज्या, बली करत छु सेन ।
 सुने न्वाल वाल अब गोपी, नहीं कहें उन चैन ।^३

किन्तु अब कुछ सुना हाँते छु भी मधुवन ज्यों का त्यों हरा मरा है । गौपियाँ
 को यह विषमता बहुत लुल्टी है और वे उसे कोसते छु कहती है :

१- सुरदास (समा) पद ३८८५
 २- बली पद ३८०६
 ३- बली पद ३८६८

मधुवन तुम कत रहत खरे ?
 विरह विमोह स्याम कुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे ?
 मोहन बंसु बजावत तब तट, साखा टेकि खरे ।
 मोहि थावर बस जोम, मुनि जनभ्यान टरे ।
 वह चित्तनि तु मन न भरत ह, फिरि फिरि पुहुप वरे ।
 सुरदास प्रभु विरह ब्रजान, खरखि लीं न जरे ।^१

मधुवन में ही तो कृष्ण जी की वंशी की मधुर ध्वनि गूँजी थी । वहाँ पर तो गोपियों के साथ कृष्ण जी ने रास रचाये थे । पर यह स्थान का साथी विरह काल में गोपियों का साथी न बना । कहा जाता है कि विपत्तियों में साथ रहने वाला व्यक्ति ही सच्चा साथी है । ऐसा साथी तो गोपियों को पपीहा ही मिला है । तभी तो गोपियों उसके प्रति श्रुमकामनाये प्रकट करती हैं :-

बहुत दिन जीमई पपिहा प्यारों ।
 वासर रैन नाम लै बाँहत, मयाँ विरह जुट कारों ।
 नाम दुखित पर दुखित जानि जिय, बातक नाम तुम्हारों ।
 सुरदास प्रभु स्वाति बूँद लगि, तय्यों सिंधु करि सारों ।^२

यह सदा भी पी सुकारने वाला पपीहा ही उनके समान सुखी है । समान दुख वालों में पारस्परिक समवेदना ही हो जाती है । परन्तु वैचारे पपीहा को गोपियों का कोपमाजन भी बनना पड़ता है :

(हाँ तो मोहन के) विरह जरी, रे तू कत जारत ।
 रे पापी तू मोहि पपीहा, मिय मिय करि अवराति पुकारत ।
 करी न कहु करतूति सुमट की, मुठि मुक्त बबलनि सर मारत ।
 रे छठ तू नु सतावति जौरनि, जानत नहिँ बमने जिय बारत ।
 सब जग सुखी, दुखी तू जठ बिनु, तऊ न डर की व्यथा विचारत ।
 सुर स्याम बिनु ब्रज पर बाँहत, काहें बगिछोँ जनम विचारत ।

रिति वाच्यार्थों ने विरह की जिन ग्यारह अवस्थाओं का उल्लेख किया है उन सबके उदाहरण भी गोपियों के इस विरह वर्णन में प्राप्त हो जाते हैं। वैसे तो विरह की तीव्रता को चित्रित करने के लिये शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह में आवश्यक नहीं मानता। मैं यह भी नहीं मानता कि जिस विरह वर्णन में सारे शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह कर दिया गया हो वह वर्णन श्रेष्ठ है और जिस वर्णन में शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह नहीं किया गया वह अश्रेष्ठ है। विरह में दय हृदय की अनुभूतियों शास्त्रीय लक्षणों के बंधन प्रकट नहीं होतीं और न कोई विरहणी शास्त्रीय लक्षणों को याद रखकर अपने दुःख को अभिव्यक्त करती है। लालेबाहनस नामक पारश्वत्य समीक्षक ने ठीक ही कहा है कि कम प्रतिभाशाली कवि ही नियमों के बंधन में बंध कर रहते हैं। फिर भी शास्त्रीय लक्षणों के निर्वाह को ही श्रेष्ठ साहित्य को कर्षाटी मानने वाले समीक्षकों को भी मुरवाह जो ने निराश नहीं किया है। विरह की ये ग्यारह शास्त्रीय अवस्थायें निम्नलिखित हैं :-

- १- वमिलाषा
- २- किन्ता,
- ३- स्मरण
- ४- गुण कथन
- ५- उद्गेष
- ६- प्रलाप
- ७- उन्माद
- ८- व्याधि
- ९- जड़ता
- १०- मूर्च्छा और
- ११- मरण।

इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं :

बमिलापा

रहे समय जो हरि जु बावहि ।

निरलि निरलि बहइ ५ मनोहर, नैन बहुत सुख पावहि ।

कवहुँक सो सु खिलि मिलि खेलहि, कवहुँक सुखे सुलावहि ।

बिछुरे प्रान रहत नहिं बट मे, सो पुनि जानि जियावहि ।

जवकै चलत जानि मूरज प्रभु, सब पहिलै उठि बावहि ।^१

विन्ता

ऊधो वीरियाँ जति अनुरागी ।

एक टक मग जावति ब० रावति, मुळेहुँ पलक न लागी ।

बिनु मायस मायस करि राखी, देखत ही विदमान ।

जब भी कहा विद्या वास्त ही, धोड़ों निरगुन ज्ञान ।^२

स्मृति

मेरे मन इतनी सुख रही ।

वे बतियाँ इतियाँ लिलि राखी, वे नन्दताँ कहो ।^३

गुण कथन

एक धौस कुंजनि मे माई ।

नाना कुसुम लेइ अपने का, दिये मोहि सो धुरत न जाई ।

इतने मे बन गरजि वृष्टि करी, तनुमीज्याँ मो मंजुड़ाई ।

कंपत देखि उड़ाइ पीत पट छै क० नामय कंठ लाई ।

कह बह प्रीति रीति मोहन की, कह अब धौ रती निहुराई ।

अब बलवीर सुर प्रभु सखि री, मधु बन बसि सब प्रीति मुलाई ।^४

-
- | | |
|-----------------|---------|
| १- सुरागर (समा) | पद ४०० |
| २- वही | पद ४१६१ |
| ३- वही | पद ४०१३ |
| ४- वही | पद ४००२ |

उद्देश

कुम्हारों की प्रति किन्हीं तरवारों ।
 घुष्टि बहार धरि हती तु पहिले, वायल सब ब्रजना रि ।
 गिरी सुहार सेत कृन्वावन, रन मानी नहिं छारि ।
 दिखल विदल सुमारति छितु छितु बदन सुभा निवि वारि ।^१

प्रताप

सहि मिलि करै कसुका उपाउ ।
 मार मारन बह्यौ विरहिनी, निरि पायौ दाउ ।
 हुतासन पुन जात उन्नत, चर्या हरि दिख वाउ ।^२

व्याधि

विनु गुपाउ वैरिनि मई सुजै ।
 तव ते छता लाति तन सीतल, जब मई विषम ज्वाल की पुजै ।
 वृथा बहति जमुना लग चारैत, वृथा जल फुलनि अति गुजै ।
 खवन, पान, वनछार, सजीवन, दक्खित किरनि मातु मई सुजै ।^३

उन्माद

ऊँचौ इतनी कस्यौ जाय ।
 अति कृष गात पई ये लुम विनु, परम दुसारी गाइ ।
 जलधरु वरप ति दाँउ जसियाँ छुकि छिन्हे नाउ ।
 जहाँ जहाँ गौदोस्त कोन्हीं, सुपति सौं ठाऊँ ।^४

बहुता

देती मैं जीवन सुखत अचेत ।
 मनहुं कपल सहि जास ईश को, सुखता गनि गनि देत ।
 कहूँ कर्मन कहूँ गिरी मुद्रिका, कहूँ टास कहूँ नैत ।
 बँतति नहीं चित्र की पुतरी, उलुगाईं सीं बँत ।^५

१- सुरजगरी (अमा) पद ४२८०
 २- वैली पद २७७३
 ४- वैली पद ४६८८

३- वैली पद ४६८६
 ५- वैली पद ४७३३

सूच्यार्थ

तब तैं इन खलिनि लु पायी ।
जब तैं हरि लेश लुधारी, कुत ताधरौ बायी ।
फुले ब्याल हुरे तैं फाटे, पवन पेट मरि साथी ।^१

भरण

बलि मलीन वृष-मातु कुमारी ।
हरि जम जल मो ज्यौ उर वषल, तिहि लाल न सुवावति धारी ।
जब सुख रहित बनत नहिं चित्तति, ज्यौ गय हारै यकित ध्वारी ।
दूटे विकुर कदन कुचिलाने, ज्यौ नलिना छिन्न को मारी ।
हरि लेश पुनि लख मृकमरु, एक विरहिनि दूजे बलिजारी ।^२

तभी तों आचार्यरामचन्द्र शुक्ल ने कहा है, धियोग की जितनी कन्तव्यताये
हो सकती हैं, जितने लोगो से उन दशावतों का साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यतः
हो सकता है, वे सब उससे भीतर माँझ है ।^३

इसी विरह वर्णन में प्रमरणीत नामक प्रका जाता है जिसमें एक और तो
सुरुष की वैधपाई के विरह नारी जाति की शिकायत सुद बह की गई है और
साथ ही कवित्व और मयित का सुन्दर समन्वय किया गया है । आचार्य हरमश
ठाठ शर्मा ने उ१ प्रका में कहा है --

प्रमरणीत गुर की सर्वश्रेष्ठ रचना है , इसमें एक और विप्रलम्भ शृंगार की
उद्दाम सरिता का अपाव प्रवाह ब्रजनायिकों के नयनाम्बु से पुरित होकर उमड़ता
हुआ पाठक को मनोमृमि को आप्लावित करता चलता है और दूसरी ओर शुण
मयित का निर्मल ऊँची नीची और समस्त माव मृमि में योग मार्ग की कठोर

१- सुरसागर (समा) पद ४७५६
२- वही पद ४६६४
३- सुरदास (वा० शुक्ल) पृष्ठ १८७

प्रस्तर रीछावों को लोढ़ता और निर्गुण उपासना के पास फूस को आत्मसात करता हुआ प्रवाहित होता है । गौपियों के मजित मान एवं विश्वास से पुष्ट शरस तलों की कफका में उल्लस की निर्गुण सावना का शुष्क मुस कहीं का कहीं उड़ गया । यद्यपि प्रमरगीत का दार्शनिक पहलू भी है । विरह विचुरा गौपियों परमात्मा से वियुक्त आत्मा की प्रतीक कही जा सकती है, तथापि प्रेम का लौकिक पक्ष ही उसमें अधिक उभरा हुआ प्रतीत होता है । शूर की गौपियों मिलन ही नहीं, उसका उपमगमय उपयोग भी चाहती है ।^१

कृष्ण जो के सखा उल्लस जो निर्गुणों के मजित थे तथा योग का उपदेश दिया करते थे । उनको सबक सिखाने के लिये कृष्ण जो ने साँचा:

प्रेम मज्जन नहि नैक याकें जाय क्या समुझाय ।

शूरप्रभु तब यह बानी ब्रजहु देहु पठाय ॥

उल्लस जो ब्रज पहुँचते हैं । गौपियों उन्हें कृष्ण जो का सुन्दर सुनने दाँड़ी आती है । उल्लस जो उनको उपदेश देना आरम्भ करते हैं :

कह्याँ तुमको ब्रज ध्यावन, थोँहि विषय विकार ।

शूर पातो दईं छिछि माँहि, पढ़ाँ गौप कुमारि ।^२

गौपियों ने यह स्वप्न में भी नहीं साँचा था कि उनके प्रिय उन्देश प्रकार का सुदेश मैजो तनी --

इहि अन्तर मसुकर हक जायाँ ।

निज स्वभाव अनुसार निकट ह्वै सुन्दर सुव सुनायाँ ।

पुछन लागिं ताहि गौपिका कुविजा तेहि पठायीं ।

को पाँ शूर स्याम सुन्दर को हमे सुदेशों लायाँ ।^३

१- शूर और उनका साहित्य (डा० हरलाल जाल शर्मा) तृतीयसंस्करण पृष्ठ ३६५-३६६

२- शूरसागर (सप्त) पद ४१०३

३- वही पद ४११५

और गौपियों उस मनुष्य को ही सम्बोधित करके उद्धव को तरो तरो सुनाना आरम्भ कर देती है । वे उद्धव को बहुत कम पालने का अवसर देती हैं और उनके ताबड़ तौड़ प्रश्न करती चली जाती हैं । वे अत्यन्त ब्रामीणा हैं । वे उद्धव पर व्यथित कसती हैं, कभी मत्वाला कहती हैं कभी कपटी । वे समझती हैं कृष्ण जो ने उद्धव को सुख बनाने के लिये ब्रज में दिया है । तथा तो वे प्रवृत्ति हैं :

सुखं स्याम जय तुमहिं पठायें तव मेढु सुखाने ।

कभी वे कहती हैं कि उद्धव तो गलती से ब्रज में आ गये हैं, कृष्ण जो ने तो उन्हें कहीं और भेजा होगा --

स्याम तुम्हें हूँ नाहिं पठायें, तुम ही बीच सुलाने ।

वस्तुतः गौपियों की स्वतः प्रेरित भावपूर्ण उक्तियों का उद्धव से कोई उजर नहीं बन पाता और उनकी पालेला वन्द ही जाती है ।

वे जब सोचती हैं कि कृष्ण जो ने वे वास्तव में तो कितनी परस्पर उक्तियों उनके हृदय से निकलती हैं :

वे हरि पाते क्यों विचरि ?

बाधत राधा पथ चरन रज हित ही वक मति ।

मोति मति किछु लुप्तमावलि, से ज्या सोम करी ।

सुरति प्रमत्त स्यामा रस रजित सोधित रण मति ।

आधुन लुप्त व्यजन कर लीन्हें, करत मत्त लहरा ।

गौवारण मिस जात लघन वन सुरली अवर वरी ।

नाद प्रनालि प्रवेश वीस मै, रिक्तवत तिय झिरी ।१

उनकी तो उद्धव से एकमात्र प्रार्थना है कि वे उन्हें एक बार कृष्ण के दर्शन करा दें क्योंकि उनकी वांछिमा हरि दर्शन की मूर्खी और ये वक्तियाँ सुन लीं वे कैसे संतोष करें :

उधौ एक पत्थिया हमारी लीजै ।
 बरनि लागि गोविन्द सौ कहियाँ, लिखौ हमाराँ दीजै ।
 हम तौ कौन रूप गुन बागरि, जिहि गुनाल नु रीकै ।
 निरखत नैन नीर परि जायै, अरु कंधुकि पट मोजै ।
 लफत रहति मोन बातक, ज्यौ जल बिनु तृषा न होजै ।
 अति व्याकुल अकुलाति विहहिनी, सुरति हमारी कीजै ।^१

अन्य रसः

अपि सुर सागर को वात्सल्य एवं शृंगार रसों से व्याज्य मरा हुआ कहा जा सकता है किन्तु यही अन्य रसों का समाव नहीं है । प्रकृतानुसार अन्य रस जैसे कृष्ण, हास्य, वीर, मयानक आदि रसों का परिपाक भी उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है । उनमें से कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं —

हास्य रस

सुरदास जी ने बाल लीला का चित्रण करते समय तथा उद्धव गोपी श्लाघ आदि स्थानों पर अनेक उभित्त्यों सेही प्रस्तुत की है जो हास्य की वृष्टि करती हैं । ये सुरदास जी की विनोद प्रियता की सादगी है । कृष्ण जी का मुँह मखन से सना हुआ है किन्तु फिर भी वे माता यशोदा के सामने ऐसे तर्क देते हैं कि यशोदा को भी हँसी आ जाती है :

मैया मे नहिं माखन लायाँ
 ख्याल परै ये छा सवै मिलि मेरे मुख लपटायो ।
 देखि तुहा छोके पर माजन, जेवै परि लटकायो ।
 हाँ तू कक्षत नाहै कर अपने, मे केहे करि पायो ।
 सुन दधि पौछि, बुद्धि एक कीन्हो, दाँना पीठि दुरायो ।
 हारि साँटि मुसकाइ जसोदा, स्यामहि कण्ठ लायो ।^२

यही कृष्ण आलम्बन है, यशोदा का अग्र्य, कृष्ण का दोना क्षिप्ताना उद्दीपन विभाव
तथा यशोदा का हसना अनुभाव ।

कृष्ण रस

कृष्ण रस के दर्शन निम्नलिखित पद में होते हैं जहाँ पर सुरदास जी ने दासानल
का चित्रण किया है :

जब के राति लैलु गोपाल ।
दसहुं दिवा दुसह दवागिनि, उपजी है इहि काल ।
पटकत बाँस का ॥ सुष बटकत, लटकत ताँ तमाँ ।
उचटत अति अंगार फुटत पद, फापटत लपट कराँ ।
धूम धुँधि बाढ़ी उर बम्बर, बमकत बिच बिच ज्वाल ।
हरिन वाराह मौर पातकपिक जरन जीव बेहाल ।^१

यहाँ पर शोक स्थायी भाव है, बेहाल जीवों का जलना आलम्बन विभाव, बाँसों
का पटकना एवं लपटोका फापटना उद्दीपन विभाव, कृष्ण को रक्षा के लिये
पुकारना अनुभाव है और स्मरण श्वारी भाव है ।

राँड

जब रुन्द को ज्ञात होता है कि ब्रजनायिकों ने उसकी पूजा त्याग कर गोवर्द्धन
की पूजा आरम्भ कर दी है तो वह क्षुब्ध होकर कहता है :-

प्रथमहि देऊँ गिरिहिं बहाइ ।
ब्रजवातनि करीं सुरभट, देऊँ पटनि मिठाइ ।
मेरी इन मस्मि न जानी, प्रगट देऊँ दिताइ ।
बसि जल ब्रज थोड़ डारों लगे देऊँ बहाइ ।
सात छेत्त रहे नोक, कटी उपाधि बनाई ।
बरसन दिन मोहि पेट पूजा, देई छोड़ मिटाइ ।
रिस धस्ति सुरराज लीन्है, प्रत्य मेव हुलाइ ।
सुर सुरपति कहत पुनि पुनि परीं ब्रज पर बाइ ।^२

१- सुरदास (समा) पद १२३३
२- वल्लभ पद १४७७

यहाँ पर कौन स्थायी मान है, कृष्ण बाधय है और ब्रजवासी जाउम्बन । पुजा को मिटा देना उद्दीपन विभाव है, मेयो को कुलाकर ब्रज को बहाने के लिये आवेश देना आदि अनुमान तथा सौँहें हुई पुजा की स्मृति खोखी मान ।

धीरः

सुख चीत्र में जानें से पहले मीष्म पिताव प्रतिज्ञा करते हैं :-

जागु जाँ हरिहि न सख गहाऊँ ।
 लीं लाजो गंगा बन्नी को, साँतु सुत न कहाऊँ ।
 पायँ दल सम्झु ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ ।
 इती न करौँ सपथ लीं हरि को, हन्त्रि गतिहि न पाऊँ ।
 सुरदास रन मूमि जिय बिरु जियत न पीठि दिहाऊँ ।^१

यहाँ पर मीष्म बाधय है, कृष्ण जाउम्बन है, कृष्ण की सख ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा उद्दीपन, पुन को नदी बहाने की प्रतिज्ञा आदि अनुमान तथा स्मृति खोखी मान ।

मयानक

फहरात फहरात दावानल आयौ ।
 धेरि बहुँ और, करि धीरे अँदोर बन, धरनि बाकास बहुँ पास लायौ ।
 वरत बनबाँस, धरहरत कुसकाँस, जरि उड़त है माँस अति प्रबल पायौ ।
 फणटि फणटति लपट फुल फल बट बटकि फाटत, लटलटकि हुन दूम न्यायौ ।
 अति अगिनि फार ममार सुँवारकरि, उबटि अगार कंफार लायौ ।
 वरत बनपात, महरात फहरात बररात, तबमहा धरनि गिरायौ ।
 मर बेहाल सब नजाल ब्रजवाल तब, सब गोपात कछिँ सुकारायौ ।
 हुनावर्त, कैसी शकट, बकीबक अथाधुर, वामकर राखि गिरियौ उवारयौ ।^२

उस पद में मय स्थायी भाव है, ग्वाल जन जात्रय, बाघान्तु आलम्बन, अपटों का कपटना जादि उदीपन, ग्वालों का कृष्ण को पुकारना आदि अनुभाव तथा स्मृति संधारी भाव ।

वीरपत्त

सुर को रचनाओं में ऐसे वीरपत्त रस का कोई उदाहरण नहीं मिल पाया ।

अनुपल

नन्दहि कहत जसोदा रानी ।

माटी के मिस सुख दिखायाँ, तिहूँ लौके रजवानी ।

स्काँ, पताल, वरनि बन, फँसत, वदन मोफा रहे जानी ।

नदी, सुमेर देखि चकित पर, याकी अकथ कहानी ।

चित्तै रहे तब नन्द जुवति, सुख, मन मन करत बिनानी ।

सुरदास तब कहति जसोदा, गरी कही यह बानी ।^१

उस पद में यशोदा जात्रय है, कृष्ण आलम्बन, यशोदा का नन्द जो से इसका वर्णन करना अनुभाव तथा स्मृति संधारी ।

शान्त

थोरें जीवन मयाँ तन मारों ।

कियाँ न संत समागम कबहुँ, लियाँ न नाम सुम्हारों ।

अति उन्मत्त मोह मायावस, नहि कहुँ बात बिवारों ।

करत उपात न प्रवृत्त काहुँ, मन्त न साँटों छारों ।

झन्डी स्नाद विवस निशि बाधर, आप अपुन्याँ हारों ।

जुल जाँहे में बहुँ दिशि पूँर्यों, पाठों कुलहासे मारों ।

वाँधी मोर पसा रि त्रिविध गुन, नहि कहुँ बीच छारों ।

दैयाँ सुर बिवरि जोष परी, तब तुम सरन पुकारों ।^२

१- सुरदासर (समा) पद ८७४

२- वही पद १५२

शूर की अलंकार योजना

अलंकार काव्य की शोभा को बढ़ाने वाले वस्तु हैं। वे शोभा को केवल बढ़ाते हैं, शोभा को घुंष्टि नहीं करते। रस और भावों से हीन तुलसीदास को यदि अलंकारों से लाभ भी दिया जाय तो उससे पाठकों को क्या लाभ मिले ही जाय, वे रस विमोह कदापि नहीं हो सकते। हम केशव के मत- मृग न बिनु नहीं राजहंसकविता बन्ति मित्र - स्वीकार नहीं करते।

शूर के काव्य में भावों की ऐसी मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही है कि उसके दो बार छोटे लाने पर भी पाठक रस विमोह हुए विनानही रह सकता। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग भाषा को अलंकृत करने के लिये नहीं किया है अपितु अनुसृति से माधुर्यता के चरम शिखर पर पहुँचकर उनकी भाव रस द्वारा सरल भाषा के कूलों में नहीं समाती और उसमें वक्रता से चमत्कार का समावेश हो जाता है। इसी कारण उनके काव्य में शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का ही प्रयोग अधिक हुआ है। वे अपने चित्रण में खेदनाशील ही अधिक दीप्त पड़ते हैं। जब कवि की सौन्दर्यानुसृति उजा हो उठती है और हृदय तल्लीन हो जाता है तो उसकी कल्पना अधिक हृदय ग्राही उचितता को जन्म देती है और अप्रस्तुत व्यञ्जना योजना से सम्निवेश से उनमें अलंकारों का समावेश स्वतः हो जाता है।

शूर का उद्देश्य रूप सौन्दर्य का चित्रण करके भाव सौन्दर्य का पोषण करना था। इसी कारण साहित्य छहरी के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं शब्दालंकारों का अधिक उपयोग नहीं किया गया। अनुप्रास का समावेश तो उनके काव्य में स्वामाधिक रूप से हो हुआ है। इसके अतिरिक्त यमक, श्लेष, वीर्या और वक्रोक्ति का विशेष प्रयोग किया गया है। शूर का व्यञ्जनाभित्या में वक्रोक्ति बहुत सुन्दर प्रयोग किया गया है। शूर ने सयोग और वियोग दोनों ही अवस्थाओं के चित्रण में व्यञ्जना का बहुत आकर्षक प्रयोग करके यह दिखा दिया है कि व्यञ्जना का धृगार ज्ञात में कितना महत्वपूर्ण स्थान है।

सुरदास जी ने सबसे अधिक प्रयोग सादृश्य मूलक अलंकारों का किया है और उनमें मा सबसे अधिक प्राचुर्य है सांग रूपक का । सांग रूपक अलंकार का यह उदाहरण वृष्णय है —

हरि हाँ ख्य पत्तिन की राजा ।

निन्दा पर सुख पुरि रह्यो जा, यह निशान नित बाजा ।

तूष्णा देश बर कुमर मनोरथ, उन्डी सखा हमारी ।

मनो काम कुमति दीये कीं, ज्ञाये रहत प्रतिहारी ।

गज अलंकार चह्यो दिगम्बिया, लोम हन करि साध ।

काँज बसत कोलि को मरे, रसों लो मेँ ईष ।

मोह मय बन्दी गुन गावत, मागव दोष अवार ।

भूर पाप की गढ़ दूढ़ कीन्हो, दुस्सम लाइ कियार ।^१

इसी प्रकार सांग रूपक का एक बहुत प्रसिद्ध उदाहरण भूर का निम्न

अथ ही नाच्यो बहुत गुपाल ।

काम ज्ञाये को पहिरि चोला कठे विषय की माल ।

महा मोह के उगुर बाजत निन्दा शब्द रसाल ।^२

सुरदास जी ने अस्त्रास अलंकार का कहीं बहुत वाक्यांश प्रयोग किया है उसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं :-

१- कामी कुमन कुचील सुदरसन कोन कृपा करि लाय्यो ।^३

२- जानु झाल कुग जय विराजत -----

उखुट लपेट लटक मर ठाढ़े ।^४

३- कुंदलाल लज्जा ललचि लज्जावै री ।^५

१- सुरसागर (समा)	पद ६४४
२- वही	पद १५३
३- वही	पद १०५
४- वही	पद ६३२
५- वही	पद ६२६

सुर ने वैसा सुन्दर प्रयोग वाचासुधास का किया है, वैसा ही अन्त्यासुधास का भी । उसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं —

१- अति बगिनि मार ममार हुंवार करि उवटि कंगार कंफार लाया ।

घरत बन पात महरात कहरात बररात तह महा घटनी गिरायी ।^१

२- चिरपं चुल्लुहानी, बंद की ज्याति मरानी, रजनी विहानी, बाकी पियरी प्रदान क

३- वरनि फा पटक, कर फटक, मोहन पटक, अटक मन तहां रोके कहरां ।

तब चलत हरि मटक, रही, गुवती कटक, लटक, लटकनि लटक क्षि विचारै ।^२

वीर्या का प्रयोग सुर ने माध के उच्छलन के सङ्ग रूप में किया है, पादित्य प्रदर्शन मात्र के लिये नहीं । जैसे —

सुरि सुरि चितवत नंद गली ।

बार बार मोहन सुत कारन, बावति फिरि फिरि ली बली ।

बली पीठ दै दृष्टि फिरावति, अग अग आनंद रली ।

कीर कपोत मोन पिक सारंग, केहरि कदली क्षि विदली ।

सुरदास प्रसु पास दुहावति, बनि बनि श्री वृषमातु लली ।^३

वैसे तो पुनरुक्ति को दोष माना जाता है पर जब पुनरुक्ति ही काव्य की रुचिरता का कारण बनती है तो यह बल्लभ बन जाती है । उसका एक मनोरम उदाहरण यहाँ दिया जाता है ।

सुन्दर स्याम ली सब सुन्दर, सुन्दर वैष बरै गोपाल ।

सुन्दर पथ सुन्दर गति आवन, सुन्दर सुरली सुन्द रसाल ।

सुन्दर लीग सकल ब्रज सुन्दर, सुन्दर सलवार सुन्दर माल ।

सुन्दर बचन बिलोकिनि सुन्दर, सुन्दर नून सुन्दर बन माल ।

सुन्दर गोप गाव अति सुन्दर, सुन्दरि गन सब करत विचार ।

सुर स्याम की सब सुन्दर, सुन्दर मकत हैत अवतार ।^४

१- सुर सागर (सभा)	पद ५६६
२- ली	पद २०३६
३- बली	पद १०४९
४- बली	पद ७३६
५- बली	पद ४७४

अंग्रेजी अक्षर शास्त्र के प्रमाण से अर्थवचन को भी हिन्दी में एक स्वतन्त्र अक्षर माना जाने लगा है । उसमें ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है जो अपनी ध्वनि से अपना अर्थ व्यक्त कर देते हैं । पूरा सगित्त ये । अतः उन्होंने भी नादात्मक शब्दों से सुसज्ज शब्दों का प्रयोग किया है । उदाहरणार्थ —

तल्लित बाग न लेंते, तुमफि तुमफि डोंते ।

सुनक सुसक वोंते, पेजनि मृदु सुखर ॥ १

तथा

घटा धन्नारे धहरात, गरारात, दरारात, धरारात ब्रज लगे हरये ।

तद्वित बाघात तर रात, उत्सात सुनि, नारि नर सुगुचि तन प्रान करये ।^२

अप्रस्तुत प्रशंसा नामक अक्षर में अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत का प्रशंसन किया जाता है । यहाँ पर वर्ण्य वस्तु का नाम तक लिखे बिना उसकी विशेषताओं का उद्घाटन किया जाता है । सुरदास जी ने निम्नलिखित पद में माना का वर्णन गाय के वर्णन द्वारा प्रस्तुत किया है :

माथी घू यह मीरो डक गाय ।

अब बाज लै बाज आगै दहं, लै बाइये चराय ।

यह अति हरहारं, बटकत हूँ, बहुत जमारग जाति ।

फिरति ब्रैद घन उगस उगारति, सब दिन अब सब राति ।

क्षित करि मिले लैहु गोकुलपति, बपने गौवन माहि ।

सुत लोखें सुनि बचन तुम्हारे, देहु कृपा करि चाह ।

दिपरन रहाँ सुर के स्वामी, जनि मन जानाँ फेरि ।

मन पमला रुचि लै रतबारा, पखिउँ लैहु निजैरि ।^३

सुरदास जी ने उपमा का भी बहुत सुन्दर प्रयोग किया है । उसका हम यहाँ केवल एक उदाहरण देते हैं —

१- सुरदास (समा) पद १५१

२- वही पद ८५५

३- वही पद ५६

हरि वरधन को लाय सुई ।

उड़ियै उड़ो फिरति नैनन को, कर फूटे ज्यों बाक रुई ।

छूति सुर वान - अक्षरसी, बिनु वरसा ज्यों घुड़ रुई ।^१

उत्प्रेक्षा अलंकार सुर की बहुत प्रिय है । उन्होंने अर्प्य विषय की सुझा उत्प्रेक्षा अलंकार की सहायता से अनेक समान वर्ण वाली वस्तुओं से की है । उदाहरणार्थ --

सुत छवि कहा कहां बनाइ ।

निरसि निरसिपति वदन सौमा, गयो गगन दुराइ ।

अमृत अछि मनु पियन जाए, जाइ रहै लुमाइ ।

निकसि सर तै भीन मानौ, उरत कीर दुराइ ।^२

इसी प्रकार उल्लेख, अप-हृति, प्रतीय, सन्देह, अतिशयोक्ति, समावृत्ति, व्यतिरेक आदि अलंकारों के उदाहरण भी दृष्टव्य हैं --

उल्लेख-

हरि प्रति को नानरि निरसि ।

दृष्टि रामाठली पर रहै, बनत नाही परसि ।

कोउ कहति यह काम कसो, कोउ कहत नहि जाँग ।

कोउ कहति अछि बाँध पुंगति, बुरी स्क सजाँग ।

कोउ कहति अछि काम मय्याँ, ठहै जिनि यह काहु ।

स्याम रामाठली को छवि सुर नाहि निवाहु ।^३

अप-हृति-

वात्स न ताँह कोउ पिरखिनि नारि ।

अजहूँ पिय पिय रजनि छरति कर फूठैहि मांगत वारि ।^४

१- मुरसागर (अभा) पद २४७३
२- वही पद ६७०
३- वही पद १२५४
४- वही (वे० प्र०) पृष्ठ ४६६

रूपक गणित अपनहुति

महुर हम न हौंहि वै वैलि ।

जिन मजि तजि तुम फिरत और रगे करत कुसुम रस कै लि ।^१

सन्देह

गोपी तजि लाज, ली स्याम रंग भूली ।

पुरन सुखद देखि, नैन कोरे फूली ।

कैयो नम जल स्वाति, चात्क मनलार ।

जिधौ वारि वृंद सीप हृदय हरष पार ।

रिच हवि कैयो निहारि, पंकज विकसाने ।

दिगौ चन्द्राफ निरसि, पतिहि रमाने ।

कैयो मृग गुण बुरे, मुरली धुनि रोकै ।

सुर स्नाम सुख मन्दल हवि, के रस पावै ।^२

प्रतीप

देखि री हरि कै चंचल नैन ।

राजिबल, श्वीवर सत दल, कमल कुसुम जाति ।

निधि मुद्रित प्रातहि वै विकसित, ये विकसति दिन राति ।^३

सम्भावना

बढ़ौ निरुर विवना यह देख्यौ ।

जब तै बाहु नन्द नन्दन हवि, जार वार करि पौख्यौ ।

नख, अंगुरी, पग, जानु जुंघे, कटि रवि कोन्हौं निरमान ।

हृदय, बाहु, कर, अंस, अंग अंग, मुख कुंदर अतिवान ।

उपर दसन, रसना, रजवानी, सवन नैन बः माल ।

सुर राम प्रति लौवन दे त्वौ, देखत बन्त गुपाल ।^४

-
- | | |
|--------------------|---------|
| १- पुरुषांगर (समा) | पद ४१२६ |
| २- वैली | पद ४२६० |
| ३- वैली | पद २४६१ |
| ४- वैली | पद ४२६१ |

भवेकाति स्मरित

वलि री सुन्दरता की रंग ।

स्निग्धनि मोहि परति श्वि बारी कमल नैन के जंग ।

परमिति कर राख्यो बाहति है, लागो डोलति ली ।

सूरदास कुछ कहत न आवै, मरुं गिरा गति पंग ।^१

व्यतिरेक

उपमा नैन न एक रही ।

कहि जन कहत कहत सब जार, सुवि कर नाहि कही ।

कहि बकौर बिबु सुत बिबु जावत, प्रभर नही उहि जात ।

हरि मुख कमल कोष बिबुरे तै, ठाहै कत ठहरात ।

ऊर्वां बयिक व्याव हूँ जाये, मृग सम क्यो न पछात ।^२

इन्की अतिरिक्त सूरदास जो नै स्वभावोचित, अन्यामित, विरोधाभास, अर्थान्तरन्यास, उदाहरण, प्रियावना, अलंकारि आदि अलंकारों का प्रचुरता के साथ प्रयोग किया है ।

शब्द :

सूरदास जो प्रतिभा सम्पन्न संगीतकार थे । संगीतज्ञ कवि स्वरों और शब्द के समन्वय द्वारा मान-प्रकाशन को पुष्ट करता है । शब्द ध्यान का गौरव है नित्य सम्बन्ध है । यद्यपि सुर ने राग रागनियों में पद रचना की फिर भी वे शब्दों को न छोड़ सके । संगीत के आचार्य होने के कारण सुर ने बड़ी चतुराई से शब्दों के व्यंजनों को ढाल कर दिया है, र, रि, ली, ये, जव, जब, बलि, वलि, कान्हा जैसे अनेक पदों के योग से शब्दों की पञ्चित्या गीत की पञ्चित्या से समानान्तर कर दी है ।

१- सूरदास (सप्त) पद १२५८

२- वही पद ४१६०

सुरदास की है पूर्व हिन्दी के छन्द रचना की निम्नलिखित शैलियाँ प्रचलित थी --

- १- दाँदा पदति,
- २- धीर बाणा काँ की छप्पय पदति ।
- ३- मारो की वण्क पदति तथा
- ४- वीपाई पदति ।

सुरदास ने इन सभी छन्दों का प्रयोग किया है, सुर ने दाँदे का प्रयोग सबसे अधिक प्रयोग किया है । कहीं तो उन्होंने इस छन्द का सामान्य प्रयोग ही किया है जैसे :-

पैठ न दाँदे बापराँ, श्याँ करि पन्धट जाव ।
हहि सुखनि छापति रहाँ, पटे न काँऊ नाँउ ॥

कहीं पर कुछ छन्द या बर्वाली जाँड़कर दाँदे को उन्होंने गीत का रूप भी दे दिया है । निम्नलिखित उदाहरण में उन्होंने दाँदे की प्रत्येक पंक्ति में एक बर्वाली जाँड़ कर दाँदे के चरणों को गीत बना दिया है :

गौमुख कल गुवालिना, पर पर लैलत कान । मनोरा कुमकुड़ौ ।
तिन में राधा लावली, जिनको बधिक सुखान । मनोरा झुकल हौ ।^२

निम्नलिखित वृंश में कवि ने दाँदे के चारों चरणों में ही प्रत्येक को एक पंक्ति में रखकर उसमें बर्वाली जाँड़ है :

मनो ब्रज तें करिनि बली, मरमाती हौ ।
गिरवर गज पे जाँडे, गवालि मदमाती हौ ॥
कुल अकुल माने नहीं, मदमाती हौ ।
संस्त वैद सुराष्ट, गवालि मदमाती हौ ॥

१- सुर जागर (समा) पद १४४३

२- वही पद २८६२

इस प्रकार सुदास जी ने अपनी प्रतिमा और छीत कला के बल से दोहरे में पढ़ी न्मीनताएं प्रस्तुत कर दीं ।

सुदास जी ने विन्ध्य के पदों के एक पद ऐसा भी रखा है जो वीरगाथाकाल की क्षम्य परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है —

रागजैमिनी

तब लिम्ब नहिं दियौ, अब चिरनापुस पाइयौ ।
 तब बिलम्ब नहिं दियौ, कंस गहि कंस पहाइयौ ।
 तब बिलम्ब नहिं दियौ, सोस दस रावन कटै ।
 तब बिलम्ब नहिं दियौ, सैं दानस दस पटै ।
 कर जोरि हुर भिन्ती करै, सुनहु न हो रकुमनि रखन ।
 काटौ न कद मो अब के, अब बिलम्ब कारन कवन ।^१

सुदास ने बनादारी, फुलना और कुरी वण्डकों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है । कला २ पर इन छन्दों को भी रागों के स्वर में बाधने के कारण प्रायः यति की दोष जा गया है, सुर सागर के अष्टम स्कन्ध के गज मांदिन अवतार में एक छंद बनादारी है —

काटौ न भिटन पाउं, गायँ हरि जातुर है
 जान्यौ जब गज ग्राह छि जात बल मे ।
 जादोपति जहनाथ, होहि लगपति जाय,
 जानि जन बिल्वल, छुहौं लोन्हीपल मे ।
 नारहुं ते न्यारां कीन्हीं चक्र नक्र सोस दीनी,
 देवकी के प्यारे ठाठ, होचि लार फल मे ।
 कहै सुदास देहि, नैननि की मिटी प्यास,
 कृपा लोन्ही गोपीनाथ, जार सु तल मे ।^२

१- सुरसागर (समा) दशमस्कन्ध, पद १८०
 २- वही पद ३६२

सुरसागर में कुलना और चेली नामक दो प्रकार के मात्स्य वण्ड हैं
का प्रयोग हुआ है। इनकी तीक्ष्णति रसात्कषी में उल्लेख हुई है। कुलना वण्डक
का एक उदाहरण दृष्टव्य है --

ज्यति न्देलाल, ज्य जयति गीपाल, ज्य जयति ब्रजवाल, जाम्दकारी ।^१

उससे स्पष्ट है कि सुर ने कुन्दों का मात्रावर्ग, विराम और गति जो मनमाना
कर कर लिया है उसका कारण है कि सुर गान के प्रजन पर कुन्दों का रचना करते
थे।

सुर ने अपने क्या माग में चौपाई का भी प्रयोग किया है किन्तु वहाँ का
चौपाई के साथ प्रयोग नहीं किया है। इससे चौपाइयों में वर्णित वाक्यान्त नीरव
हो गये हैं। इससे अतिरिक्त सुर की चौपाइयों में श्लोक के स्थान पर कई बार
१४-१५ और १७ मात्रावर्गों की चौपाई भी मिल जाती है। चौपाई का एक उदाहरण
दिया जाता है :

मनमय ऐनिक मये जराती । हुम कुंठे वन अनुमय मोति ॥

सुर दर्दजन मिलि जस गार । मयना वाजन अनंद जगार ॥^२

उसके अतिरिक्त सुर ने छार, छरी, विष्णुपद, लावनी, श्रमान तबिया,
उपमान और कुठल कुन्दों का भी प्रयोग किया है। इनके उदाहरण आगे दिये
जा रहे हैं :-

छार:

पाई पाई है रे मैया, कुंज कुंज में टाजी ।

बसकै अपनी हरकि बराबहु, जे है मटकी वाली ॥^३

छरी:

बाबहु बाबहु, इसे जान्हनु, पाई है सब वैनु ।

कुंज कुंज में देखि छरी कुन, चरित परम हुआ वैनु ॥^४

-
- | | |
|------------------|---------|
| १- सुरसागर (समा) | पद ६८० |
| २- वही | पद १०७२ |
| ३- वही | पद ५०३ |
| ४- वही | पद ५०२ |
-

विष्णुपदः

वृज वनिता वत जूय पछली, मिठि कर परस करै ।
मुज मृनाल मूष न तौरन जुत, कंचन लम तरै ॥^१

लावनी :

उस हृन्द का प्रयोग विशेषतः उस प्रकाश में किया गया है जैसे --

प्रज बट बट आनन्द बह्यौ बलि, प्रेम पुलक न समात छि ।
जाकी नेति नैतिरुति गायत, ध्यावत सुर सुनि ध्यान धरै ॥^२

समान स्त्रियाः

उस हृन्द का प्रयोग सुरदास जी ने वर्णनात्मक प्रकाश में किया है जैसे --

माची नहीं मिटै काहु की, करता की गति जाति न जानी ।
कही कही ते त्याम न उबर्यौ, किहि राख्यौ तिहि जाँवट जानी ।^३

उपमानः

सुता महर वृषपातु को, नद खनहिं बार्ह ।
गृह बार्ह हो बजिर मै, गौ हुल्ल कलार्ह ॥^४

कुन्हर :

सुर ने उस हृन्द का सुर मात्रा में प्रयोग किया है जैसे --

हैसौ गोपाल निरख, तन मन बन वारौ ।
न किशोर मधुर सुरति, सीमा उखारौ ॥^५

-
- | | |
|-----------------|---------|
| १- सुरागर (समा) | पद ११३६ |
| २- वही | पद ८८ |
| ३- वही | पद १३६८ |
| ४- वही | पद ७४४ |
| ५- वही | पद ६६२ |

उनकी अतिरिक्त शूर ने कुछ नवीन शब्द भी रचे हैं। परी ठीक शब्दों में वे कुछ के उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं --

१- कहु वसन्त के बागमहिं, मिठि फूमक हो ।

हुत खन मदन को जौर मिठि फूमक हो ॥^१ (११-८)

२- बाबु हो बाबायां जाजे, नन्द गोपराह के ।

जहुसुल जादां राह, जन्मै ही जाहके ॥^२ (१२-११)

३- व्रज म्यां महर के घूत, जब यह बात सुनी ।

धुनि बानन्दे सब लगे, गहिउत गनक गुनी ॥^३ (१३-१०)

४- धनि धनि नूँ जसोपति, धनि का वाचन रे ।

धनि हरि लियो जयतार, धुनि दिन वाचन रे ॥^४ (१५-१०)

५- सरद सुहाई जाई राति । दहुं दिशि फुलि रही पन जाति ॥

दैति स्याम पन हुत पयो ॥^५ (१५-१५-१३)

इस प्रकार शूर ने कौल गीतों में ही रचना न रके अनेक मात्रिक और वर्णिक शब्दों का भी प्रयोग किया है। उन्होंने शब्दों के कुछ नियमों का उल्लंघन करके भी उन्हें रागी के स्वरों में बाँधा है पर फिर भी शब्दों का रूप बिभूत नहीं हुआ है। उनकी मौलिक उद्भावना का पता लगता है। प्राचीन शब्दों के लहारे को शब्दों की रचना की दिशा में शूर ने बड़ा स्तुत्य कार्य किया है।

भाषा :

शूरदास जी ने अपनी ग्रन्थ रचना ब्रजभाषा में की है जिसे उन्होंने भाषा कहा है। उन्होंने अपने समय में उपलब्ध बोली को ही साहित्यिक रूप दिया।

१- शूरसागर (समा) पद २१०३

२- वही पद ३१

३- वही पद २४

४- वही पद २६

५- वही पद १६८०

यह माया कबीर की पीति सुझकी न होकर ब्रह्म ब्रज है । उदाहरणार्थ उनके विनय के पद लिये जा सकते हैं । जैसे —

हरि तुम माया को न विगोयों ।

हाँ जाँजन मरणाद सिंधु की, पर मेँ राम विलोयों ।

नारद ज्ञान पर माया मेँ, ज्ञान बुद्धि बर लोयों ।

ठाठ पुन कसब बर हावस कस्य, कंठ लाये जोयों ।

संन्य को मन लुयाँ कामिनी, सेन होहि मृ लोयों ।

बार मोहिनी बाध बाध किया, तब नस रिस तेँ लोयों ।

सा मेँया सुरजोवन राजा, पर मेँ गरद समोयों ।

सुरदास कवन बर कोचहि, रकहि कगा पिराँयों ।^१

सुरदास जी की माया में विभिन्न प्रकार के शब्द आ गये हैं । उन्होंने संस्कृत माया से सबसे अधिक शब्द लिये हैं । इनमें सुरदास जी ने आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर दिया है । तत्सम शब्द अविकारित; वही हैं जहाँ उन्हें अप्रस्तुत योजना करनी पड़ी है या मागवत आदि के आधार पर कुछ तथ्य कथन करना पड़ा है । इसके साथ ही उन्होंने विदेशी -- अरबी -- फारसी शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में किया है । पर उन्होंने इन पर ब्रज माया की कलई रखी है । एवम् इन शब्दों का विदेशीयन लक्षित नहीं होता । जैसे उन्हें पात्र एवं परिहियति वस्तुल जेसा भी शब्द देशी, विदेशी, साहित्यिक, असाहित्यिक, शिष्ट अशिष्ट, उपयुक्त मिला उसको उन्होंने सहज स्वीकार कर लिया ।

तत्सम शब्दों का प्रयोग सुरदास ने उस समय किया जहाँ उन्हें सिद्धान्त निरूपण करना था या जहाँ अप्रस्तुत योजना करनी थी । सुर सारावली उनका सिद्धान्त ग्रन्थ है । इसमें संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग सुर के अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा कहीं अधिक है जैसे—

अविगत गति अन्त अनुपम, अलख पुरुष अविनाशी ।
 पूरण ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम, नित निज लोक विलासी ।
 जह कृन्दावन बादि अजिर जई, कुज लता विस्तार ।
 तह विहरत प्रिय प्रियतम दाँज, निगम मुग गुजार ।^१

निम्नलिखित पद में गाँवर्धन जीला के उपरान्त इन्द्र की स्तुति की गई है ।
 यहाँ पर स्तोत्र पद्धति का पालन किया गया है फिर भी उन्होंने संस्कृत शब्दों
 पर, जहाँ भी उन्हें अवसर मिला, ब्रजभाषा का मासुर्द बहा दिया है । जैसे --
 जयति कुँदा०, जय जयति गाँवा०, जय जयति ब्रजवा०, अकुँदारी ।
 कृष्ण कम्पीय, सुख कपल राजत धुरमि, सुरलिका मधुर शुनि बन विहारी ।
 त्याग धन, क्रिय तन पीत पद, दामिनी, इन्द्र धनु मारि काँ मुसुट साँहै ।
 सुमग उर माल मनि, कठ चंदन अण, हास्य उपद सु त्रैलोक्य पाँहै ।

रैवाकित शब्दों में सुर ने तत्सम शब्दों के कुछ सरल बनाने के लिये किंचित परिवर्तन
 कर दिया है । अतः इन्हें अर्ध तत्सम कहा जा सकता है । ऐसे शब्दों का सुर ने
 प्रचुरता के साथ प्रयोग किया है । इनमें से कुछ काे वाच्य के रूप में यहाँ रखा
 जाता है । इनकी पद अंख्या नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सुर सागर से
 अनुसार है —

अर्ध तत्सम शब्द

स्वारथ (५), प्रजन (२१), सुकर (४१), सरवस (६४), अर्वायि (१५५),
 सुसुति (१८७), गमिका (१६०), जंति (२३०), जारत (२५१), कलस (२५३),
 तंदुल (२६७), पदुम (३३०), मरुट (३३२), भूग (४४३), लुनीर (४८८),
 मरजाद (५३७), विशकर्मा (६५८), मिनुषार (६९३) ।

१- सुर सारावली, पद १

२- सुर सागर, विनय, पद ५६

तृमय शब्द

निरालम्ब (२), गृह (४), ग्राह (२१), अक्षिपति (२६), प्रहारि (३१),
अंगिकार (३८), अवर्षिमुख (५७), नासिका (७७), नारिकेल (७८), दारा (८०),
वामिप (१०२), अनायास (१०५), अनुमति (१०६), दाहक (१६३), मगिनि (१७३),
राजा (२१०), मार (२२६), मम (२४६), समर (२७८), मुहुलित (३०७), आयुष (३२१)
कलत्र (३६६), अमिराम (४६६), अपरिमित (४७०), पिनाक (४७२), गङ्गा (४८३),
अमिताव (५१४), अवज्ञा (५२३), संकुचित (६६३), दम्पति (७१६), जल्य (७१६),
विलुक्त (७२४), छिम्प (७३५), रचनीचर (८१७), कनीनिका (८८२), परिवर्ष (२४१४),
व्याधि (३०७०)

तृमय शब्द

लच्छा (४), साधर (५), जौधर (४०), सियार (४१), चवाई (१४०),
लसा (१८६), जन्मि (२१०), वाता (२६१), वल्ल (२६७), सेज्या (२६८),
सतिमार (२८४), तडनार्ह (३२६), अनलहत (३२६), काठ (४८६), वाहि (४८६)
पनखिया (४६३) पयान (४७७), पलारना (४८५), मूजव (४८३), पावरी (४८८),
तुरत (४४१), अटारी (५४७), केहरि (५०२), रिबन (५०६), बरनी (५१७), जीम
(५२३), विलम (५५६), गीव (५०६), राकस (५२३), सरिब (५२७), जवेरा (६६४),
वातर (६५८), कापरा (६५८) तमचुर (८२०), बियाहन (८१२) क्कात (८१४),
कांदा (६५५) ।

ग्रामीण शब्द

मूह (७), जीवट (६), सासना (३८), लीज (१३०), सठिया (१६२),
लठवाई (१८६), मॉट (१८४), बिरिया (१८८), लुलु (१६६), लजाय (२०२),
लवरी (२०६), बिरिया (२३४), लाहा (३१०), करतुति (४६४), डाटे (५४०),
बुकयुकी (७६२), नौजा (७६८), कौटनि (८५०), चुचकार (८०१), माड़ी (२४३४),

बाँसनी (२०८१), तलबेलि (२५८३), डूकी (३४६६), बाँसट (२०८०) ।

निरहुतः कवयः के अनुसार कवियों को कुछ नये शब्द गढ़ने का भी अधिकार प्राप्त है । सुरदास जी ने भी मधानी - मधिमित्र (१८३), नीलकण्ठीर - नीलकण्ठ (७७६), उपाधा (२४७७), निवधाना (२५२५) ज्योतिष - ज्योतिषी (२५५५) जैसे कुछ नवीन शब्द भी गढ़ लिये हैं ।

विदेशी शब्द

उस का० की राजनैतिक ध्वनिमानात्मिक परिस्थितियों के कारण अनेक बारी बारी फारसी शब्द जन साधारण में खूब प्रचलित हो गये थे । किन्तु उन्होंने उन शब्दों को जन भाषा की ध्वनियों के अनुसार परिवर्तित कर दिया है । उदाहरण के लिये निम्नलिखित पद के रसाक्षिप्त शब्द दर्शनाय हैं :-

जन्म साक्षिणी करत मयी ।

काया नार वही गुजायश नाहिन कहू बढ़यी ।

हरि का नाम दाम लोटे लीं, कि मा कि का कि हरि दयी ।

विषया गावे जमल को टोटो, हंसि हंसि के उमयी ।

नेन बनीन बयमिन के वस जड़ को तरो दयी ।

दगावाज कुत्तात काम रिपु तरकष छूट गयी ।

पाप उजोट कस्यी जो मानो, बर्म छुन छुट्यी ।

वरनादिक को होहि धुमारध धुरा पान अच यी ।

कुहुपि स्निह-कर-मृ कमान चढाई कोप करि, तुयि तरकष रित्यी ।

छदा तिकार करत मृग मन को रहत मान सुखी ।

चोरयो जाह छुटम छुटकर मै, जम जहदी पठ्यी ।

धुर नार चौराधी प्रमि प्रमि धर धर को बु मयी । ४

उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ विदेशी शब्दों की सूची नीचे दी जाती है --

दावान (२६), साक (८६), जहाज (६६) नाँवत (१४१), लोर (२५३),
सहनाई (४७३), दगा (५५८), छक्का (६१६), लराह (६५६), गुमान (६१७),
गौर (६४१), वक्त्वाँ (६४७), दर (१२६५), लायक (१३८६), हज़ूर (१८८७),
गुहार (२०६१), साबित (२४४७), दह (२४५६), सद्दुक (२५६२), अपसोस (३८५३)
ह्व (३९५३), महर (४२३४), गुनहगार (४२४२) ।

दिन रुद

शूरदास जी ने कुछ ऐसे शब्दों की भी धृष्टि की है जो विदेशी तथा हिन्दी
के शब्दों को मिलाकर बने हैं, जैसे काँजपति, लॉन हामी आदि ।

इनके अतिरिक्त पैठा (२५६१) डोरी (२५५६) जैसे झुराती तथा फहरना
(२५३८) जैसे बुन्देली शब्दों का प्रयोग भी शूरदास जी ने किया है । यह कवि की
समन्वयवादी प्रवृत्ति का प्रतीक है ।

मुहावरें तथा लोकोक्तिः

मुहावरें तथा लोकोक्तियों में मानव समाज का चित्राकृत का अनुभव
संचित होता है । इनका आधार मनोविज्ञानिक होता है । अतः ये देश काल
की सीमा से परे होते हैं । शूर ने इनका कितना उफाउ प्रयोग किया है यह
निम्नलिखित पद से स्पष्ट है जिसमें प्रेम, विस्मय प्रज्वालित उल्लास पर चुटीला
व्यंग्य करता है --

आये जोगे सितावन पाढ़े ।

परमारकी पुराननि लादे ज्यों बनजारें टाढ़े ।

हमरें गति पति कमल नयन की, जोगे सिखे ते राढ़े ।

कहाँ मधुप कैसे समा सिंगै, एक म्यान दाँ लोढ़े ।

कहु पाट्पद कैसे सैयतु है, हाचिन के ओ गोढ़े ।

काकी मुख गई ब्याकरी पील, बिना दूध हून मोढ़े ।

काँड़े कौ फाला लै मिलवत, कौन बार हम हाँड़े ।

भुरदास तीनों नहिं उपजत, जनिया, वान, कुम्हाँड़े ।^१

भुरदास की द्वारा प्रयुक्त कुछ महावाराँ और लौकिकीयों की सूची यहां दी जा रही है ।

सुहावरी

बाँस घुटली दीन्हीं (१३१२), उनहिं हाथ कर पाऊँ (१५३३), एकहु अंग न काँची (१६४८), अंगुरी गहत गह्यौ जिहिं पहुँचौ (१६२३), जाति पीति उपटना (१६५३), पाठ पढ़ाना (१६०६), कौ द्वै नाम चढ़त है (१६०५), रंग झुलाने (१६२२) नैन लाना (२०७५), अपना ही बिर लाना (२४४६), अपना ही करना (२६६८), ओहो वासन (२६३०), कपू मुँह पढ़ि पर ज्यौ (२६६५), ज्यौ ज्यौ करि (२८७६), आँरी लाई (२६६६), तिनका ताँदेकर हाँलना (२७५२), ना जावौं केटि बार तटे की (२६१२), पीछे पीछे फिरना (२६६२), बातें गढ़ि गढ़ि बानत (२६२२), बोझि के काग (२६३०), माँह लाना (२६२२), मिली दुध ज्यौ पानी (२५१६), मन मिलना (२६१८), लीस चढ़ा लेना (२४८६), मन ताँ रह्यो पखि सूरज प्रभु माँही रही बरी (३७६८), मन की मन ही माँफ रही (३८७६), मुड़ी हार ज्यौ तोरी (३६७६), मरु तारे की माँही (३७७८), मुख पर की मोति (३८०२), पलक न पढ़ना (३८६५), पराए लोना (३०४१), द्वै कौड़ी के (३८७२), तारे गिनना (३६२७), जिय मे झूल रही (३६१७), गुँगे गुट की रसा गई लूँ (३१४७), बाँस बरसना (३८१३), जोलि बरति हैं मेरी (४१४६), एक हाँठ के तारे (४२१३), एक दुःख दुँजें हाँसी (४६८१), लोरे की दूब (४६०७), जरे पर जारत (४५२१), फासत रहत दिन राती (४२६६), वाय के वाम चलावत हम ताँ (४६५४), टा माँदेक लोना (४०१६), न्मिट बई कौ लयिँ (४१५८), भुरही लै लोटिँ लायिँ हैं (४५८३), पेड़ पढ़ना (४२३३), फिरत बहारा लारे (४६५८) रतन लोरी दियौ माँही (४२१३)।

लोककवित्तो

गद्दी जारी दिवना की, जेसा तेसा ताहि (१८६७), ताके हाथ पैहु फाल
 ताकी (१६५१), जाकी मन मानत है जासो, सो तूँ ही सुत मानै (१६२२), हत्की
 मई नै उसकी सजनी (२६३५), सारं पुनि पुनि (२४०३) जो छोटा तेई है सौंटी
 (२६६६), जोई लीजे सौंई है अपनो (२८८३), जाकी जान परी सलि बैसा, सो तहि
 ठेक रह्यो (२६३२), जूँई सौंई मोटे काटन (२६५६), दियां अपनो जई सौंई (२४४६)
 मारी की मारत है बड़े लींग माई (२६२१), बुरदास गल सौंटी, फाई पाटलि दोष
 वी (२६५२), काचि है बाए (३६२६), जोतन लप दिवस दस ही के (३२५०),
 जाहि लो सौंई पं जानै (३६५५), अपनै स्वारथ के सत्र कोऊ (४५६३), अपनो दूध
 छोड़ि को पीवै, तार कूष को जारी (४५६३), एक जांवरो सिय की फाटी टौरत
 सहिरि तराऊ (४७७४), काटहु जम्ब बसुर लावहु, चन्दन की का रि बा रि (४५२७),
 कहा कथत मासी के जानै, जानत नानी नानन (४५६४), लाटी नही सहा रुचि मानै,
 सुर लखैया की की (४४७६), काकी मूल गइ मन लाहु (४४७६), ज्यो खर सौ की
 पुतरी को पूण को मानै (४६६२), जेते बास बसत है कोऊ तैसा सौत स्याना (४६६५)
 जे मयसोत छोड़ि ह्मा देते ज्यो ज्य छुहि बहि कारा (४३६०), जल बूझत बलम्ब पोन को
 (४२३६), ताका फहा परेसा की जे जानै जान न दुया (४५७८), तुमसो प्रेम क्या का
 कहियो मनो कटियो पास (४५७८) ।

गुरदास और नन्ददास को काव्य की भाँति तुलनात्मक अध्ययन

मान और रस की दृष्टि से

ज्योत्स्ना के अन्य काव्यों के साथ गुरदास तथा नन्ददास दोनों की कोमल भावनाओं के काव्य हैं। दोनों ने ही रस के कई रूपों — शृंगार रस, वात्सल्य रस, भक्त रस, प्रिय भक्त रस, जादिक का चित्रण किया है। दोनों का ही योग, सौन्दर्य, मिलाप और प्रेम के काव्य हैं। दोनों के काव्य में शृंगार रस, रसिकता और सरसता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। पर नन्ददास के गीत में शृंगार है तथा गुरदास जी का वात्सल्य रस शृंगार। नन्ददास जी ने वात्सल्य रस का वर्णन तो किया है पर उन्होंने गुर के तन्मयता के साथ उसका चित्रण नहीं दिया। गुर तो वात्सल्य का गीत गीत काफ़ी जाये थे।

दोनों काव्यों की रचनाओं में उपलब्ध हो जाते हैं। उदाहरणार्थ प्रेमगीत एक ही प्रकृति हैं। पर नन्ददास के मधुरगीत में गुरदास जी के प्रेमगीत जैसा मान मिलता और मान गान्धीय नहीं पाया जाता। गुरदास ने प्रिय प्रेम की भाँति काव्य का वर्णन किया है, उस प्रकार नन्ददास नहीं कर पाए। दोनों का ही गीत पर है पर नन्ददास के मधुरगीत में क्यों ? गुर की भाँति चिरिणी चिरियों के सुख की जैसा दशाओं का वर्णन नन्ददास नहीं कर सके। गोपिकाओं के प्रेम की उत्कलता का वर्णन, जैसा परिस्थितियों और अस्थानों में सुख की भाँति दशाओं के गुर जैसे वर्णन को अर्पित, वादों अनुमानों — वादिक और वादिक द्वारा ही नन्ददास ने सुख पर किया है। उनके उपलब्ध तन्मयों दुःख भाँति में ही सुख का लोका, दोस्ता जादिक भावनाओं व्यक्त हुई हैं। गुर की गोपिकाओं जैसा जात्मनिर्देश, जात्म वर्णन, प विष्ठा, तन्मय भावना के उपलब्ध, उदय, जमिनापन, चिन्ता, व्याधि जादिक

अनेक वशाये नन्ददास की गौपियों के विरह का ये नहीं मिलती । उस प्रकार मान को दृष्टि है उदास का प्रसंगीत अधिक काव्यमयुक्त है । उसमें उदय के आय वाद विवाद में गौपियों का शक्ति तन्त्रांतर्गत या शुष्क तर्क का प्रयोग न करके अपना माकुलता और हृदय की उदना तथा जग ही वाक् वाच्य का प्रयोग करती है । अपने हृदय की पारशता -- हमारे हरि हरि के लकी ' उदय मन नाहीं दस बीता' एक छंदों का गया व्यास को को आराधन उस ' लीरकारों की प्रेम कहां बलि की छंद ' आदि पदों से मान मिलान करके उदय को निरूप करती है ।

नन्ददास के प्रसंगीत में क्या क. मा. उतनी प्रभावता नहीं है, जो लिये अनेक प्रकारों और परिस्थितियों से उत्पन्न विभिन्न मानों का उसमें समावेश नहीं हो सका । आरम्भ में प्रस्तावना भी नहीं है । उदास ने अपने प्रसंगीत के आरम्भ में कृष्ण की गौकुल विषयक चिन्ता तथा गदाधर गौप गौपिकाओं, माता पिता आदि उनके प्रति उनके प्रेम का प्रकटीकरण कलियाँ नन्द करीर पर,^४ पुनः उदय गौहि हृदय को उवि नहीं दितराय,^५ तथा --

नीकै रलियाँ जसुमति मंथा ।

जायेँ दिन बार पाव में हम खर दौड मंथा ।




जा दिन ते हम तुम ते पियुरे काहु न क्यौं कन्हैया ।

कलहुँ प्रात न कियौं कलैया साँक न पान्हो खैया ।

कलियाँ जाय नन्द बाबा उँ निपट निहुर पियकीन्हो ।

हर व्यास पलुवाय मनुपुरी बहुरि उदेश न जीन्हो ॥

आदि पदों से किया है । कृष्ण के हृदय की इस पाशकी का नन्ददास के प्रसंगीत में उदया अभाव है । उसमें अतिरिक्त उदय का अंतर्गत, कृष्ण का उदय के अंतर्गत

-
- | | | | |
|----|-----------|---|-------|
| १- | पुरे जागर |  | (समा) |
| २- | " |  | (समा) |
| ३- | " |  | (समा) |
| ४- | " | | (समा) |
| ५- | " | | (समा) |

मिटाने के लिये उसे ब्रज मेवना, नन्दा, यशोदे तथा गोपियों का संदेश, कुंजा द्वारा मा पत्र मेवना, उद्यम की ब्रज यात्रा, उद्यम का ब्रज प्रवेश आदि अनेक बातों को पृष्ठ भूमि के कारण ब्रजदास के प्रमत्तता में क्या प्रकाश की मा महत्त्व मिला है। उद्यम के ब्रज प्रवेश और गोपियों के उन्हें दूर से देखकर कृष्ण समझने का कैा मनोवैज्ञानिक चित्रण ब्रजदास ने दिया है। गोपियों की, उद्यम की आते देखकर क्या अवस्था होती है, यह दर्शनीय है :

कौण जायत है तन त्याग ।

वैसेह पर वेखिये रथ बैनि, बैखिये है उर दाम ।

बैसी हति उठि लेखिये दारि दोहि जग गृह काम ।

रामे पुत्र, नन्दगद् मर तिहि दन गोवि जे अतिराम ।

एतनी कहत जायगये जग्याँ रज ठगी तिहि जाम ।

ब्रजदास प्रभु ह्याँ क्याँ जाई बने कुंजा रज त्याग । १

गोपियों का पसंदे उद्यम की कृष्ण समझकर बुझित और नन्दगद् होना तथा पीछे उनके त्याग पर उद्यम की पाक, निराश होना और अपनी लीफ और उपास्य की प्रकट कर कैंा त्यागमात्रिक और मनोवैज्ञानिक है।

२। प्रकार के महत्ता रूप के प्रमत्तता ब्रजदास ने उद्यम से संदेश दिखाया। ब्रज के प्रमत्तता की अनुकूलता का बहुत बड़ा है। नन्ददास से, उसके मित्रों, उद्यम की एकदम का समझते हैं, जैसे उपदेश की गठरी उनके तिर पर बंधी हैं और उसके बोझ से दबे हुए से एकदम हलका होना चाहते हैं। नन्ददास के प्रमत्तता में गोपियों की ३। मनोवैज्ञानिक चित्रण नहीं किया गया। उनका त्याग तो शीघ्रता के साथ उद्यम की गोपियों के आने तक में उतर देना है।

ब्रजदास के प्रमत्तता में गोपियों के हृदय की अनेक मार्मिक मोहकिया मिलती हैं। कृष्ण की पाती कि प्रकार प्रेमो हृदय के लिये। अथर्व मावना के कारण, आत्मन बन जाती है, देखिये --

निरुद्ध जेहें स्याम कुंदर के बार बार उग्रता लाती ।

उचिन जल कागद मलि मिलि के एहे गहें स्याम स्याम की पाती । (५७)

जिन कुओं में गोपियों कृष्ण के साथ वात्सल्य प्राप्त रहती थी, वे कुं बाज उन्हे जला डालने वाले आते हैं । बादल और मारे में न जाने कब की समुदा निभा रहे हैं । बादलों की गल्ले की वृद्ध जलाने के लिये ज्ञान कम है १ पर मारे तो जितना राँको उल्लाह उल्लाह फिर बढ़ते हैं । कृष्ण ने ही उन्हें फिर बड़ा लाया ।
उपलब्ध की पाँचि दर्शनाथ है --

हमारे मारे । मारे उ चर परे ।

कन गल्ले बरजे नहीं पानत त्याँ त्याँ रहत लरे ।

कहि एक ठौर वीनि उन्को पले मोहन लीच बरे ।

याही ते निरुद्धि काँ मारिन, हरि ही छोले । (५८)

गोपियों ने किसी ही पथिकों से अपने ऊँचे कहे, मरुतु उनके मनमोहन की कौरों में तो सबर नहीं लाया । क्षर की गोपियों की जारों हरि दर्शन की प्यासी है । जातों ने भी उन्हें निग्रह कर रखा है । उद्यम पाहे तो वे अपना जिज्ञा के दुखड़े दुखड़े करके भी निर्गुण की रट ला सकली हैं, पर जातों का क्या करे --

मधुकर । हम जो कहा करे ।

मधुमाँ है गोपाँ कृपा के वायु तेन टरे ।

रचना मारि केहि नव लण्ड के, दे निर्गुण के लख ।

उन्की दिश तन्म बनि मानहु, जलियो नालो हाथ । (५९)

प्रतीक्षा का कुंदर उदाहरण देखिये --

मधुकर । ये नयना से हारे ।

निरुद्धि निरुद्धि नन कम, नयन काँ प्रेम मग्न भर मारे ।

ता दिन तेनोयी पुनि नाजो, बाँकि परत अविकारे । (६०)

धुरदास हृदय के जितने मधान पारती है उतने नन्ददास नहीं हैं । नन्ददास मावना के किन्ने कुन्दा उदाहरण गुर ने प्रस्तुत किये हैं --

ऊर्वा । हम बाबु मर्द बहमागी ।

जिन अरियन तुम व्याम मिळीके, ते अरियो हम ठागि ।

तथा

ऊर्वा । बालागी मरे आर ।

तुम देते जनु मावना देते, तुम क्यताप नवाह । (२४२)

एक गोपी परदेसी को मित्रता में अपना ही बाँध । कुछ प्रकार लीलापूर्ण उद्गारों में व्यक्त कर रही है, देखिये --

उपरि आयी परदेसी को नेहु ।

तब तुम कान्ह कान्ह कछिटेरति कुलीत ही, अब ठेहु ।

काहे को हम सबस अपनो हाथ पार देहु ॥ (२८६)

और लीला की मूक ध्येता, मलिन और दीन दशा का जैसा चित्रात्मक वर्णन धुरदास ने किया है, वह नन्ददास के मन्दरागत में कही राजिने पर पा नहीं मिलता । कृष्णमातुल्यहारी राधा अत्यन्त मज्जा उत्पन्न करने लगी है । वह हारे हुए चुबारी की भाँति सदा अवाकुली रही जाती है । लिफट की मारी नली की भाँति उसका बदन झुमलताया हुआ है । वह जान्ती जो कृष्ण को के लीने से एक बार पीग गई थी उसे उस पलने के कारण हो बड़ी प्रिय हो गई है और वह उसे बुलवाती भी नहीं है । उसने ने ली जाँ ऊँचेर लाकर उसे दिया है, उसने ली वह मूक बँसी हो ली गई है ।

दिन रात लीते जागत गुर की गोपियाँ को कृष्ण को बाध बताती हैं । स्वप्न में भी उन्हें बँन नहीं मिलता । स्वप्नगत मिलन भी उनकी विरह वेदना को पहाता ही है । चर्क के प्रतिविम्ब दर्शन और स्वप्न मिस मित्र विवाला के स्मृति पटल पर ये विम्ब को मिटा देने की उपमा से धुरदास ने माँ और कला

का निम्न पणित्यों में एक अद्भुत उत्कर्ष रूप का सम्बन्ध स्थापित किया है, वी हिन्दी साहित्य में प्रारंभ है --

ज्यों बर्फ़ प्रलयिम्ब दैलिह्वानकी जिय जा नि ।

धूर, पवन निव निवृत्ति विवाता वपन जियों जल जा नि ॥ (२८८)

~~धूर-पवन-विवाता-वपन~~
धूमिल और पश्चात्ताप का एक सुन्दर उदाहरण देखिये --

मेरे मन इतनी धूल रही ।

ये बस्तियाँ शक्तियाँ जिति राजों की नदजाँ कहीं ।

हर दिनच मेरे मुख बार में कामयति दहों ।

देति लिहें मे मान दियाँ वसि जाँ वसि गुला गहों ।

जोवति अति पदितति राधिका मूर्ति नरनि ठहो । (२८९)

स्पष्ट है कि नन्ददास कैमरगौत में उभयुक्त या पूर्ण प्रयोगों और परिस्थितियों को अपना अपना है । उसमें माता के पातक्यपूर्ण हृदय का भी ज-लोकन नहीं होता । धूर के प्रमरगौत में माता यशोदा देवकी के नाम की उद्देश्य मैत्री है, उसमें यशोदा के हृदय कोमलता काकार हो रही है --

तुम तो ऐसे जानतिथि हूँ हाँ तूरा मोहिं कहि बाये ।

प्रात उठत मेरे जाँ उदैतेहि मायन लोटी माये ।

अब यह धूर मोहिं निजिवात, यहाँ रहत जिय जाँव ।

जब मेरे जलक उदैते जाँल हूँ है करत संकोप ॥ (२९०)

इस प्रकार धूर के प्रमरगौत में गोपियों के बलितरुत नन्द, यशोदा, कुंवा राधा वादि से सम्बन्धित प्रयोग हैं । नन्ददास ने इस प्रयोगों को छुड़ा ही नहीं । उसलिये उनके प्रमरगौत का मुख्य उद्देश्य उद्यम गोपी ज्ञानद्वारा ज्ञान और योग पर पुष्टि काग्रीय पणित की स्थापना करना हो रहा है ।

सुरदास के प्रेमगीत में मधुरा माधुर्य जाते हुए उलझ जाते हैं। यशोदा जी कृष्ण के लिये मरे बैठी हैं, उससे प्रेमभाव की कितनी माधुर्य व्यंजना हुई है --

कहियाँ जसुमति को जासीस ।

रहौ जहाँ पर तहाँ जा छिड़े, जाँचौ कौटि धरीस ।

सुरदास दौं दाँवना भुत गरि, ऊँचाँ धरि उँह लोस ।

उँह भुत लौं उँहरी सुरमिन लौं, जौं ध्यारी जगदीस ।

नन्ददास के प्रेमगीत की कुछ अपनी विशेषताएँ अवश्य हैं। वे एक सुन्दर लम्बे काव्य हैं। नन्ददास ने उसे प्रेम बचन बनाकर एक व्यंग्यलिखित रूप दिया है। सुर में यह विशेषता नहीं। दूसरे, नन्ददास के प्रेमगीत में पौरुषिक लक्ष्य का भी महत्व है। नन्ददास ने शृणु निर्गुण तथा ज्ञान, योग और मोक्ष के बाद विवाद को पर्याप्त मनोरंजन बनाने का प्रयत्न किया है। उनके प्रेमगीत में पुष्टिमायिक पवित्र का स्पष्ट रूप से प्रतिफलन हुआ है।

सुरदास और नन्ददास दोनों के प्रेमगीतों में पवित्र का ज्ञान योग से बहुत विद्य किया गया है। पर दोनों की प्रणाली में अन्तर है। सुर की प्रणाली में सीधी बात है तो नन्ददास की प्रणाली में अत्यन्त लीनता। सुर की गीतियाँ सरल सुस्पष्ट हैं और नम्र हैं। वे अपनी कोमलता, विचित्रता और तत्त्व अन्तरांग से ही उलझ जाते हैं। नन्ददास की गीतियाँ में कुछ तात्कालिकता पाई जाती है। वे जहाँ-जहाँ जाते हैं जिन पालकी, मरत कहें पालकी बादि में रहने में नहीं विचरती। कहीं कहीं वे अपनी उचितता में क्यादा से भी दूर चली जाती हैं। जैसे--

कुपना तीरन जाउ दियो लीनन को देल ।

सुरदास की गीतियाँ कभी ही बदलीवत रहती हैं और उनकी उचितता कृप्य पर प्रभाव डालती हैं। वे उलझ जाते हैं नहीं बल्कि नाना उलझ पाए अपने पावों

का कोप है जो बराबर व्यक्त करने से मो नहीं घटता । उनके पास कहने का बहुत है, और वे बहुत कुछ कहते रहने पर भी अकम्पुष्ट रहती हैं ।

यद्यपि भुरदास और नन्ददास दोनों के प्रसङ्गीतों का आधार भाग्यत है, तो भी उनके उद्देश्य, प्रश्न और साहित्यिकता में पर्याप्त अन्तर है । भुरदास और नन्ददास के युग में ज्ञान मार्गीय निर्गुणवादियों और प्रेम मार्गीय सगुणवादियों में बड़ा संघर्ष चल रहा था । अतः उन दोनों ने अपने प्रसङ्गीतों के प्रणयन का उद्देश्य, भाव्यात्मक जो है ज्ञान, योग और भक्ति का वाद विवाद दिलाकर सगुण मार्गीय की प्रतिष्ठा और ज्ञान मार्ग और निर्गुण का उच्छेद करना लिया ।

भुरदास और नन्ददास का प्रेम व्यापक भक्ति को अपने प्रसङ्गीतों में प्रतिष्ठा करने की भावना भाग्यत ने ही मिली है । भाग्यत से भी दाद में उच्च गोपियों की कृष्ण के प्रति भावत का आदर्श मानने लाता है । वही भी योग तथा ज्ञान आदि की भावना पर गोपियों की प्रेम भक्ति की प्रतिष्ठा स्पष्ट है । गोपियों के प्रेम भक्ति से प्रभावित होकर हाभाग्यत के उच्च भी गोपियों की वरणा रण की आशा करने लाते हैं । भाग्यत के उस भाग्य का अनुकरण भुरदास और नन्ददास दोनों ने लिया है । दोनों के उच्च गोपियों की भावत से प्रभावित होते हैं और कृष्ण के सम्मुख जाकर स्वीकारते हैं कि गोपियों के प्रेम के जाने उनका ज्ञान कुछ है । भुरदास के उच्च मधुरा उठने पर कृष्ण के सम्मुख कहते हैं --

भावत । सुनो गुण का नेम ।

सुनि हम ८ भाग देखा गोपिकन का प्रेम ।।

हुर उनके मजन जाने जो काको जान ।। (प्रसङ्गीतसार ३८३)

नन्ददास के उच्च भी उही भांति कहते हैं --

अन्य अन्य से जाँग मजत हुरि काँ जे रहै ।
हुरि काँज भिनु रहै प्रेम भावत है कहे ।
मो जाँग न्याय काँ जे मय हो जयायि ।
अने जान्यो प्रेम प्रेम की उरत न जाय जायि ।।
ध्या प्रेम करि मरुयो । (६२)

इस प्रकार प्रसंगीत में ब्रह्मास और नन्ददास दोनों ने पूर्णपूर्ण भावत को प्रतिष्ठा की है । दोनों ने ज्ञान, कर्म और योगदान तथा निर्गुण को ज्ञाना पर अगुण पुष्टि भावत को प्रतिष्ठा का निदान है ।

ब्रह्मास जो के उच्च वेदों का प्रथम पुरुष है तो अपने पक्षों उनका भेट गौपियों के ही लोका है । गौपियों द्वारा वे ही कृष्ण वेदा जाकृति, वैष्णवा, और रथ जहाँ उच्च को जाते देखती है । इस प्रकार ब्रह्मास जो ने अपने प्रसंगीत में भावत को लोका गौपियों उच्च ज्ञान को एक पृष्ठभूमि त्वा को है किन्तु नन्ददास जो ने गौपियों उच्च ज्ञान को ही महत्व दिया है । अतः वे जाते प्रथम पुरुषों दिखते हैं और गौपियों के बिना और पुनिया रूपों जाय विवाय आरम्भ कर देते हैं । नन्ददास के प्रसंगीत का उद्देश्य तो अद्वैत ज्ञान मार्ग का सफल और प्रेम भावत का निष्पन्न है, किन्तु ब्रह्मास को लोका कृष्ण के लोका अग्रिम से उच्च प्रथम पुरुषों की पृष्ठ भूमि बिल्कुल नहीं है, केवल बाद में कुछ जोम लाना कृष्ण का आदेश बताया गया है । उच्च ज्ञानोपदेश के लोका में ही कृष्ण का आदेश करते हैं । गौपियों उच्च ज्ञान ज्ञान नन्द का उद्देश्य है । अतः उन्होंने नन्द और ब्रह्मास को नन्द दशा का विनोद नहीं दिया ।

नन्ददास का प्रसंगीत आरम्भ में ज्ञाना पर है । प्रायः एक एक पक्ष में लक्ष्मण उच्च प्रत्युत्तर करता है । जहाँ भावत को गौपियों गौपियों गौपियों गौपियों है, कृष्ण के प्रेम में पूर्णतया लगी हुई है, जहाँ ब्रह्मास को गौपियों ज्ञान और अज्ञान के परिपूर्ण है तथा नन्ददास को गौपियों बुद्धिवादीतक निपुण नाशिया है । नन्ददास को गौपियों यद्यपि ब्रह्मास को गौपियों को गौपियों भावत और प्रेमभा भावत और जहाँ कारण ने अपने प्रेम विनोद पुरुष के प्रेम के लोका में उपस्थित करती है, किन्तु उच्च ज्ञान ज्ञान ने लोकातक लोका द्वारा भावत को परास्त करती है । भावत उच्च के कारण आदेश पर भावत का उपादान कारण लोका से उच्च जातम हूँ, यद्यपि अज्ञान हूँ, लोका में ही लोका विनोद नहीं लोका -- गौपियों के लोका लोका लोका है । पर अब नन्ददास को गौपियों के लोका उच्च यह आदेश देते हैं --

ये कुम्हते नहिं दूरि ग्यान को बाँझिन देता ।
अलिखि लिख मरि पुरि जे वन जनहि प्रियेता
लौह वा बाघान में, जे थल मरे अकास ।
उपर अवर वरतत खैं, गोति ब्रह्म परकास ।

धुनाे पुन नागरी (७)

तब गोपियों का कलुष हटना तो दूर रहा, ये उसने जो अपने शुद्ध हृदय की गाथा वाक्यपूर्ण उक्तिओं से सुनाती है । वास्तव में नन्ददास के उद्यम और गोपियों का उपाद-
सान योंही निर्गुण वादी पण्डित एवं प्रेमागीत शृणुवादी मन्त्र का शास्त्रार्थ का हो
गया है जिसमें प्रेम पण्डित को जिय लोता है और ज्ञान मार्गी उद्यम उनसे प्रभावित होते
हैं ।

नन्ददास जो के प्रमत्तों में गोपियों की लक्ष्यता की अन्धता में उनके श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन का दर्शन किया गया है । भागवत का जो गोपियों में कृष्ण लीला स्मरण में वात्सल्य प्रसूत हो तो अत्यन्त हो जाता है परन्तु कृष्ण दर्शन की यह क्षमा नन्ददास को नौलिक क्षम है, जो न भागवत में है न सुरदास के प्रमत्तों में ।

भागवत में नन्द यशोदा और गोपे गोपियों ने कृष्ण की उपहार में है, परन्तु नन्ददास ने कोई ऐसा उल्लेख नहीं किया । सुरदास के प्रमत्तों में जो माता के उपहार मेंने का वृत्त मनोवैज्ञानिक दर्शन पाया जाता है --

कार्यों जमुपति की बासीव ।

तुलै जहाँ पर तही लालि, जो नौ कोटि बरौस ।

मुरली दर्द दोना धृत मरि, जपौ बरि ले लीव ।

उह धृत तौ उम्हो मुरमिन कौ, जो प्यारी बगदीव ।

लम्ब-व मावनागत प्रेम का कैसा मध्य उदाहरण है । माता पुत्र के लिये जो वस्तु मेंगता है जो उसके लाल को प्रिय और चिकर धी । मुरली का मेंगना कितना मार्मिक है । सुरदास की गोपियों ने जो अपनी मरु का मनाये रथ लम्ब-
मावनागत मेंगता है, जो कि बहुत मनोवैज्ञानिक और मार्मिक है --

जहाँ जहाँ रहे रज्ज करी तह तह जेहु कौटि सिर पार ।

यह जहाँ से हम दैत छै सुनु म्यात सरी जनि वार ॥

नन्ददास ने इस प्रकार का कौटुम्बिक नर लिखा ।

इस के प्रसंगीत में प्रसंग को देखी ही उपमान मान लिया गया है वधना या कहना चाहिये कि प्रसंग मरने से ही उपस्थित है, किन्तु नन्ददास ने, मान्यत के अनुसार ही, प्रसंग का आगमन आतीलाप के बीच में होता है --

ताहि दिन एक मन्त्र कहूँ तो उड़ि तह जायौ ।

जुन जनिता के जुने मोटा जुनेत हनि जायौ ।

देख्यौ चाहे पाय पर जलन कमल दह जा नि ।

सो मन जानी को मनो प्रयमहि प्रार्थ्यौ जानि ॥

मान्यत में उक्त ने जल से लौटकर कृष्ण को जलवस्थिति को प्रेममयी मयित का उद्देश, जैसा उन्होंने देखा था, कह सुनाया । उसके बाद नन्ददास ने मने को जो भी सामग्री दी थी, उस उनहीं, मनुदेव जी, बलराम जी और राजा उग्रसेन को दे दी । नन्ददास के उक्त कृष्ण पर कुछ लौटे हैं और कहते हैं --

कहु निरमयता ज्याम को करि श्रौंति दौं नैन ।

कहु जलननिता प्रेम का वीरि रस मरे नैन

सुनो नंद जाहिजे । (७०)

कृष्णामयी रसिनी है तुम्हारा सब सुनो ।

तबही लौं करी जल जबहि लौं बोवा सुनो ।

मैं जान्यौ प्रज जायके निरदय तुम्हारी अप ।

जे तुमको अवलम्बत तिनको पैलौं कृप ।

कौन यह दर्प है (७३)

इस प्रकार नन्ददास ने उक्त के पथरा जाने के नरगत का प्रकीर्ण दुरदास की अनेका अविक विस्तार के साथ अपने ऐकान्तिक पत्रों को स्पष्ट करने के लिये, वर्णित किया

है । सुरदास के प्रसंगीत में उच्च कृष्ण के समान प्रणयियों की कृष्णपूर्ण दशा का वर्णन और उनके प्रेम की प्रशंसा तो वन्ददास करते हैं, किन्तु नन्ददास का प्रणय विस्तार उनमें नहीं है ।

यह सुरदास का प्रसंगीत नन्ददास के प्रसंगीत से बड़े ही रूपना है । दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट द्योतित होता है कि नन्ददास पर सुर की रचना का बड़ा जरा में प्रभाव पड़ा है । नन्ददास के प्रसंगीत में कई स्थानों पर सुर के मानों को माना गया है । पर उपद्रव में कहा जा सकता है कि सुरदास के प्रसंगीत में हृदय का प्रधान है और नन्ददास के प्रसंगीत में बुद्धि का ।

नन्ददास की रचनाओं में जल माध का अधिक्यकृत हुई है, उसका अध्ययन भी कृष्ण रति से है । व्यास सामान्य पाठक के लिये यह लौकिक दुःख से निम्न नहीं है किन्तु नन्ददास ने अपने समान माध प्रकृष्ण का समर्पित किया है । प्रकृष्ण यश रक्षित माध को नन्ददास ने नीतिविरुद्ध प्रेक्षित नहीं माना और कहा कि ऐसे काव्य है कोई जानन्द उपलब्ध नहीं होता --

तुम जब रस जिहि कवि न होई ।

कति चित्र सम चित्र है सोई ॥

हरि जब रस जिहि कवि न होई, तुम कवन कहत तहहि ।

सु कष्टतरि ओ बुद्धि, और को सु आहि ॥ १

सुरदास और नन्ददास दोनों हीमूलक मन्त्र थे और उन्होंने गति और कान्त्य दोनों का अपूर्व समन्वय किया है । नन्ददास ने कृष्ण रति का भी वर्णन किया है, यह लौकिक रति से निम्न नहीं है । लयों और धियों का प्रायः बड़ा प यहाँ भी उपलब्ध होता है जो सुरदास के ग्रन्थों का विशेष है । किन्तु पण्डित साधारण होने के कारण नन्ददास उसे मुरार से रूप से ही ग्रहण करते हैं । मुरार रस कद का प्रयोग स्पष्ट प है नन्ददास नेकही नही किया है । उन्होंने उसके समानवादी

रुच उज्ज्वल रस का प्रयोग किया है । रास पञ्चान्यायी ने गांधी कृष्ण मिश्र वर्णन के बाद वे कहते हैं —

यह उज्ज्वल रस पाऊँ कोई वतन के पार ।

सावधान हूँ पहरों यदि लौं जिनि कोई ॥ (२)

उहाँ स्पष्ट है कि नन्ददास मयत के रूप में ही काव्य रचना में प्रवृत्त हुए थे । यही बाद सुदास का ने निष्पत्ति में लगी है । उ० स्वामी प्रवाद द्वितीय की यह उक्ति इस बात की पोषक है -- सुदास या नन्ददास कविता नहीं करते थे, एका गाने थे । वे साहित्य की दृष्टि करने के उद्देश्य से नहीं गाने थे, गाने थे शायना के लिये ।^१ दोनों कामायनी शायना ने उत्कृष्ट साहित्य की जनम दिया है । उसका कारण यही है कि उन्होंने मयत भाँ कीवर्धना को ही, उसका प्रतिपादन नहीं दिया है ।

नन्ददास और सुदास दोनों के काव्य में मयत के मृगतार प्रेम लक्ष्य का चयन ही है । नन्ददास का सम्पूर्ण काव्य प्रेम ही अनुप्राणित है । उन्होंने प्रेम का जो स्वयं स्वरूप किया है उसका सम्पन्न यादन और सौन्दर्य ही है । सम्भवतः ये दोनों उनकी प्रकृति के अभिव्यक्ति थे । जन भुक्ति है कि वे जीवन में सौन्दर्य का अनुमान करते रहे । स्वयं ही नाथ जी ने उन्हें कविता अभ्युपगता कृति के रूप में दर्शन देकर प्रताप किया और जिसे शायना में ही रस हुए वह सौन्दर्य का प्रसार ही था । उहाँ कारण से मयत की अपेक्षा अधिक व्यक्ति कहें जाते हैं । प्रेम सम्पन्नता अनेक मार्गिक उक्तियाँ उनके काव्य में मरी पड़ी है ।

उदाहरणार्थ

गह्वरों तु मन प्रिय प्रेम रस क्यों है निरुल्लास ।

कुंजर ज्यों बहते पर्याय दिन दिन अधिक लार ॥

१- रास पञ्चान्यायी ५-४०

२- सुर साहित्य, पृष्ठ १२६

कह्यो चरति पुनि नहि कहत, रहति डरपि उहि पाय ।

मोक्षन मुरति दिय ले, कहात निकहि जिनि जाय ॥^१

यहाँ तक कि काव्य रचना सम्बन्धी उक्तियाँ को लपेट करने में उन्होंने भी उदाहरण प्रस्तुत किया है, वे माँ उनके मधुर प्रेम के परिवायक हैं --

रस बिहिन जे अचर सुनहीं । ते अचर पियारि निज निर सुनहीं ॥

बाज स्मित कटाक्ष जे लाजा । अंगरे बालम के किहि काजा ॥

ज्योतिष्य सुरत समय धितकारा । निपाज जाहि गौ बहिर मलारा ॥

कनि अचर जे तनि कटाक्ष, स योहु सुख जौ जिय जाई ॥

नन्ददास का यह रस सम्बन्धक दृष्टिकोण उनकी रचना में सर्वत्र व्याप्त है । अतः नन्ददास के काव्यका मानना । उनमें रसिक रूप का ही प्रकाशन है । उनमें प्रेम काल का व्यंग्यना एक ओर उनकी मधुर उपासना की ओर और दूसरी ओर प्रेम लीलाओं के माध्यम से व्यंग्यना की कृष्ण रति को सूचक है । उनकी मधुर उपासना और भी कृष्ण रति मानसोद्भवा की सर्व सहायिका है । यही कारण है कि नन्ददास के काव्य में माय का उल्लेख सर्वत्र व्याप्त है । उही उल्लेख के कारण ही वे सर्वत्र अर्थों से रसिक हैं ।

सूर ने कृष्ण को पतित पावन और अपने आपकी ही उस पतितन की टीकी कहा तो महाप्रभु प्रलम्ब जाँहे, सूर हृय के ऐशों धियियात काहे काँ है, तभी सूर को दिशा बदल गयी । मानवान कृष्ण अब उनके लिये सदा कृष्ण बना, बाँ कृष्ण बना, पाँ होते सूर भी सुना कृष्ण बना और तब का पतित सूर अब रसिक मन्त्र सूर में परिवर्तित होता चला गया । पाठकों के सामने सूर के कृष्ण के तीन रूप आये -- सदा, बाँ और पाँ होते सूर भी सुना । अब तीसरे रूप में काव्य का अन्तरांग जाँवित्य की सीमा को भी लाये गया । कृष्ण का यही तीसरा रूप काव्य क्षेत्र में अंगार कहलाता है और पतित के क्षेत्र में मधुर रस ।

एत प्रकार सुरदास और नन्ददास दोनों ने जितनी सरसता वाल्य काँठ और यमिन काँठ को लीलाजो में पायी है उतनी अन्य किसी काँठ की लीला में नहीं । अतः इन्होंने उन दोनों काँठों को लीलाजो के गान को अपने काव्य का लय स्वीकार दिया है । अतिरिक्त दोनों ने वैराग्य सम्पन्धी पद भी लिखे हैं । अतः उन दोनों कविपरी के माय व्यञ्जना के तीन जोत्र हैं -- वात्सल्य, मधुर प्रेम और वैराग्य, एत तीन जायारों पर ही उनकी माय व्यञ्जना की तुलना की जायेगी ।

वात्सल्यावस्था या पतस्र रति

सुर के काव्य में वात्सल्य का विस्तृत वर्णन किया गया है । विषय की दृष्टि से कवि ने इस वर्णन में बड़ी कुसुमदर्शिता दिखायी है । वात्सल्य के सम्बन्ध में झोंटी से झोंटी बात भी नहीं छूटी है, समा बातों का, समा दृष्टियाँ से उन्होंने विशद वर्णन किया है । माता भशाँदा, पिता नन्द और अन्य वयोवृद्ध ग्रामीणों -- यही तब कि राह चलते पायकों -- के सुख और प्रफुल्लित हृदय में बाँक कृष्ण की धुन्धर और मनोमोहिनी हृति एवं वस्र और मनोहारों का ज़ोड़ाये, दैतकियों सहज स्नेह उत्पन्न होता है, उसका अत्यन्त लज्जाप्राप्त, सरल और मनोहर चित्र व्यंकीव सुरदास अपने सामने रखने में सफल हुए हैं ।

सुरदास का समस्त वात्सल्य वर्णन के जोत्र में नन्ददास ही गया, हिन्दी का कोई भी कवि नहीं कर सका । नन्ददास ने भी कृष्ण की वाँक झोंटाओं का वर्णन कैद पदावली में प्राप्त होता है किन्तु मातृहृदय की वात्सल्यपूर्ण उक्तियों को मँडर, श्यामलगाँ और माया दलमस्कन्ध में भी मिल जाती है । यद्यपि नन्ददास के काव्य में वात्सल्य भाव का उतना विशद विस्तार नहीं है जितना की सुरदास के काव्य में उपलब्ध होता है किन्तु योंही से पदों में नन्ददास की सुस पर्यवेक्षण शक्ति का अच्छा परिचय प्राप्त हो जाता है ।

शूरादास ने कृष्ण जन्म की पुर्न हो मोटे समस्त को एक काल दिलाकर तिष्ठ कर दिया है कि वात्सल्य का नाम उतना नैसर्गिक है कि यह पापकु और लज्जित माता पिता के हृदयों में हो नहीं, ब्रज स्त्री और निष्ठुर हृदयों में भी सुमनता से समझ सकता है और उसके लिये यह भी जान्यता नहीं है कि जातक अपना ही है । कस के कारणों में देवकी आपछा वाला जन्मता है । प्रतिज्ञाकार - पुनर्वसु उल्लेख के पास है जाते हैं । मोटे मोटे समजात शिशु को तत्काल जन्मता और अन्तर्-वाता कस का काल हृदय में उतने वात्सल्य से भर जाता है कि यह वसुदेव की जीता कर सब अपराध क्षमा कर देता है --

पहलीपुत्र देवकी जायी, ते वसुदेव दितायी ।

वाला दोस कस होति दीन्यो, सब अपराध क्षमायी ॥ १

श्री कृष्ण के जन्म पर शिशु को स्नान के लिये देवकी मिली ही जाती है । जिस माता के सात पुत्र जन्मते हो मार जाये गये हों, उसके हृदय का जाटव के जन्म पर विज्जना निश्चिदे बहुत कष्ट है । वसुदेव वाला कृष्ण को गोकुल ले जाने के लिये तयार होते हैं, तब उसको स्नान क्षामना करने वाली माता देवकी शिशु के विह्वल हो कर नला कर पाती । उसके मुख से स्वतः निकल पड़ता है -- हाँ, ऐसे सुत है विह्वल के दुःख है तो यही जल्दा था कि कस जिवाह के दिन भी मुझको मार हाउता -- ।

तब पत कस राकि राख्यो पिय, क बाला दिन काहे न मारि ।

काह, बाकी रसो सुत पिछी, सो कैसे जीवै मरतारि ।^२

वसुदेव जो अपने बालक को गोकुल पहुँचा जाते हैं । नन्द और यशोदा बालक कृष्ण को अपने औरत पुत्र की मोति स्वीकार करके हैं । जाण पर मैं समस्त ब्रज में, यही तब कि मथुरा में भी, यह बात फैल जाता है कि नन्द जो के पुत्र हुआ है ।

जन्मोत्सव ना जानन्द ब्रज में अर्चन हो गया । समस्त ब्रज में नमोजावा होने ली,

१- सु. भाग. १, दशमस्कन्ध, पद ४

२- शूरादास, ११ पद ११

यथाज्ञे अजने उन्हें और दान देना आरम्भ हो जाता है । पुत्र को जो क्रियाएँ अपना काम काज लाकर पापक कृष्ण का मुँह देखने की लाया है नन्द जो केवल पुरुष नहीं । पुत्रों में अपना दैनिक कामों को कर उत्सव मना रहे हैं । स्वयं पुत्रों परस्पर कह रहे हैं —

आज हम दोऊ बँ जाँन जाह ।

ढाँटा है के मर्यामहरि कं, कहत पुनारुं पुनार ।

सबहिं आपो पै मर्यां कोलाहल जान्य उर न समार ।^१

उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने कृष्ण जी की पाठ लेलाओं का दर्शन करते हैं । ब्रह्माजी की कृष्ण के अटपटात कवच का बोट भी पुनर्त है और उनको खिला रिया भी पुनर्त है । यह सब देखकर माता का हृदय पुनः उन्हे ही भर जाता है । उनसे मन में विभिन्न प्रकार की अगिलापाये जाग्रत होती है :-

नन्द वरनि जान्य मरी पुत ल्याम खिलार ।

कयहिं पुटःअनि बल्लिं कहि विमिहि मनार ।

कयहिं दलुलि के पुन को पैसां उन नैननि ।

कयहिं कनःपुन बोलिहै पुनिलो उन नैननि ।

बुझति कर नम अवर दू, उटकति लट बुझति ।^२

किन्तु अगिलापाये का अन्त यहाँ नहीं हो जाता । वास्तव में यहाँ उनका आरम्भ है । दिन दिन ऐसी अनेक अगिलापाये हो जाती जाती है ।

ब्रह्माजी की पाठ लेलाओं और माता के हृदय का कितना क्रम जान था, यह सब जैसे मरी मोति स्पष्ट हो जाता है ।

नन्ददास ने माता के हृदय को आश्चर्यपूर्ण अज्ञान का कवि ने परिचय कराया है । उसका मुरी पाना बालना -- मानसिक आश्चर्य का लक्षक है । पुत्र

सामान्यतः प्रत्येक क्रिया उसके लिये उसका कारण है शारीरिक कृष्ण उसके लिये उसका कारण है । और जब उठकर वे छुरानी बानी में बोलते हैं तो माता को सब कुछ पता हो जाता है । ताप पदार्थों का प्रयोग बालकों को बहुत सब कुछ आकर्षित नहीं कर पाता । समयानुसार उसके लिये वह अल्प अल्प आकर्षक बनते जाते हैं । बालक को यह जन्तु प्रकृति को कार्य में पलवाना है । इसीलिये माता जागरण के अन्य पद में प्रातः काळ के शीतलता का वर्णन करने के साथ साथ छाया में जाकर बालकों के उज्ज्वल वस्त्र धारण कर द्वार पर जाने को कहती है —

निरैया सुहवानी, हुन चकरे कायानी, कहत जहाँदा रानी जहाँ मरे जाय ।
रानि को फिरन जाना, सुसुदनी, लहुवानी, कमल चिकरी दानि मथल बाय ।
हुवरी, अरिदाम, लोक उज्जल वसन पहार, द्वार लगे टैल है गुपाल ।
नन्ददाग बालिखो उहाँ, पैहाँ मारिखो, जग सुख देखन चले जौवन पिपाल ॥

बालक स्वभाव का रेशा है विषय काय में होने के लिये जाते हुए शोकपूर्ण के मजिन् ५ कां देखकर किया है । माता चाहती है कि अन्य बालकों के समान वह भी सुखी बनकर जाये किन्तु उनमें से होने को उतावली है, उसके कारण वे नहीं मरते जाते हैं ।

जागरण और शीतलता ऐसे अन्य प्रयोग हैं, जिनमें बालक का शारीरिक अवस्था का परिचय मिलता है । अस्तुतः इस अवस्था में स्वर्ण बालकों को बहुत कुछ करने के लिये प्रेरित करती है । शोकपूर्ण के अन्य साथी जिन कार्य को करते हैं -- वे स्वयं उन्हें नहीं करते । जहाँ उसके लिये वे अनेक प्रकार से बाजोचित छे का प्रदर्शन करते हैं --

मेरी दारी के डोटा अब धोटे, तेज लोटे रो करत बन येवा,
नन्ददाग प्रभु हात, लोटत जग मरत नैन जल जलुमति छेल पड़ेवा ।^२

यहाँ मिहगिहाना, दुमि नर उटना और जाजोमे क्यु पर जाना -- ये क्रियाएँ माता को प्रभावित करने की सामान्य बालकचित वेष्टा है, जिनका उल्लेख कवि की कृप

१- नन्दग्रन्थावली, पदावली ३२

२- वही ३३ २६

पर्यवेक्षण सहित का परिवारक है ।

हृरदास जो नै गावधारण और गोदोहन के प्रयोगों में अनेक नवीन उद्भावनाओं का है जिसमें पाल, सुलभ वपुष्ता और गधाओं के जीवन के बड़े मनोहर चित्र मिलते हैं । कृष्ण जो जब माता के गाय बराने का आला पागले हैं तो माता उसका विरोध करता है । सबसे पहला प्रश्न तो प्रतिष्ठा का है — पुत्र के स्थायी का पुत्र गाय बराने जायेगा । विरोध का दूसरा कारण माता का स्नेह है । हृ.दास ने अपने काव्यमें इस कारण का प्रधानता दी है । तोचर, माता का मन है कि कस के मों हृ. राजा के कस उसका अनिष्ट न करे । परन्तु कृष्ण के सामने इन तीनों बातों का कोई मुख्य नहीं है । उसने माता के सब तर्कों को उगार सरलता से दे दिया है । माता और पुत्र दोनों के तर्क इस प्रकार हैं --

आजु मैं गाय बराने जाँ ।

गुन्दावन के माँति माँति काल अपने कर मैं लैवाँ ।

ऐसी बात कहीं जनि वारे, वैसी अपना माँति ।

तनक तनक मा बलिँ कैई, आवत ह्वै राति ।

प्रात जात गया है चारन, पर आवत है साफ ।

कुम्हारों कस वदन कुम्हलैहैं, रगत वामाँहि माफ ।

तेर जामाँहि आम न लागत पूर नहीं कुल नैक ।

(हृरदास प्रभु कथ्याँ न मानत, पृथ्याँ आपनी टेक) ।^१

प्रश्न है कि कृष्ण का गाय बराने का शौक आतिर हुआ क्यों ? उसने छिने पधाओं और लैलें हैं, तब उसे गाय बराने में तो क्या लाभ दिखाई दिया ? उसका उत्तर है कि लैलें तो मैं बहुत ही गया हूँ, फिर मेरी समासाथा -- रँता, पैता, मना, मनसुला आदि -- जब गाय बराने जाते हैं तो मैं क्यों पीछे रहूँ ? अपना बात पूरा करते करते बहुत बुद्धि वालों का माता के स्नेह का ध्यान जा जाता है । यह सचिता है कि माता के विरोध के दो ही कारण हो सकते हैं -- एक तो यह कि मन जानें पर मैं मुला रहूँगा और दूसरी, मैं जाकर धनुना में नहीं जाऊँगा । अतः दोनों रँताओं का समाधान भी वह स्वयं ही कर देता है --

बोदिन, मोदिन दै दयि बांधारि, पूछ जे ते सैहाँ ।

सुरदास ते साहि जसुन जे सोह देहु तु नहेहीं । १

माता ने फिर मो जय जाता न दो ते कृष्ण रुपवाप व० दिया । यशोदा मोसर्क थी । उसने शीला से कृष्ण कोपकट लिया । उस समय बलराम बहुत नाम जाये । उन्होंने माता से कहा -- मेरे साथ रहे जाने दो, आज बल्की लौट जायेंगे । यशोदा को बल्की से कोई उत्तर न सुना । वेमन से माता ने पुत्र का साथ हाँदते हुए बलराम से कहा -- उसको देखते रहना -- ।

चरे जय गार बरानन मना० ।

हरो टेर सुक्त हरिकन का, दारि गये नंदजा० ।

फिरि एत एत जसुमति जाँ देखे, दृष्टि न परे कन्हारै ।

जान्यौ जात मना० जे दारुया, टेरति जसुमति वारै ।

जात बल्योगीयनि के पाई, बलदाऊ कहि टेरत ।

पाई जननी जायत देखी, फिरि फिरि स्तकाँ हेरत ।

बल देखी मोहन को जायत, स्ता फिरि सब लाई ।

भुँकी जाइ यशोदा रिध मारि, दाँउ मुज पकरे गाई ।

छोपर क्यूँ, जान दे माँ की, जावहिँ आज सवारै ।

सुरदास व० सौं कहे जसुमति, देखे रदियाँ प्यारै ॥ २

बालक कृष्ण के गाय बराने जाने की बात सुरदास ने कर पदों में लिखा है । गाय बराने मना० वा० यथा यथा प्रोत्साहयैरते हैं, उन सवसा बड़ा विशद वर्णन सुरदास जी ने किया है ।

कृष्ण को नांवारण के बलाने वाला जाकर सैलेने बुदने दिन मर कोई काम नहीं है । गायें बर रहते हैं, लड़कें खेल रहे हैं । उमर उमर पेड़ों पर चढ़कर फल तोड़कर खा रहे हैं । खेलते खेलते जब एक गये, तब घर से आया हुआ मोदिन करने

बैठ गये । इस समय छूत हात का, हाँस मोच का ज्वान नहीं है । मौजिम भी जग
 बंधा है । फिर भी जाना मापटी हो रही है । इसका कारण बाळ मनोविज्ञान
 के विशेषज्ञों की ही माहिर होगी । पर यह सही है कि अपने पाप से मौजिम में बल
 स्वाद नहीं जाता, जो अपने लक्षों की ओर देकर, उत्तम साथ में उसका हिल्ला
 झोका, नष्ट हो और दुर्ग ने दुर्ग होने पर जाता है । सुदास के काव्य में इस प्रकार
 के अनेक चित्र देखकर कहना पड़ेगा कि अपना पन्द आता है ही उन्होंने पाप मनो-
 विज्ञान का एक विशेषज्ञ का काम निरीक्षण अवश्य किया था ।

यन से निन्द प्रीति न्याय बाळ लेते हैं । सुदास अपना पन्द आता है उनके
 कौतुकपूर्णता की देकर लिखते हैं ।

लेखन स्वामि न्यायनि. लगे ।

सुख, उल्लास, ज. श्रीदामा करत नाना रंग ।

साथ तारी देत माजत, धर्म करि करि हाँड ।^१

जायियों की देकर स्वामि के मन्त्र से मोलेने काउकी उठी, बाळ भी साथ
 ही दाँडि बना । तब पड़े भा. पञ्चराम ने अपना बहुप्यन बताते हुए कहा -- स्वामि
 हम हाँडे ही । उन जायों के साथ मत लेता, नहीं तो बाँट ला जायेगा । पस्तु
 स्वामि कहां हुन्ने ला । उन्हें हाँडते २ हाँ उबर दिया -- जो हुम्मा का दाँडना
 जाता है, मेरे शरीर में का बल है जो उबर जब मेरी सुखी साथ मारे जा रही
 है, तब भी मैं न दाँडू ?

ब्रह्म हल्लार स्वामि, तुम जनि बाँट लाने गाँड ।

तब कहुँ, मैं दाँडि जान्ते, बहुत बल मो गात ।

मेरी जरी है आदामा, साथ मारे जात ।^२

सखा से बाँडलाकर स्वामि दाँडे । दाँडकर सखा ने कृष्ण की धु लिया ।
 स्वामि चोर उर, तो लो देरमाना करने । बाँडे -- मैं तो अपने आप सखा हो गया

१- सुरदास, पद २१३

२- सुरदास, दशमस्कन्ध पद २१३

था, तुमने छु लिया तो हमें तारीफ़ की क्या है ? इतना तुमने ही ख़याल
वाले हों पड़े । वैवारा कृष्ण ख़मा गया --

उठे चोँड़ि तबें धोदामा, बाहु तारी मारि ।

जागै हरि मादें जीवामा । पुरवाई ख़ाम ख़मारि ।

जानकै में ख़ुशैं ठाढ़ी, हुनत कथा जु मोहि ।

सुर हरि छीकत जग जौ, मनहिं कौनों कोह ।^१

लेते लेते बाजों के मागड़ पड़ने का एक और चित्र दर्शनीय है । कृष्ण ने
धोदामा के गेदे मारी । उस वक़्त बाज ने छुटकर अपने को बचा लिया और गेदे
जाकर गिरा काँदह में । यह स्थान था काली नाग का और यह नाग इतना
मथान्क था कि उसके विषय के प्रमाण उँ सुनना का जो भी विषय हो गया
था । धोदामा ने दौड़कर गोकृष्ण की कोट पकड़ी और साकलाफ़ कहा --
मेरी गेदे मोकर लीका तरह दे दाँ, नहाँ तो बच्चा नहीं होगा । तुम्हें और
जुक्तों का न समझना, मैं बड़ा टेढ़ा हूँ --

ख़ाम तबें को गेदे बजौ ।

धोदामा मुरि को बजायाँ, गेदे परा काँदह जाउँ ।

पाउ गहाँ तब कोट ख़ाम का, देहु न मेरी गेदे मोहौ ।

और क्ता जनि माँकौ जानौ, भीतौ तुम जनि को छिटाउँ ।

जानि पुष्कि तुम गेदे गिराई, अब कीन्है हो बनें कन्हारै ।

सुर तबें अब इत परस्पर, मरौ करी हो गेदे गवाउँ ।^२

कृष्ण ख़ाम प्रोपित होकर कहते हैं --

कोट जोड़ि मेरी देहु धोदामा ।

काहे को तुम रारि बढायत, तनर वात के कामा ।

मेरी गेदे जेहूँ ला बदरै, जाँह गहत ख़ाँधारै ।

जोटी बहाँ न जानत काहँ, करत बरावरि जाउँ ।^३

१- बागड़ पद २१३

२- पुरखानर दखनखन पद ५०५

३- पुरखानर पद ५२६

धूरास जी ने बालकों की सख प्रकृति और मातृ हृदय के स्वाभाविक प्रेम का जैसा दिग्दर्शन कराया है वह बेजोड़ है । बंकिम धूरास के वात्सल्य वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उस सम्बन्ध में छोटी से छोटी बात भी उसकी दृष्टि से नहीं छूटी है । कवि जानता है कि पुत्र की छोटी छोटी बातों में माता पिता का मन मुग्न कर लेता है । वही है उसने बालक कृष्ण की बाउ लीला के सभी अंगों का सागोपाग वर्णन किया है । वास्तव में यह उसके क्लृप्त निरीक्षण का ही फल है कि उसके काव्यमें बालकों की लीलायें, उनके खेल, उसमें उनका उड़ना फगड़ना, मचलना आदि के चित्र एक और और माता के हृदय की छोटी से छोटी सम्मिलना, मायना, प्रसन्नता और कामना आदि के चित्र दूधरी और मिलते हैं । प्रत्येक बात में उसकी सुलझ सुलझी है किता सीमा तक की जा सकती है, परन्तु वात्सल्य के विभिन्न ढोंगों का उद्घाटन तथा तत्सम्बन्धी विभिन्न मानसिक प्रतियों के विशद वर्णन ने उनकी समता सुलझी क्या कदाचित कोई कवि नहीं कर सकता ।

दूसरी विशेषता है वर्णन की स्वाभाविकता और लीलाओं का यथार्थ रूप में वास्तविक चित्रण । धूर के वात्सल्य वर्णन की अन्य प्रमुख विशेषताओं की और से यदि जाले बुद्धि का ली जाय ताँ भी स्वाभाविक और यथार्थ चित्रों के कारण धूर काव्य का यह गुण चित्रण और सादृश्या लिनगो । कवि ने बालकैय चित्रण में इतनी क्लृप्तता और सुलझता दिखाई है कि पिल्ले लाम्पा चार ली बरों से माता यलौदा और बालक कृष्ण ने लीन होकर पाळ के सर्व्व दृश्य दर्शन का सा मधुर आनन्द दिया है ।

नन्ददास के वात्सल्य वर्णन में मानसता की अकेला विभाव फल का विस्तार कहीं अधिक है । उन्होंने कृष्ण जी के शीन्दर्य का वर्णन अधिक किया है । उनकी बाउ सुलझ चैष्टाओं का कम । श्रीकृष्ण के बाउ शीन्दर्य की देकर गोपियों का बार बार उसे देखते रह जाना कृष्ण के अतिरिक्त शीन्दर्य का उपेक्ष

है । स्वयं माता यज्ञोदा उनके लोन्दरके बारे में आशंकित हो उठती है -- कहीं नयर न लग जाय । जब प्रभार को आशंका माता के लिये स्थापनापिठ है और फिर यज्ञोदा को तो एक यही नियम है । जब आशंका का जानक भिक्षु, पशुपति का उन लोहावा में मिलता है वहाँ से जगुरा का नाश करते हैं । पत्नी, लुणावले, जालीय दमन आदि प्रकीर्णों में मातृ हृदय का यह मान बहुत उतरकर जाया है ।

भारवाह जी के काव्य में वात्सल्य भाव का विधान पदा की विहित किया है । परन्तु नन्ददास के काव्य में उक्त दर्शन नहीं होते । हृदय की पीड़ा का जो रूप अवशिष्ट रूप वनिष्ट के भाषा में उक्ति त होता है उसी के आधार पर पिरु जेदना का कुछ जाना उ पाया जा सकता है । नन्ददास ने विधान पदा केवल मधुर मान में ही प्रस्तुत किया है । प्रभार गीत में गौपिकों का विरह वर्णन है । वहाँ नन्द यज्ञोदा को चर्चा ही नहीं है ।

मधुर प्रेम

मधुर प्रेम की कल्पना नन्ददास की प्रायः सभी काव्य रचनाओं में हुई है । जन्म से कुछ में प्रभानुराग, मिलन और विधान मधुर प्रेम के इन तीन पदों का वर्णन है और कुछ में मिलन और विधान का तथा वन्दन में केवल विधान का वर्णन है । प्रभानुराग का पदार्थ हमें राजम आरं, जगमणि भोल और पना-ही में प्राप्त होता है । पदार्थ आरं में श्री कृष्ण के प्रथम दर्शन से यह अनुराग आरम्भ होता है । श्री कृष्ण के दर्शन से राधा की और राधा के दर्शन से श्री कृष्ण को स्वयं प्राप्त होता है । कवि ने उसको वन्दन स्मरण करते फिर -- २३ वाक्य द्वारा की है । यहाँ एक अनुराग उभय पक्षीय है । किन्तु उसके बाद अनुराग अनित्य वयस का अनुभव केवल राधा को होता है । श्री कृष्ण के वहाँ से जाते ही राधा की स्थिति धिक्की के लिये चिन्ता बन्क हो जाती है । धिक्के मन को मोहन में सरण कर लिया है उस राधा में जड़ता, विफल, उन्माद, जाधे आदि मानों की सहा हो उक्ति त किया जा सकता है ।

मन हरि ली नो ल्याम, परी राये सुरफाई
मई सिथिल सब देह, बात कहु कही न जाई ।
दाँरि लही । कुंज वली, नैननि छारति नीर,
अरो कीर। कहु जतन करि, हिरदै बरति न कीर ।^१

राधा की अवस्था से व्यथित चिप माता की तिसुमारी कुछ उपाय करने की बात कहती है । परिणामतः योजनानुसार सखियों श्रीकृष्ण के पास दाँदूती है -- यहाँ कवि ने जामेग की व्यंजना की है । यही अवस्था राधा की माता में श्रीकृष्ण की मूर्च्छा निवारण के लिये जाने पर उद्घात होती है । श्रीकृष्ण के वचनों का सुनकर जब राधा जाते लौटती है उस समय हर्ष और अवसिद्धा माता की व्यंजना बहुत ही कुरूपता पूर्वक की है । रुक्मणिमाल में अनुराग गुण प्रथम से होता है -- क्योंकि दर्शन की बारे कहीं भी कोई लोभ नहीं मिलता । श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मणि के मन में जो अनुराग है उसकी व्यंजना कवि ने विविध भावा के माध्यम से की है । शिशुमाल से विवाह की बात सुनते ही यह जड़ता की स्थिति में आ जाती है । उसका मुख कमल सुरका जाता है बसने के मानों उसका जागर हो खिन्न हो गया हो । उसके अनुपूर्ण नेत्र, निश्वास तथा उदास मुख विषाद और विन्ता को व्यक्त करते हैं । स्वामग, कम्प, स्नेह, श्रवण्य आदि उसके मानसिक भावों और जड़ता को प्रकट करते हैं । पदावली में उपावृत्ति के पदों की प्रधानता से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ अनुराग का कारण सौन्दर्य दर्शन है ।

परन्तु नन्ददास प्रेम का वेसा स्वामाधिक विलास नहीं दिखा पाये जैसा सुरदास जो ने दिखाया है । वस्तुतः प्रेम कैसे हुआ-- यह बताने की अपेक्षा कवि ने अनुराग हो जाने के परिणाम की ओर विशेष ध्यान दिया है । सुरदास जो ने प्रेम को स्वामाधिक रूप से विकसित होते हुए दिखाया है । कृष्ण और राधा साथ साथ लेठते, हँसहास करते, गाय कुत्ते और गोवाराण करते करते परस्पर प्रेमोन्मत्त हो जाते हैं । और फिर उरिकाई को प्रेम छूटने का नाम नहीं उँता ।

सुरदास जी ने कृष्ण और राधा का प्रथम मिलन बड़े, मात्कीय ढंग से रखा है । चकलारी हाथ में लिये कृष्ण ने अविकली एक विशाल नयनो वाला को देखा तो नैन नैन मिठि परी ठारी ।^१ पृथा गोरौ हूँ अँन है, प्रज में तौ कभो दास नही पड़ी । वाला बाली, हम प्रज में ऊँ आँ मला । सुन्ती है बड़ी नन्दकुमार मासन और दास को चोरौ करला फिरता है । कृष्ण बाले, तुम्हारा हम क्या बुरा औँ, आँ आँ हकटै मिल कर लेते ।^२ मोली राधा उस रसिक की बातों में जा गई । उसे क्या मालूम था कि कृष्ण उसका क्या नहीं बुरायेँ । उन्हें बड़ा, नयनों नयनों में लाते हुए । कृष्ण का निमन्त्रण स्वीकार हुआ । राधिका प्रज में फेरा करने को राजी हो गई । दोनों एक दूसरे से मिलने के बहाने छुड़ने लगे ।

मधुर प्रेम का मिश्रण का नन्ददास की रास पंचाव्यायी, चिह्नान्तपंचाव्यायी, रूप मन्त्रों और ममावली में व्यक्त हुआ है । नन्ददास जी ने सिर्फ जितना विस्तार संयोग प्रेमाङ्कुर का किया है उतना सम्भवतः अन्य किसी का का नहीं । रास पंचाव्यायी में सुरली चरनि हुन्कर गोपियों में मिलन की उच्छा जागृत होती है जिससे वे मगन नीति द्रुम, कुंज आदि धारी वावाजों से होते हुए शासन सरिता की मोति पछती चली जाती है । उन्में प्रिय मिलन की आसुरता इतनी अधिक है कि वे अपना विवेक तक लौं पैठती हैं और परिणामतः उनके आसूषण अंगों के अनुप व्यवस्था नहीं प्राप्त कर सकते ।

नन्ददास जी ने कृष्ण के मन को मिलन उच्छा का भी विवित किया गया है । मधुर नाद हुन्कर वे तन्मय हो जाते हैं और जिस समय गोपियों श्रीकृष्ण के सामने जाती है उस समय श्रीकृष्ण इतनी ललचीनता से उन्हें देखते हैं जैसे उनका प्रत्येक अंग नेत्रों में परिणत हो गया हो । समय का वे मिलन की उस तीव्रता के होते हुए भी श्रीकृष्ण प्रेम परिपाक के उद्देश्य से गोपियों को धर लौट जाने के लिये कहते हैं — यद्यपि वे जानते हैं कि जाया रात्रि के समय धने बन में चली जाने जाओ गोपियों का लौटना सम्भव नहीं है । श्री कृष्ण के ये चवन हुन्कर गोपियों में विन्ता,

स्त्वयता, शिथिलता आदि अनेक दशाये प्रकट होती हैं जो उनके कृष्ण प्रेम की तीव्रता का परिणाम है जिसमे कल कल वर्णानात स्पृष्टता उद्भूत होती है । विहार के परिणाम स्वरूप गोपियों में गर्व का उद्धार होता है । इसी के निवारण के लिये श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हो जाते हैं । पर गोपियों की अनुराग तीव्रता उन्हें प्रकट होने के लिये विवश कर देती है । उनके प्रकट होने पर गोपियों में हर्ष, उमंग और मध माव व्यक्त कर देती है । उनके हर्ष, उत्साह और वात्सल्य का म्रिण गोपियों द्वारा श्रीकृष्ण के आश्रित, सुखन, कठोर खद कथन आदि में उद्भूत होता है । श्रीकृष्ण को अपने पास बिठाना मिलन की उन्मा को व्यक्त करता है । अपने प्रियतम से उनका वातांजन मिलन को शायक बनाने का यत्न है जिसमे वे उत्साह और उल्लास के साथ प्रवृत्त होती हैं --

बुक्कन लागी नवल बाँल नन्ददास पियहिं तव ।

प्राति रीति की बात मनहिं सुसकारि जाति सब ॥ १

गोपियों का जीत प्रेम की जीत है । श्री कृष्ण गोपियों के आभार को स्वीकार करते हुए दैन्य का आश्रय लेते हैं । श्री कृष्ण के धन से गोपियों के श्रौव का शमन और प्रेम का विस्तार होता है । परिणामतः उल्लास और मस्ती की अवस्था में वे प्रियतम को अपना सुजाया में भर लेती हैं । अपने अमीष्ट की विधि पर गोपियों में गर्व के स्थान पर हर्ष का उद्धार होता है और वे एक पौ ध ण बिना गंधाये से रास बिलास में तल्लीन हो जाती हैं । बिलास में रजनी का बह जाना तृप्ति की अवस्था को सूचित करता है ।

विद्वान्त पदार्थ्याजी में भी नन्ददास जी ने गोपियों के आश्रयपूर्ण अनुराग को चित्रित किया गया है । गोपियों के प्रेम में मिलन की लालसा बहुत पुष्ट है । यह प्रेम पूर्ण समर्पण पर आधारित होने के कारण आनन्द का उद्धार करने वाला है ।

प्रियतम स्वयं शब्द को उनके हृदय और उत्साह दोनों में गति ले जाता है उसी क्षण में राजवस्था को प्राप्त गोपियों सब बाधाओं को पारकर श्रीकृष्ण से जा मिलती हैं। उन गोपियों में जो प्रेम की तीव्रता और मिलन की जागृता बेसी जा सकती है किन्हीं पर मैं अवलोक हो जाना पड़ा। गुणमय शरीर का त्याग उसी तीव्रता का प्रवक है। श्रीकृष्ण ने मिलन गोपियोंको काँ जानन्द देने वाला है। उसी कारण श्रीकृष्ण द्वारा स्वयं छुटाकर धानस छोट जाने के उद्देश्य से कहे हुए वचन सुनकर गोपियों का विस्मित रह जाना स्वाभाविक है। वे तुरंत विन्म वनुराग, मनुहार का जाग्रत होती हैं --

तेरेहि हम सब जो । तु तिसारे बरनानि जाहे ।

नहिनि त्वी, पिय मयाँ, तयाँ स सब निरुराहे ॥१॥

प्रेम के इस तीव्र रूप को देखकर श्रीकृष्ण का मन हृदय से पर जाता है। तदनन्तर वे गोपियों के साथ विचार में मग्न हो जाते हैं जिसके वर्णन माधव के शुद्धदेव में जानन्द का स्मार होता है। गोपियों के मन में एक अवसर पर काम के गर्व आदि जाँ में से जो कुछ अनिष्ट रहा था उसको निःशेष करने के लिये श्रीकृष्ण दृष्टि से जोकल हो जाते हैं और उनका विद्योने गोपियों को वात्मविस्मृति की अवस्था में ले जाता है उन्माद की उसी अवस्था में वे जड़ बेलन जमी से अपने सर्वस्व श्रीकृष्ण का पता पहुँचती हैं। श्रीकृष्ण जीजा का अविनय रहा अवस्था का प्रवक है। दूसरी और श्रीकृष्ण की अत्यधिक प्रिय गोपी में अयोगजनित गर्व का जाग्रत मिलता है किन्तु श्रीकृष्ण ही यह अपनी मूल समझकर स्वयं विज्ञाप करती है। यहाँ गोपियों का परस्पर मिलन हृदय का लो नही परन्तु उनके जानैर का प्रवक है। श्रीकृष्ण से विविध प्रकार के रमण द्वारा वे तृप्ति प्राप्त करती हैं। यह उनकी मद मस्ती की दशा है जहाँ उन्हें आत्म भुवि मो नहीं रहती है। रात्रि के व्यतीत होने का भी उन्हें ज्ञान नहीं रहता -- यही उनके प्रेम की पूर्णता है।

सूरदास जी ने राधा और कृष्ण के विषय भागे सम्बन्धी बनेक विन दिये हैं । राधा और कृष्ण का प्रेम झंझड़ा है आरम्भ हुआ था । एक दिन नागर ने नागरी की नीवापक ली और

जवहिं तरौने वर्या कीकाल पर, तब जनुमति गउं जाइ ।

किन्तु तमो कृष्ण ने स्थिति उमा ली और नागर होने का प्रबल प्रमाण दिया: दोहा मां, अपने मेरा नैदे चुरा ली, अब देती नहीं । राधा बोली --

काहे को फकफोरत नाँवे, बल्लु न देऊ दतार ।

नन्दकिशोर नवल हँ राधा नवल है, नैह नया है, रस नया है, पीताम्बर नया है चुनरी भी नया है, तो फिर साउसा की उदासता में कमी क्यों होती है ।^१ कृष्ण को आलिंगन करते समय हाथ धिन्धन बन्नने लगा तो राधा ने उसे उतार दिया । परस्पर चुम्बन में उनकी शोभा दर्शनीय थी :

चुंउत जो परस्पर जनु जुग, बंद करह छित चार ।

और फिर,

दसननि बसन बाँपि चुबचुर अति करत रंग विस्तार ।

और तब

गुन-सागर आ रस सागर मिलि, मानत गुन बन्वहार ।

और जन्त में दोनों के बल्ले सिधिले थे, ये श्रम युद्ध का अनुभव कर रहे थे । कमी एक दूसरे के कन्वे पर हाथ रखकर और कमी एक दूसरे की पीठ में अपने कपोले रगड़ मानो वे मदन की ज्यादा को फिर प्रजारन करने में लगे थे :

मानहुँ सुफा मदन की ज्यादा, बहुरि प्रजारन लागे ।

मला राविका कृष्ण से क्यों पीछे रहती :

जपनीसुवा स्याम सुख जापर, स्याम सुजा अपने उर धरिया ।

मल-कम-मो-बल्लम-रस-अँर-लपन--

सुरनि-बल्ल-बईमर-रिमे-बकनी-बलि-सुतदरई-+

और वे दोनों

यों लपटा रहे उर उर ज्याँ, मटकत मनि कवन में जरिया ।^१

य क्रम यों चलता रहा और तभी -

सुरति अंत गोपाल रामों, जानि अति सुखदाह ।^२

उतने में बादल फिर बाये जाँ, वृक्षराहत में-

आरो की सारी जापुन है, पीताम्बर राधा उर लाह ।^३

रति समय में राधा की शोभा का दर्शन शूरादास ने वड़े चाय से बनेक उममावों के साथ किया है । अति क्रम कटि विरह मितिय, मारी पयोधर वाली छुमारी राधा जब कुन्दक केलि करती है तो उसका बंधन अंधे उट जाता है और काटी कंधुकी और सरे जब दिताने देने जाते हैं । तभी दोनों के मिलन में ऐसा आन पड़ता है मानों नव जलद ने विषु को बन्धु बना लिया है और नम में बनियारी कला का उदय हो गया है ।

सुर के भागर और नागरी के कतिपय अन्य गदगै विन भी दर्शनीय है । एक दिन सेलने के बहाने राधिका कृष्ण के घर बायीं तो उसका कोईकिउसम माणी से बह जातुर हो उठा -- मो यही तो है वह जिसने कठ जमुना तीर पर मटकते छुछ सुके पाहें पकड़कर मार्ग दिखाया था । मो उसे समय देकर बुलाओं ।^४ वह अब राधा के लिये यशोदा का डार चुल गया । करे पार जाना जाना हुआ -- पर कसक न मिटी । हाथ गृहकार्य में लगन रहते, पर हृदय एक दूसरे व्यक्ति से लीन । एक दिन यह रहस्य भी खुल गया । राधिका आयो, यशोदा ने उसे दली बिलौने को दी । उवर कृष्ण गाय दोह रहे थे । राधा साजी मटकी में मथानों केरने लगी और उवर कृष्ण गाय के स्थान पर हृषीम को दोहने को तैयार करने लगी ।^५ हृदय दान से उनकी बेलना भी उप्त होने लगी थी । वे दोनों हास परिहास

१, २, ३ सुरसागर १०।६५५, ६६०, ६६४

४, ५, सुरसागर, १०। ७००। ७१६, ७१७

वे भी लीन रहने लगे । एक दिन राधा की गाय दाहिले समय कृष्ण को मजाक सूझा तो एक बार तो दाहिली में डालने लगे और दूसरी प्यारी के मुख पर । दूध के समान उजली गोरों का कुछ दूध में नहा गया । उस प्रकार उनका पारहास बिनादे चलता रहा । अब बलग होने लगे तो राधिका के पाय मन मन के मारा होने लगे । वे अपने पर की ओर न बढ़ते थे । राधा बार बार नन्द गली की ओर मुड़ मुड़ कर देखती थी । मोहन ने उसे मोंह लिया था । पर पहुँचते न पहुँचते वह अवैत होकर मृमि पर गिर पड़ी । सलियो उसे बर लायी । वे उस रहस्य को जानती थी, फिर भी बौली— उसे श्याम मुँग ने छस लिया है । गाहड़ी बाधे, पर श्याम मुँग के स्नेह विष को उतारने में अक्षफाउ रहे, और अन्त में श्याम गाहड़ी ने बाहर बह विष उतार दिया । मुँगो भी वे स्नेह थे और अब गाहड़ी भी बही बने तो फिर मठा विष कैसे न उतरता ?

एक दिन राधा के जीवन में कृष्ण के साथ एकान्त मिलन का अन्तिम अवसर तय आया जब कृष्ण लारे कोसनि हारका से लक्ष्मणि को साथ लिये कुम्होत्र जा पहुँचे । गोपियों के वृन्द में नाउ बसने परसे, गोरों रंग की राधा सड़ी थी । उसकी चित्मन सबसे भिन्न थी उसी चित्मन को देखकर कृष्ण का मति मोरो हो गई । उसके बाद राधा मायब को मेट हुई । वे दोनों एक दूसरे के रंग में ऐसे रंग गये कि दोनों का पार्थक्य मिट गया । पर राधा उस अनन्तर पर थोले न सकी । उसकी बाणी सूक हो गयी और फिर विदा होने के बाद एक एक वनकर गुँज उठी -- छली आज मैं कुछ कर न सकी । हरि बाधे और मैं लगी सी रह गयी । हर्षित होकर उन्हें हृदय का आसन मा नहा दे पायी । और तो और कुंवकी से कुछ कलश भी बन्ध तोड़कर प्रकट न हो सके -- मैं उन्हें ज्यो तक न दे पायी । मेरी तो मति हो मारी गई थी ।^१

इस प्रकार सुदार जो ने संगी कृष्ण के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं । उनमें विविधता दर्शनीय है । दूसरी ओर नन्ददास के अनुराग ताव्रता को वृचित करने के

लिये प्रेमियों की विभिन्न मानसिक दशाओं का विस्तार से परिचय कराया है । यह स्पष्ट है कि अनुराग स्वयं दशाओं का वैशिष्ट्य अधिक नहीं है । फिर भी शंका, म्ल, प्रेम, वाञ्छ, ईर्ष्या, विन्ता, स्मृति, वृत्ति, वपलता, हर्ष, आर्षेय, जड़ता, गर्व, अतिशुभ्य, अमर्ष, अदक्षिणा और उन्माद-- ये विभिन्न संवारी मान उनके अनुराग सम्बन्धी काव्य में लयाप्त है ।

हरदास और नन्ददास दोनों ने मान का चित्रण भी किया है । हरदास को ने राधा को मान करते हुए उस प्रकार दिखाया है --

बाहिर्जन पै अवर दशन लौंडि कर गहि निधुक उठावत ।
नावा लो नावा है अरिउ जैन जैन परसावत ।

यहि अन्तर प्यारी उर निरख्यो कफा कि गरी तव न्यारी ।
धूर स्याम मोकी दिसरावत उर जार बरि प्यारी ।^१

कृष्ण ने समझाया-- अपराध के बिना मान करती लौं, बसना ही लाया मेरे हृदय में देखकर मुझे अपराधी ठहराती लौं । पर राधा को निरन्तर नहीं लाया, बोलो--

मोरि हुजोगनि दूर रहौं जू ।
जाके हृदय लोच लौं है, ताकीबाहे गहौं जू ।^२

मानश्मन का चित्र दर्शनीय है । एक दिन कृष्ण के लोच पर राधा ने रति बिन्हाई को देखा तो वह मान का पैठी । कृष्ण लुब्धक और वापस लौट गये । पर उन्हें कल कहां ? दुता को मंजा, पर व्यर्थ, और अन्त में अलुलाकर स्वयं जा मांगने लगे और परस्पर दर्शन होते होते ही दोनों मुस्करा पड़े ।^३ एक अन्य बार भी ऐसा ही परिस्थिति में कृष्ण मुरली बजा बजाकर, दूतियों को मंज मंजकर जब हार गये तो स्वयं दुता ने पर वारण करके राधा के पास जा पहुँचे और उसके वरणा पर मणि

१- धूरदास १०।२४१२

२- मल्ल १०।२४१६

३- मल्ल १०।२६०१

रह दा तथा स्वयं पादे लड़े हो गये । राधा ने माण में कुछ दाम्पति की दाया देती तो वह मुस्कुरा पड़ी -- मान मोवन हो गया, मान धरर के उपरान्त सम्पूर्ण दुःख हुआ हो गया ।

इस प्रकार नन्ददास ने मान जला के उद्देश्य से नाममाज को राना का है । इस राना का कुछ ग्रन्थों में नाम मंजरा नाम में प्राप्त होता है । परन्तु नाममाज में जमरकोप के आधार पर सबों के परायेनाका रूप दिने हुए है किन्तु इसे केवल लोप ग्रन्थ मानना उचित नहीं है ।

नन्ददास के कृष्ण मानवत राधा के मिलने की बात है । एक छोटी मानवता राधा की मनाने के उद्देश्य से रूप मानु लोप के मनन में पहुँचती है । यहाँ कथा प्रकार वह जन्तुपुर में प्रावष्ट हो राधा का स्मृया के पास पहुँचती है । राधा का नाम लोन्दवे अनुपम है किन्तु उसके लाल मेत्र जमर को स्मृयात का चयना करते हैं । क्रोध के कारण उसका लटे जलाट पर फैला हुआ है --

कुंठल जमर जलाट जनु, नादिलि नी दरा ।^१

उसका दुःख होता हो जाया है । किन्तु प्रियत्व के लम्पके से बस्त्रों में फाँटा हुआ विशेष मन्य के कारण उसमें जमर को स्मृयात में मिलित होता है । कुछ अन्य के लोप सब मन्य में वह अपने मान को मुक्त कर प्रियत्व का स्मृयात हो जाने से हर्ष प्राप्त करता है । फिर दर्पण में अपने रूप में वसा प्रियत्व का मूर्ति का प्रातीत्य देत वह क्रोध में दर्पण फेंक देता है । जमर तो उस स्मृयात में बस्त्रों का लम्प बजाना नन्द कर दिया जाता है । उसका मोहे क्रोध में लन गये है । ऊपर वह लम्प गुस्सा में वे देखकर बड़ा रंता जो वेन्यपुर्निक राधा के सम्मुख प्रकट हो जाती है । उसके मन में क्रोध और मत्त है । यद्यपि उसने राधा का नन्दना करके अपना लम्पता प्रकट की पर उसे देखते स्मृयात जलाट हो गई उसका मोहे प्रकट हो गई । किसी प्रकार अपने को स्मृयात करने के बाद राधा मोहे प्रकट होली पर उसका प्रोप लान्त न हुआ ।

१- नाममाज, दाँहा ५५

२- वही दाँहा ५२

उसकी रज मूर्ति को देखकर सखरी का मन दूर न हो सका । सुन्दरी ने कुशल पदों पर चल कर वर्षा हुआ । उसके बाद धान दिक्का पहार प्रशंसा तक रहती है मानवशा का उभाव करती है । धान ही एक मानवान्त की है कारण दुष्काय है उसने दुःख कष्ट का जोर प कोट करता है । उसके रोजे जीत मा को कम बीत के समान प्रिय माना जाता है । और रज प्रसार बिना माना के ७ वर्ष के १० मान करने से वह उी रहता है । जिसे मय के कानिजिने है । कृष्ण उनके पाद का रिय सिक्ता करते है । किन्तु रज कष्ट का जोर प राधा का माना रहता जाता । राधा कर्म का सिक्ता मे ७ कृष्ण की कपटी तक रहने है । सखरी रज कष्ट रज प्रशंसा की राधा का मय समझता है । और उसके उ प्रसार के उ सखर को अविकल्प मानकर सिद्धा करता है । उने समझाती है कि दुष्काय जोके प्रेम क्रोधा नारा जाम्द प्राप्त करता हुआ है । यह प्रीति रज मा प्रेम का नाशक है । वह उसे उन दिनों का स्मरण कराता है जब जो-यै वारण के उम उभरा हुआ जाये उठा था । और काजि दान के उम वह अथार लोक दह मे कदने के जिने तत्पर हो गई था । अतः उने उ मा वारण करने और रीप को जोड़ने के उये कहती है --

साफ परी है देल माल, बिना करिहु तान रीप ।'

मान राधा रज के प्रिय मालिका उका रहता है -- यह कहने १०७ साफ माली जाये के उम प्रकट होये जाते है । किन्तु वह शीघ्र अपने को उमाऊक कृष्ण के उये दया का माल मानेता । साथ ही वह कृष्ण का आरुता की बात कहता है । मानता राधा के उये वह उम उमाद । यात एक प्रजन है । पर सखरी प्रिय के प्रजन, उतुक्ता, जाहुता जादि का ना - दौहरा देती है --

'बेश मे रहते प्रिय, है प्रानेर रा जाव ।'

उने उतकर राधा का माल उी जाता है और उने उी उम मय दह रहने जोल के उये प्रीति करता है । उ प्रसार राधा उमाद के साथ के उी उये

में पहुँचती है जहाँ कृष्ण वाहुता ने उषा प्रतीक्षा कर रहे हैं । जोरों-ता-पि उन व्यथित हैं --

जो रात-रात गिरे, नर के सारार ।^१

अन्धकार में कालिदास ने मा-मानसो जा दर्शन किया । रात को जन-जा के सम्मुख ही कृष्ण की मखन-बराती हुई कौ-विन्दा जी सम्मुख अपना देता है --

कर ने गरि कपीर रज-र प्रिय मन दुन्द ,
अपु बिदार माने तौमि छु कंठा ।
रिष मरु मरि लष मरु दे जर-राव,
दुन्दु जायों मरुदे रिष जर विन्दा ।

कालिदास ने रात को मानस के लिये १ रेष-कृष्णता लिखा है, जो उषा-नामिका के लोचन-वन्दन ही उल्टी है । जोरों-ता-पि उसके दे-का तिरस्कार करता है और नय-पूर्वक कृष्ण की लज्ज-मना-ने के लिये जाने को कहती है । मान-मनुहार के समय कृष्ण ने देन्द के जीत-रक्त-रात को चक्या, अक्या, कौव, जा, हर्ष -- सभी छुट्ट-कट्ट लीता है । प्रया-मान के समय कृष्ण ने जनो-ला-ली-ने के लिये परिहास या मध्य-म-क-जाता है । कृष्ण की लज्ज-दर्शक-माना की मनाने के लिये प्रीति करता है । मान-म-अक्या-मे-लाया-ने-माना-क-अ-देन्द के-अक्या-लष-ने-कालि-के-मान-म-ने-ने-ने । मन-ने-ल-ल-क-लष-जा-अभिमान-दोनों का-देन्द है, जिसे कारण मान-क्या-लष-लष-ली-लाया । जो कृष्ण का वाहुता देन्द मनाने के लिये जाने कहती है किन्तु रात को दृष्टि-ने-ह-उप-मय-जाता है । कालिदास ने मान-वाहु-नामिका के लिये प्रीति कर देने में छुट्ट लीता है --

तु नहिं मान्न देति जाहिरा, मन तेरो मानने को कहत ।
 नियाँ जा राति देति मेरे जिय बना होत
 में तेरा कोटि देखि-देति कहत ॥
 कंधाल गुं दूता के बदन चुनि,
 ऐसे जग जूँ जते बागि जो राग उरत । १

मानलीला के प्रश्न में श्रीकृष्ण के प्रकट होने का कारण करने में उनका मिलन जायजा है।
 का, राग का उनके देखकर निश्चय और मिलकर अपने और मान जायजा होने पर
 आनन्द को जनना स्पष्ट होती है। इस पद में एक प्रकार श्रीकृष्ण का माना
 को मानना जसियों के लिये परिवार और रूप का विषय है। मान के अर्थ श्री
 कृष्ण का जाहिरा और अनोखा रूप मान लेना जाहिरा होती है कि तेरा
 के बिना एक न पाने रह पाते। मन को शास्त्र देने के लिये दे सुखी ज नि
 में राग का नाम अवतार है। और ज मानिनी राग से मा श्रीकृष्ण अनात्मक पद
 जाते हैं, जो अपने राग विमल और अपने दोनों का अद्वय कहते हैं और श्रीकृष्ण
 को त्रैलोक्य निन्द्य से जय हो प्रकटता या अज्ञान करते हैं। राग का माना-लगा
 वलियों के लिये दर्शनात्मक बन जाती है। श्रवणपूर्व सुख का सुख को देखकर वह स्तब्ध
 रह जाती है। श्रीकृष्ण को जाने का स्वप्न होने पर मा उस निश्चय की अवस्था
 में श्री के पात्र नहीं बढ़ते। स्पष्ट है कि मन के अधर्मान में कदवा, जे सभा
 मनोदशाओं का सुन्दर परिवर्तन देता अपनी कम पर्यवेक्षण शक्ति का अन्धा परिवर्तन
 दिया है।

पदानली की गोपियों कृष्णनिन्द्य से उनके वात्स्याल से ही प्रभावित है।
 उनकी यह चमत्कार सुकती नही। पालने से एक गोविंदा तथा उनके दूरती को
 लेकर वे मुख्य हो जाती है। जनसा के साथ साथ यह एक रूप। प्रेम में बदल जाती
 है। पालन के अनेक पद का किशोराल न प्रेम के एक है। यदुना कदार, ब्रज कुं
 जादि में यह प्रेम स्पष्ट होता है। परिणामतः जगत् के लिये जाने वाली गोपी

पूरे द्वगार के साथ पन्वट पर जाती है -- शायद यहाँ श्रीकृष्ण से साक्षात्कार हो जाय । क्षणिकता के पदों में गोपियों का रमणीय रूप प्रकट होता है ।

जाओ की रति मानी, रूप जानी, कहे देति मैना रंग पाँरे ।

मृगज और लोरी के पदों में गोपियों राधा कृष्ण जीजा में वशयिता है ।

सुरदास जा ने चढ़े भिस्तार से पन्वट लीला, दान लीला, रास छिन्हाँला, लीला, वसन्त, फागुन, जोड़ी लीला और जज्जोड़ा, ~~दम-छिन्हाँला-रस~~ का धर्पण किया है ।

गाइलो रूप में कृष्ण राधा का भिज उतार का उसकी लहर गोपियों पर छाड़ देते हैं । परिणामतः वे उस पर सुख होकर उसे वर रूप में पाने के लिये ब्रत रक्षती हैं और नित्य यमुना स्नान करती हैं । पाँदिस छहद रूप धारण करके कृष्ण कभी उनकी पीठ मलते हैं, कभी प्रत्यक्ष बुराकर उनके गिड़गिड़ाने से प्रसन्न होते हैं और कभी नन्माख्या में उनसे हाथ उठवाकर नमस्कार कराते हैं ।^१ अन्ततः गोपियों की वाक्यान्त फल होती है । कृष्ण रास की रात को उनके साथ रास रवाने का उन्हें वचन देते हैं ।^२

पन्वट लीला में कृष्ण के मोहक रूप और मृदु सुरली की मोहनी ने वशाभूत अथवा उस लोभार्थ और जचगरा के मयमिदित संकोचवश कोई भी गोपी यमुना पर जल पर नही जा सकती :

मृदु मरली की लान सुनाये, रति भिपि कान्ह रिफाये ।

रहों को जाओ गमुन ठं, जल मरि वर ठं जावै ।^३

उस छेड़लाक को कृष्ण अपनी सरस युगिता से लोड़े देते हैं और परिणामतः गोपियों द्वारा दिये गये गौरव में से राधा का ही गौरव कृष्ण को अधिक मीठा लगता है ।

१- पदावली १०६

२- सुरसागर १०। ७८७

३- सुरसागर १०। ७८७

४- सुरसागर १०। १४०२

सुरसागर में बार स्थानों पर वर्णित उस लीला में गोपियों कृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पण कर देती हैं ।

रास लीला के प्रारम्भ में कृष्ण और राधा का विवाह रचाकर सुरदास ने राधा को स्वकीया के रूप में प्रस्तुत किया है । वसंत, फागुन, हौली, जठ ज्रीड़ा जादि छलांगों में राधा कृष्ण माग लेते हैं और गोपियों केवल दर्शन से ही आनन्द लेती हैं ।

मगद रति

मगद रति ने मगद रति के अतिरिक्त मगद रति की भी व्यञ्जना अपनी रचनाओं में की है । इसके दो पद हैं -- रति और विरति । कुम्भदेव के प्रकाश के रति भाव की व्यञ्जना बहुत स्पष्ट है । और अनेकार्थ भाषा के अनेक अर्थ विरति पाये जा सकते हैं । कुम्भदेव हरि लीला रस मगद है । इसी और आनन्द से मगद के रस में विवरण करते हैं--

हरि-लीला-रस मगद सुदित नित विवरण जग में ।

कृष्ण रसासव पान से उन्हें मगद हो जाता है । इसी उनकी सुलझावट से व्यञ्जित हो रहा है । पराङ्मुखित अन्ध व्यञ्जित है जिनमें मगद रति का भावात्मक रूप दृष्टिगोचर होता है । अपने अत्यन्त प्रेम से वे मगद रति को पुष्ट करना चाहते हैं -- क्योंकि रसों उन्हें सुख का अनुभव होता है । श्रीकृष्ण रसों के प्रति उनकी आसक्ति पर सुनती चर्चा में छप्पट की आसक्ति की मोति अत्यधिक तीव्र है । गोपियों के लम्बता का कारण कृष्ण मगद माना गया है ।

विरति का भी गोपियों को सांसारिक वस्तुओं और व्यक्तियों में विकृष्ण और श्रीकृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव देखा जा सकता है । गोपियों के उत्कट प्रेम में कामना का अंश निःशेष हो जाता है । अनेकार्थ भाषा में नाम स्मरण, श्रीकृष्ण मगद, कपट का त्याग, सांसारिक वस्तुओं की चर्चा, फागुन, अज्ञान नाश, कृष्ण लीला स्मरण सम्बन्ध उद्भूतियों में कवि की मगद रति व्यञ्जित होती है । इस रति के पुष्ट होने पर ही आनन्द की प्राप्ति होती है --

रस धर को रस प्रेम रस, जानें वल बलवीर ।^१

ब्रह्मा जी का प्रथम हृदय सुगल मलित के उस स्वप्न में अत्यन्त प्रभावित हुआ था जिसका विवेक मानवत पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, गीत गोविन्द आदि काव्यों में पिया गया है । अतः उन्होंने बोरहरण, दान, पनवट आदि जो जीलावों को आख्यात्मिक प्रकीर्णों का पक बनाया है । उन सधका आधार -- कृष्ण परम ब्रह्म है, गोपियों जीवात्मा है सुरली मगवान की पुष्टि है, जो मनुष्य को समय समय पर खेत करती है, और उसी के सम्मुख छुड़ाकर अपना और आकृष्ट करती है । उक्त जीलावों में ही पनवट जीला का यही रहस्य है कि गोपियों को -- जीवात्माओं को -- अतः वे ब्रह्म त्यागकर कृष्ण को -- परम ब्रह्म को -- शरण में जाना पड़ा । बोरहरण जीला में गोपियों ने --- जीवात्माओं ने --- आनन्द प्राप्त है जब अपनी गोप्यतम निमि परम ब्रह्म को अर्पित कर दी, तभी उन्हें मगवान का नैक्य प्राप्त हो गया । दान जीला में भी यही पक है । परम ब्रह्म ने गोरस (दही) के व्याज में गोरस (यन्त्रियों का विषय रस) मगवा और वह उसे समर्पित कर दिया गया । इन्द्रिय जन्य आसना को मगवान को समर्पित करके ही जोय उसमें आत्मसात हो सकता है । रास जीला में रास रुद का अर्थ है -- आनन्दमयी व्याख्या । सुर के इस काव्य की सभी जीवात्माएँ परम ब्रह्म में लीन होकर आनन्दमयी बन गई हैं ।

उसी प्रकार कृष्ण और रास में भी यही आख्यात्मिक सम्बन्ध है । कृष्ण परम ब्रह्म है, रास उनकी प्रकृति या शक्ति है । उक्त गोपियों जीवात्माओं का प्रतीक है, रास उनकी प्रकृति है और ये रास की शक्ति है । यही कारण है कि ये परम ब्रह्म (कृष्ण) और उसकी शक्ति (रास) के आंग होने पर तनिक भी ईर्ष्या नहीं करती, बल्कि आनन्दमयी ही उठती है । किन्तु उसी विपरीत रास (परम ब्रह्म की शक्ति अथवा प्रकृति) कृष्ण (परम ब्रह्म) के पर अधीन को सहन नहीं कर सकती -- उसे ईर्ष्या होती है । यहाँ तक कि यदि उसका अपने गले का धार भी जन्तु रास बनता है तो उसे दूर फेंक परमब्रह्म को गले का धार बनाती है । केवल इतना ही

नहीं, उसे अपनी छाया तक असह्य है। परम ब्रह्म और शक्ति के संयोग में, दूसरे स्रष्टा में, कृष्ण और राधा के संयोग में, अन्य माय अत्यन्त अनिवार्य है। इसे प्रतीकात्मक कह लीजिये, जयन्ता उपकातिस्थोक्ति। यही प्रतीक राधा जयन्ता गोंपियों के लण्डिता प्रयोग में एक महान् संदेश दे रहा है कि चिरह के उपरान्त संयोग हुआ निरुणित हो जाता है। वियोग के अन्तर्ग परमब्रह्म और प्रकृति का मिलन अक्रोधाकृत अविक जालादक सिद्ध होता है।

कृष्ण और राधा के जमाग प्रदान वर्णनों में -- सुरतारम्भ, सुरतामरणा और सुरतान्त के कश्चित्पुर्ण पदों में -- परम ब्रह्म और प्रकृति का एक दूसरे के प्रति आत्मसनपणा, आनन्दमय लव, आनन्द मान, ऐय्य रूप और आध्यात्मिक नैकट्य का स्वप्न निरुत होता है। राधा अपने कृष्ण के रूप में उतनी ही गई है कि वह सतियों से पूज्यता फिरती है कि जया तुमने कृष्ण को बँध लिया है, पर मैंने तो उसे बाज तक नहीं देता --

तुम कैसे दखन पावत हो।

कैसे स्याम जग अजलकिति ज्यों नैनन को ठहरावात हो।

में कबहुं नोके नहि देखे कथा कही कहत व अवातरि ॥१॥

राधा का यह कथन किसी चतुर नायिका का कपट मान नहीं है, आत्मसात पावना का निरक्षर उद्गार है।

सुरदास जो ने यह का विव्रित किया है कि कृष्ण की जब गोंपियों के साथ रास जादि जालाये करते हैं तो नारद बुक जाद बुनि तथा देवता जोग तथास्मीन की तरह ध्व बुद देत देत कर बलिठारा जाते रहते हैं।

सुर के मत से यह प्रपंचात्मक जंगल से कूटने का एकमात्र उपाय हरि मक्ति है, जिसके बिना समस्त जीवन ही मारस्वप है। कलियुग के संतापकारी ताम्रज्य का शसन मन्त के कोमल हृदय से महतु हुए भगवद्भाजित के शीतल स्वात से ही सम्भव है,

जो केवल मात्स्यी तृष्ण जन्म प्राप्ति को ही दूर नहीं करता, प्रत्युत मानसिक कालुष्य पर का प्रकाशन का हृदय को स्वच्छ भी करता है और उच्च मानसिक उन्नति का मार्ग बनाता है। कर्मकाण्ड के जाल को जटिल उलझान में फँसा हुई जनता धर्म के लुप्तक ठेकेदार पंडित पुजारियों की कलुषमयित का शिकार बन रही थी। तीर्थ, व्रत, जप, आदि का व्यर्थ ठकौसठा वास्तविकता पर आवरण ढालकर धर्म के मूलमूल तत्वों का अपहरण कर रहा था। लुप्तता की तरह धर्म ने भी अपने धर्मों और धर्मों की बाँधें साँझकर देखा और उसकी हुरादियों को मारपेट निम्नता की। ऐहिक लालसा का मूल लुप्ता के पीछे मटकते हुए मानव मन कुरंगों की मगधमयित शरिता के सरस झूल पर लकर छोड़ दिया। मात्स्यी विषयों के दृष्टपरिणामों का उद्घाटन और प्रभु प्रेम का प्रतिपादन उन्होंने इस लुप्त के साथ किया कि लोभ हरि लीला गान की अनायास ही रत हो गये। और मयित के बिना समस्त साधनों को बन्दन समझने लगे। ज्ञान और वैराग्य का साधन बनाकर उन्होंने मयित के पद की प्रतिष्ठा की और ज्ञान एवं योग द्वारा अगम्यतन्त्र को भी मयित के धार मार्ग द्वारा गम्य बनाया। मयित स्वतः पूर्ण है, वह साधन नहीं, साध्य है, उपाया नहीं, लक्ष्य है, उसकी प्राप्ति सब कामनाओं की उत्पत्ति है। हरि का मयत स्वयं हरि स्वरूप हो जाता है, वह ब्रह्मा और महादेव से भी महान है :

हरि के जन सब से अधिकारी ।

ब्रह्म महादेव ते को बड़, तिनका सेवा कुछ न सुधारी ।^१

पुरुषार्थम लीला का धर्म धर्म साराजली में मिलता है। जब पुरुषार्थम की नित्य लीला की उच्छा हुई तो श्रुतियों को दर्शन दिया और प्रभु भी उनकी उच्छा पूर्ण करने का वरदान दिया। इसी लिये मयमान तो कृष्ण बनकर अवतार और श्रुतियों गोपी बनकर वायो और रास लीला से उनकी कामना की पूर्ति हुई :

दासन दिया कृपा करि मोहन, येनि दिया वरदान।
जगम करप रमण ह्य ह्य है, श्रीगुरु कल्याँ वरदान ॥

-- -- --
हाँ युति रूप होय जून महेल, कीन्हीं रास विहार ।
नमल कुंभ मे तस जाहु धरि, कीन्हीं कैलि अपार ॥ १

प्रभु की मृन्दावन लीला शारवत है । वादात गोलोक ही गोकुल में प्रविष्ट है ।
गोपियों के मध्य प्रभु नित्य लीला में मग्न रहते हैं :

जह मृन्दावन वादि नगर जह कुंभ उता विस्तार ।
तह चिरत प्रिय प्रियतम दौऊ निगम पुन गुजार ॥ २

जह गोविन्दन मर्मत मण्डिमय अपन कंदरा धार ।
गोपिन महेल मध्य विराजत निरदिन करत विहार ॥ ३

शारवत रूप जगत का मा वर्णन सुर सारावली में प्राप्त होता है :
कीन्हीं तत्व प्रकट लेही साणा, सेव जष्ट व- वीस ।
तिनकी नाम कहत कवि सुरज, निर्गुण सबके हंस ॥ ४

ब्रह्मात्मन मिय्या धधार का उल्लेख मा सुरसागर में मिलता है ।
रे मन सुरत जनम गवायाँ ।
यह धधार सुरा मेवर ज्यो हुन्दर देखि मुजायाँ ।
वासन लायाँ रुई गई उड़ि हाथ कछु नही लायाँ ॥ ५

१- सुरसारावली, १००८

२- वही ३

३- वही ४

४- वही ७

५- सुरसागर, २३५

पुष्टि मार्गाय मन्त्रित और पुष्टि मार्गाय सेवा प्रणाली पुराणगर के आयोपात मिलती है, क्योंकि पुराणगर का रचना ही धीनाय जो जो सेवा के रूप में हुई थी, पुष्टि, मर्यादा और प्रसाद के रूप में गोपामना, गोपी और प्रजागनाएं हुए आदित्य में मिलती हैं। पुष्टि पुष्टि के रूप में वे गोपामनाये हैं जो लोकवेद के नये सुनत होकर केवल कृष्ण को मन्त्रित है। इनके परकीया पात्र प्रधान होता है :

कारे पति सुत सोह कोनको, पर होकरा पठावत ।

केशी बर्म पाप है केशी, जाय निराय करावत ॥

हम गोपे केवल तुमही को, वीरद्वयाजसार ।

हुर त्याग निरारं लजिये, लजिये बचन विहार ।^१

मर्यादा पुष्टि के पाठन रूप में वे सुमारिकाएं हैं जो गोपामना और रवि की उच्चलि प्रजा करती हैं कि उन्हें कृष्ण पति रूप में प्राप्त हो। इनकी मन्त्रित स्वकीया पात्र की है :

विष लो विनय करति सुमारि ।

-- -- --

हमहि होहु दयालु दिनमनि, तुम विदित खसार ।

काम अति कम दक्षु दोनै, हुर परी मातार ॥ ३

नन्ददास जो दो पात्र पदा का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि उनकी श्याम आरंभ में वात्सल्य, रति त्याग स्वयं पात्रों की अवतारणा की गई है। यशोदा के हृदय में अमिलापा, अंत्युय, गोपाम विन्ता और रूप के द्वारा त्याग कीर्ति के हृदय में जड़ता स्वयं अन्य केदारा वात्सल्य पात्र की परिपुष्टि हुई है। रूप दर्शन और उसके उपरान्त आधेन विकृता जड़ता, विवशता, स्वरण, विन्ता, उत्तुक्ता, और लूपा द्वारा राधा के हृदय का रति पात्र रूप रूप त्याग विनोद के द्वारा ग्वाली के हृदय का अन्य पात्र प्रकट हुआ है।

१- पुराणगर दशमस्कन्ध, पद १०२४

२- मही ७७ पद ७६७

अनेकार्थ माया ने कवि ने ज्ञान्तर रूप दुःख काव्य को स्थान दिया है । वह एक और मन से लंछित चिकारों को दूर करने का यत्न करता है और दुःखी और मगवान को कृपा तथा कृष्ण का स्मरण करके उनसे अपने उधार को थावना के द्वारा उनमें जीन होने की कामना करता है । यह कामना मगवान की दीन वत्सलता पर आधारित है, अतः उसमें कवि के हृदय का वैचित्र्य भाव फलकता है । वह अत्यन्त अवीरता और विपन्नता का अनुभव करके पुकारता है, हे दीनदयाल, कति बलेश से मेरी सहाय करो ।^१ कवि ऊपर से कवि की दीनता का आभास वर्णन न होने की प्रतीति होती है, तथापि वह माया के जन्तराल में सतत विद्यमान रहती है और मार्ग पाने पर अचानक वारा की भाँति प्रसन्नमान हो उठती है । यहां ज्ञान्तर रूप के अनेक ही अवस्थायें माने एकत्र हो गई हैं । ज्ञान, वैचित्र्य, मति, स्मृति आदि अवस्था मान निर्देश भाव का पुष्टि के लिये पर्याप्त है । ईश चिन्तन^२ उधार की अवस्था^३ जीवन की प्राणमगुरता^४ का उल्लेख जालम्बन विभाव और विविध निषेध से युक्त ईश मजनापदेश^५ उद्दीपन विभाव का काम करते हैं । उधार से अवीर, तल्लीनता, विषय त्याग आदि अनुभाव के रूप में जाये हैं ।

नाममाया में कवि ने राधा के मान का दशा दिशाकर उसके हृदय में गर्व, कोप, मान, राधे, ज्ञान, अहंराम आदि भावों को दिखाया है । सत्त्वरी द्वारा प्रिय के गुण कथन, शीघ्र कथन, अहिम्नस्व प्रदर्शन, सुहावनी शब्द रचनी, कृष्ण की आकुलता के वर्णन से राधा के रति भाव को उद्दीप्त करने का प्रयास किया है । उसमें कृष्ण के हृदयस्थ भाव -- अमिताभा, आकुलता, विवशता, अर्थ आदि का वर्णन करके राधा के प्रेम भाव को परिपुष्ट करने की चेष्टा भी निहित है । उसमें कवि का हृदय प्रेम भाव की निमग्नतावस्था में राधा के मान का वर्णन करता है ।

१- अनेकार्थ माया, दाँहा ३३

२- वही दाँहा २४, ३७, ५७ आदि

३- वही दाँहा ३२

४- वही दाँहा २६

५- वही दाँहा ६०

कृति का विषय प्रसूतः रुद्र पयार्थं छिना होने के कारण कवि पाव तारतम्य को पूर्णतः स्पष्ट नहीं कर पाया है, किन्तु जहाँ कहीं भी अवसर मिला है उसने हृदय का पाव रस रूप से व्यक्तता हुआ उमड़ पड़ा है। कवि ने सखा के माध्यम से कृष्ण के हृदय-चिन्तन और आरति के माध्यमों को अपने सख्य रूप में परिवर्तित है तथा उसने राधा और कृष्ण की सहपूर्ण अवस्था का अनुभव किया है। तथा तो राधा के लिये निपट रहीली^१ और कृष्ण दन्धक-क-अनुभव-रि के हृदय की रस दशा को उकैल करते हुए राधा से रस में विषय विनिर्वाह तथा पारो धुर के प्रव निर विरह को रस मोहि^२ के कथन उसके मुख से बनावयाव निपट पड़ते हैं। उस मोहि राधा का हृदयस्थ प्रेम --- मान, गर्व और ईर्ष्या के कुछ अनेक माध्यमों में लौकर कृष्ण के साथ मिलन के बिन्दु पर स्थिरता को प्राप्त होता है।

रसमंगरी में कवि की माय दशा रूप कोटि को ही जाती है कि सखार में प्रवृत्ति अधिक मोरस है, उसके आचार का अनुसृति उसे मायान में ही होने लगता है।^३ और उसके कलत्र-प ही उसको प्रकट करने की ओर वह प्रवृत्त होता है। रस मंगरी को नर सिद्ध परम प्रेम रस भरी कहकर कवि ने सूचित किया है कि अनेकप्रकार को ही प्रयत्नता है कृति से अवलोकन से भी जात होता है कि उसकी रचना का आधार ही प्रेम पाव है और प्रेम को अनेक दृष्टिकोणों से प्रकट किया गया है। ऊपर से देखने में क्या पि ग्रन्थ में इतिवृत्तान्तकता ही दृष्टिगत होती है किन्तु जीव जीव से विषय के आग्रह से ऐसे रसुट कथनों का समावेश हो गया है जिनमें लौकर इति माय को लागे बढ़ाने का मार्ग मिला है कृति का विषय नायिका से होने और उससे विभिन्न मैदों का परिगणन करके लक्षण देने का अनिवार्य आग्रह होने पर भी कवि उसके अन्तराल में रति पाव धारा को प्रवृत्तमान करने में सफल रहा है। इन स्थानों का आधार काहे संस्कृत रसमंगरी रहा हो, किन्तु मनोमार्गों का जो विवर्ण नन्ददास ने उपस्थित किया है, वह नायिकाओं की पावदशा को प्राप्त हुए बिना कदाचित ही किया हो। यह नन्ददास की ही अनुसृति है जिसके परिणाम रूप रस मंगरी में जिवर दृष्टि

१- नाममाला, पृष्ठ २४१

२- वही दाँहा २०६

३- नन्ददास ग्रन्थाली, रसमंगरी, पृष्ठ २

जाती है उपर प्रेम रस होकरने किया हुआ मिलता है और उसे देखकर चित मो प्रेम रस से परिपूर्ण हो जाता है ।

रूपमंजरी में कवि को मगधतत्त्व की अनुसृति की रूपनियि के प में होती है । उसे जान पड़ता है कि मन के तरस हुए बिना रस भिरु का अनुभव नहीं हो सकता और मन को तरस करने की दृष्टि से ही वह रूपमंजरी में प्रेम पद्धति का वर्णन करता है । इस वर्णन का आधार उपपत्ति भाव है जिसका अनुभव उसे हनुमन्तो के रूप में रूपमंजरी के रूप के निष्कल होने की वारंश से उत्पन्न होम के उपरान्त होता है । कवि उस भाव की अवतारणा रूप मंजरी के हृदय में करना चाहता है और उस चाह के कार्य परिणयन के आधार से निर्विद एवं देव्य भाव सर्वप्रथम आते हैं । स्वप्न में अपने प्रियतम को पाकर रूपमंजरी के हृदय में अनुराग उत्पन्न होता है जिसे कवि ने उज्जा, विस्मय, अवस्थित और अर्थ के द्वारा प्रकट किया है तथा उसमें उसी प्रकार अधिकारिक पैठता जाता है जैसे हाथी पक्ष में ।^१

स्वप्न दर्शन के उपरान्त प्रियतम के प्रति उत्पन्न प्रथम प्रेम को हाव तथा डेरा के द्वारा रति भाव की ओर उ जाने की चेष्टा की गई है ।^२ यही आन्तरिक भाव के रूप में जाकुलता और शक्ति अनुभाव के रूप में स्तम्भ, ज्झु, स्वरमगे और वैधर्ष्य देखने को मिलते हैं ।^३ रूपमंजरी के द्वारा प्रियतम से प्रत्यक्ष में मिलने के लिये जाकुल होने पर उसके जाकुलता के भाव को कवि ने अति अद्भुत करकर प्रकट किया है ।^४ कवि ने उसके हृदय के विकलता के भाव को कलमल कलमल कर कहकर दिखाया है ।

उस प्रकार रूपमंजरी में नन्दवास की, रति या प्रेमभाव के द्वारा शृंगार रस की अनुसृति कराने की सकल चेष्टा निहित है । यहाँ शृंगार के तयौगे और त्रियौगे दोनों फाँटे पर उनकी समान दृष्टि रहती है । रति या प्रेम तो निरन्तर ही स्थायी भाव के रूप में विद्यमान है । आलम्बन रूप में रूपमंजरी और उसके अनुकूल नायक श्रीकृष्ण का

- १- मोगो, रूपमंजरी, पृ० २४४
 २- वही पृ० २६६-६
 ३- वही पृ० २८७-८२
 ४- वही पृ० २६४

चित्रण किया गया है। स्वप्न में निर्जित स्कान्त स्थान और मनोहर दृश्य उद्दीपन का काम करते हैं। विधांग फल में यही कार्य प्रियतम ओकृष्ण के गुण अवलोकन द्वारा प्रतिपादित हुआ है। क्लृप्तात, शोभा, स्तम्भिता, स्तम्भ, स्वरका, वंद्य, प्रलय आदि से भावों के बहिर्मुख होने का सूचना दी गई है। वीरसुन्दर, ब्रीडा, अश्रुता, अम, चिन्ता, दैन्य, उत्कण्ठा आदि संवारी भावों के रूप में जाये हैं। वस्तुतः उपमजरी ग्रन्थ की रचना ही कवि के भाव जगत की उपज है। उसमें इति वृत्तात्मकता जैसी वस्तु का स्थान नहीं मिला है। रति भाव के अतिरिक्त उसमें दैन्य, मम, निर्वैद जैसे भावों का भी रसक प्रभय मिला है। किन्तु इनकी उपस्थिति रति भाव की ही परिपुष्ट करती हुई विदित होती है। इस भाँति उपमजरी में केवल और एकमात्र रति या प्रेम भाव की प्रच्छन्नता स्पष्ट हो जाती है। किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि यह रति लौकिक नहीं, माधत रति है और इससे कवि के हृदय के मजित भाव की ही महज प्रदर्शित होती है।

विरह मजरी के आरम्भ में ही परम प्रेम उच्छलन^१ के कथन द्वारा कवि ने, ग्रन्थ में जाने वाले प्रेम या रति भाव की सूचना देने की चेष्टा की है। प्रेम की वृद्धि विरह द्वारा होती है, वनांतर विरह वर्णन के प्रयोग में कवि का कथन दृष्टव्य है, जिसमें उसका अभिप्राय है कि गोपियों के विरह से स्कान्त भाव स्थापित करके ही वनांतर विरह का अनुभव हो सकता है।^२ इससे प्रकट होता है कि कृति की रचना के समय नन्ददास विरहिणी गोपियों के मानस में पैठकर उनके भाव जगत से परिवन्ध प्राप्त कर चुका था और उस परिवन्ध रूप अनुभूति को प्रकट करने के लिये ही विरह मजरी का प्रणयन किया। उसी देशान्तर विरह का वर्णन कवि ने इस लिये किया है कि उसमें माधुर्य का रस सिद्ध होने का सामग्री मिले। देशान्तर विरह के इस वर्णन में स्मृति, विकल्पा, श्रुता, हर्ष, वपल्ता, अश्रुता, दैन्य, तथा वि, वितर्क आदि के द्वारा रति भाव की परिपुष्टि सर्वत्र ही हो गई है।

१- नोग्रं विरहमजरी, दोहा १।

२- वही चौपाई १४।

तत्त्वतः, विश्वमंगरी के स्फुटता के माय जगत की एक विशिष्ट स्थिति की ओर ही जैसे मिलता है। कवि का बारहमासा विरह का चित्रण स्पष्टतः माय चित्रण है। प्रत्येक माय के जागमग पर विरहिणी के हृदय की जो दशा होती है, उसको कवि ने मनोवैज्ञानिक ढंग से उपस्थित किया है। दूसरी ओर विश्वमंगरी में कथित बारहमासा, विरह को ही प्रकट करने वाली विशिष्ट स्थिति का प्रतीक है। कवि ने ब्रजवाला की जिस माय दशा का चित्रण किया है, वह स्वयं ब्रजवाला के लिये ही विरह वस्तु थी, क्योंकि प्रियतम के सात्त्विक्य में होते हुए भी महा विरह की अनुभूति होने की अवस्था उसे कभी कभी ही प्राप्त होगी।

लक्ष्मण मंगल में कवि ने रति की लयाने और विधाने दोनों अवस्थाओं का चित्रण किया है। रति माय में स्थित मनोदशा का सदन चित्र प्रस्तुत करने में वह पूर्ण एकल रहा है। उसमें वह स्थल अत्यन्त मा-पूर्ण बन पड़ा है जहाँ लक्ष्मण सिधुनालहि को देति की हुना से चित्र लिखी ही रह जाता है। कई स्थानों पर वीर, अद्भुत, हास्य तथा रौद्र रसों की भी छङ्गना की गई है जो लक्ष्मण के सात्त्विक अनुमायों का कवि ने एक साथ ही परिगणन कर दिया है जो अवसरता है। रति माय के अतिरिक्त अन्य जितने भी मायों का यहां समावेश हुआ है, कवि ने उनको वही ही मायप्रमणता से उस प्रकार रक्खा है कि वे रति माय की ही परिपुष्टि हेतु समाविष्ट हुए विदित होते हैं और स्वतन्त्र रूप से अपना कोई महत्त्व नहीं रखते हैं। उल्लेखनीय है कि लक्ष्मणमंगल में विवित रति माय से स्फुटता के हृदय से मगज रति माय की ही स्थिति का आभास मिलता है और उसमें जहाँ रति माय के आरोपण के लिये किंचित भी अवसर नहीं है।

रास पंचाध्यायी में रति माय अपना पूर्ण विकसित अवस्था में प्रस्तुत किया गया है। यहां कवि द्वारा अनुभूत उस माय का लयाने और विधाने दोनों अवस्थाओं का स्फुटता में यथासम्भव प्रकट करने का प्रयास दृष्टिगत होता है। रास पंचाध्यायी में रति माय के उपर्युक्त प्रकार से प्रकाशन होने पर भी यह बात नहीं है कि कवि

के हृदय में किसी भी दिशा में लौंकि रति विद्यमान थी । उस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि रास पदावली में जिस शृंगार रस की निष्पत्ति हुई है उसके आलम्बन श्रीकृष्ण और गोपियों है । श्रीकृष्ण पर ब्रह्म परमात्मा है, अतः उनके साथ बाँधे कोई जिस भाव से भी प्रेम करे उसे लौंकि नहीं कहा जा सकता । श्रीकृष्ण नन्ददास के दृष्टदेव, है, उन्होंने गोपियों के जिस कृष्णान्तेष्ट प्रेम का वर्णन किया है उससे यथार्थ में उनकी भावदरति के उत्कर्ष का ही अनुमान होता है ।

विज्ञानतः पदावली में भी उसी भावों का प्रथम मिला है जिसका चित्रण रासपदावली में किया गया है । उसमें अमिताभ, हर्ष, मद, निस्मय, आकुण्ठा आदि द्वारा गोपियों का रति भाव पूर्णता प्राप्त हुआ है और उनमें रति भाव की स्थिति नन्ददास के हृदय का भावदरति भाव को जतलाती है ।

प्रमरणीय में विरह को दशावली के द्वारा गोपियों के प्रेम की व्यञ्जना की हुई है । ये दशार्थ कभी सवारी भावों को भीति प्रेमभाव को परिपुष्ट करता हुआ दृष्टिगत होता है और कभी सात्त्विक अनुभावों को भीति उसका क्षयना देती है । यथार्थ में इन दशावली में व्यञ्जित गोपियों के प्रेम द्वारा कवि को मात्राक्षुति में तीव्रता और विस्तार की वृद्धि के साथ साथ सुमता के भी दर्शन होते हैं । यही कवि ने सभी मनोभावों का समाहार रति में करके उस भाव के विस्तार और सर्वोत्कृष्टता का प्रमाण दिया है ।

उससे स्पष्ट है कि नन्ददास ने रति या प्रेम भाव का ही प्रमुख रूप से चित्रण दिया है । दैन्य, निस्मय आदि जो भी अन्य भाव आते हैं वे अपने स्वतन्त्र रूप की अपेक्षा रति भाव की ही पुष्टि करते हुए विदित होते हैं । कवि की पदावली के अवलोकन से भी यही बात सात होती है । उसमें भी प्रेमभाव का ही प्रमुख स्थान मिला है । प्रेमभाव के अतिरिक्त नन्ददास के पदों में -- हास्य, अमर्ष, उत्साह, मय, और निस्मय के भावों का भी किंचित चित्रण मिलता है ।^१ किन्तु इन भावों का चित्रण अत्यन्त सीमित हुआ है और जहाँ भी चित्रण हुआ है उससे भाव परिपूर्णता का प्राप्त नहीं हो सका है । तथ्य तो यह है कि रति भाव के अतिरिक्त उत्साह आदि जो भी अन्य भाव कवि की कृतियों में मिलते हैं, उनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व उतना नहीं है जितना कि वे रति भाव की परिपुष्टि

की और उन्मुख हुए दृष्टिगत होते हैं । कवि ने रति मात्र को संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं में चित्रित किया है किन्तु वियोगावस्था के चित्रण अधिक हृदयग्राही बन पड़े हैं । यद्यपि कवि की वृत्ति वियोग का चित्रण करने में अधिक रही है । यहाँ उचित रति या प्रेम मात्र के आलम्बन सर्वत्र ही श्रीकृष्ण है जो कवि के दृष्टदेव है । अतः इस रति मात्र को जोरिफिर रति या प्रेम कहना संगत न होगा । प्रत्युत, कवि के मगधत्प्रेम का ही तीव्रता का इसी परिवेष मिलता है । यह पारवर्ष कहीं तो राधा और गोपिधर का प्रेम विवशता, कहीं लपकंगरी की निरधर मिलन का उत्कट अभिलाषा, कहीं विरहिणी ब्रज बाला की निरिष्ट प्रेमावस्था, कहीं यशोदा के हृदय के बाल स्नेह रस कहीं ललाचों के श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम के रूप में मिलता है ।

वही एक सुरदास जी की माधूमिका सम्बन्ध है उनका रचनाओं में माधुक्ता के तीनों गुण -- विस्तार, तीव्रता और सुकृता -- मिलते हैं । काव्य का आनन्द फल ही कवि का उद्देश्य है । आनन्द-तत्त्व जितना सुर के गीतों में है अन्यत्र सम्भवतः उपलब्ध नहीं हो सकता ।

सुरदास जी ने माधुक्ता के सरस स्वरूप को ही है जिन्हें हम कवि के माँटिक प्रयोग कहते हैं । रस की दृष्टि से वात्सल्य और धृंगार के अन्तर्गत इनका सम्निवेश हो जाता है । कृष्ण जन्म और बसाई, नामकरण, जन्मप्राप्त, कृष्ण का बलना, बाँध छवि वर्णन, कर्णध्वन, चन्द्रप्रसन्नता, ज्ञोदन, मासन धोरी, गोदहन और गोवरण प्रयोगों से वात्सल्य के अन्तर्गत विविध भावों का निरूपण हुआ है । कृष्ण जन्म के साथ ही साथ नन्द यशोदा तथा ब्रजवासीयों में लपकंगरी का एक सागर लहर उठता है, नन्द और पर गोदु स्नान हो जाती है, बलियों परस्पर घातलाप करता है, कोई बलन प्रपण पहनती है, कोई नहीं पहनती, बल दाँव रोचन आदि से मरी बलन धार लेकर नन्द धर को प्रस्थान करता है । आनन्द सागर की उदात्त तरंगें उमड़ती दृष्टिगोचर होती हैं ।

सुरदास जी ने कृष्ण की बाँध छवि का बड़ा माधुपूर्ण वर्णन किया है । कृष्ण का पालने में स्नान करना, सुटाना बलना, पावों बलना अपार आनन्द का

तुलने करता है। कृष्ण के वरुने के साथ ही नन्द यशोदा और गोप गोपियाँ से कृष्ण के निरापद जीवन के लिये अमिताप्राये उत्पन्न होती है। यशोदा का वात्सल्य सर्वत्र प्रमान रहता है। कृष्ण की जहाँ किके लोलावाँ का प्रमान तब पर पहुँचा है पर यशोदा पर नहीं। गोविन्द वारण के परवाल वह कृष्ण के साथ दवाती हुई बार बार बुझती है कि तुमने गोविन्द को कैसे उठाया ? मातृ हृदय का चित्रण सुरदास जी ने कैसे यशोदा के द्वारा ही नही किया है, देवकी, रंघिणी और राधा जननी के वात्सल्य के द्वारा भी पूरक रूप में प्रस्तुत किया है।

सुरदास जी के इस विस्तृत चित्रण के सामने नन्ददास जी का वात्सल्य तड़ा नही रह पाता। सुरदास जी ने लगभग ७०० पद वात्सल्य रस के उपाध्व पर है। क्लृप्त स्थायी पाप तो सर्वत्र है ही, हर्ष, अमिताप्रा, अतिशुद्ध, गर्व, उत्साह, वषर्ष, शोक, ग्लानि, स्नेह, चिन्ता, यास, विषाद, मति और दैन्य आदि संभारि पापों को भी प्रचुर स्थान प्राप्त है। कृष्ण और राधा के सौन्दर्य वर्णन, उनकी वेष्टावाँ, उम्मी मरी निरदृष्ट श्रोतावाँ और बाँल सुलभ मनोदेशावाँ के संफुल चित्रण से बाँल हृदय एवं मातृ हृदय का जो विषद वर्णन सुरदास जी ने प्रस्तुत किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

शृंगार चित्रण में सुर की भावानुमाति के और भी स्पष्ट दर्शन होते हैं। सुर की कलाकृति का सबसे बड़ा भाग शृंगार रस के अन्तर्गत ही प्राप्त होता है। शृंगार के दोनो प्रकार -- लयाने और विनय -- का सुरदास जी ने दि० साँझकर निरूपण किया है। श्रीकृष्ण सौन्दर्य वर्णन, सुरजी स्तुति, श्री राधा कृष्ण मिलन, सुत विलास, वीरवरण, रास, नृत्य, जलक्रीडा, श्रीकृष्ण ज्याँनार, गोपी हरी प्रण, पनवट लीला, दान लीला, ग्रीष्म लीला, यमुना गमन, सुत समागम, नैन और आँसु समय के पद, दम्पति विहार, मानलीला, लण्डिता प्रकरण, राधा नान, सुतापुन्दरावृह गमन, कृष्ण, नक्षत्र लीला, वर्णन, कृष्ण का मथुरा गमन गोपी विरह वर्णन, तथा प्रमरगीत आदि प्रकारों में शृंगार से सम्बन्धित हृदय की प्रत्येक लहर को काव्यवश किया गया है और कवि ने इस क्षेत्र का कोई भी कोना छूटा नहीं छोड़ा है।

सुर सागर में प्रेम की विविधता के दर्शन होते हैं। राधा कृष्ण प्रणय तथा सुर विजाय में सुरदास अपना स्थान छोड़ बैठते हैं। सात 'वर्ण' के राधा कृष्ण का पूर्वानुराग परकीय प्रणय में परिवर्तित विस्तार पड़ता है। राधा कृष्ण का सुरति विजाय तक वे निः कर्षण उपस्थित करते हैं। उनको लिये कृष्ण और राधा बालक या लिका नहीं रह जाते। प्रतीत होता है कि काव्य अपनी कल्पना में उतना माद विभार हो गया कि राधा कृष्ण का स्वप्न सर्वथा भुल गया। प्रेम को उन सभी अवस्थाओं का वर्णन सुर सागर में प्राप्त होता है जिनको काव्य शास्त्र में स्थान मिलता है। उसमें खूबसे नहीं कि सुर का कृष्ण निष्पण रातिकालीन कवियों के शृंगार निष्पण से विभन्न है। सुर ने प्रेमजीवा के वर्णन में लोक प्रेम की विन्ता नहीं की। विस्तार के आ विषय से उसमें बहुनायकत्व का समावेश भी हो गया है।

सुरसागर में वियोगात्मक अवसर उत्तरे अधिक नहीं है जितने वियोगात्मक। वियोग का लीलाजी का ऊँचा बहुत बड़ा है। विरह के लो दोही बरसर मिलते हैं एक बरसर के जाने पर गोपियों की उद्दिनता तथा कृष्ण के मधुरा गमन पर परस्पर विरह व्यंजना और दूसरे उद्यम के आगमन पर प्रसंगीत। इतने पर भी पद ऊँचा बरह प्रक्षान में वियोग से अधिक है।

सुरसागर के पूर्वानुराग में विरह व्यंजना कम है। उसमें वियोग तुल ही अधिक है। दो बार २ पद ही विरह व्यंजना प्रस्तुत करते हैं। मान प्रणय में अन्यथा ही कोठी कसक मरी घेदना प्रबुर माता में कुण्टिनाविर होती है। प्रमास अवस्था का विरह प्रसंगीत में मिलता है। विरह की ग्यारह अवस्थाओं -- अमिलोपा, विन्ता, दुणकयन, स्मृति, उद्योग, प्रसाप, उन्माद, व्यापि, बहता, मूर्च्छा और मरण तथा प्रमास विरह का दस स्थिरियाँ -- असाष्ठव, मलिनता, कलाप, पाण्डुता, शृङ्खला, जलचि, अमृति, विमलता, तन्मयता और उन्माद -- सभी के

१- मरी बरध सातकी तुम परी जातकी, प्यारी दोउप्रात कीयकी मारी ।
सुर सागर (समा), दसमस्कन्ध, ६८६

२- सुरसागर (समा) दसमस्कन्ध पद ६७०, ६७१, और ७६ ।

उदाहरण मिल जाते हैं। विरह ने बहुतों की वातावरण उद्दीप्त करने का कार्य करती है। कवि काव्य शास्त्रीय दृष्टि रखकर उन्होंने विरह का वर्णन नहीं किया था तथापि विरह पदों के विस्तार में सभी अवस्थाओं का वर्णन स्वतः पर गया। कृष्णात्मक विरह दुःखान्त छाया में ही दिखा करता है। भारतीय काव्य परम्परा में रक्षा वर्णन प्रायः नहीं मिलता। पर धूर के काव्य में कृष्णात्मक विरह भी मिल जाता है क्योंकि गाँधी कृष्ण वियोग तो विर वियोग ही था।

कुलोज में कृष्ण का गाँव गाँवियों से मिलना मौलिक प्रश्न है। सम्भवतः भारत काव्य की परम्परा की कृष्णात्मक रसने के लिये ही सुदास जी ने इस प्रश्न की अवतारणा की है और राधा मायम की रक्षात्मक अभिन्नता दिखाने, कृष्णात्मक विरह की आध्यात्मिक आनन्द में लुप्तता बताने हैं। निःसन्देह यह कल्पना धूर की प्रलम्बा का अप्रतिम उदाहरण है। कवि ने सुषिष्ट मार्गीय शाश्वत, सुन्दारन धिक्कार के तत्त्व निर्देश द्वारा कृष्णात्मक विरह पर आध्यात्मिक आनन्द का परिच्छेद छोड़ दिया है। इसके द्वारा न केवल राधा कृष्ण प्रणय जीवा की पुनीतता और मूल प्रशस्त होती है बल्कि कला अपने गन्तव्य पर भी पहुँच जाती है, मार्गस्थ की भाँति असुरी नहीं रह जाती।

सुदास जी के वात्सल्य, ज्योति और वियोग के सभी पदों में मानों की तीव्रता अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई है। उसी आनन्द की विद्यावत्या का पूर्ण परिपाक प्राप्त हुआ है। काव्य की मूल भाव प्रेम का ऐसा विस्तृत और क्लृप्त वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है कि पाठक का मन रस के सागर में निमग्न हो जाता है। उसने दीप्ति, माधुर्य और कोमलता की तात्प्रत्यक्ष स्थिति मिलती है। प्रेम के कृष्णात्मक और कृष्णात्मक दोनों प्रकार के भावों में प्रेमानन्द का अलग अलग भावार्थों में विच्छिन्न होता है। कवि ने वाह्य और आन्तरिक दोनों ही पक्षों का क्लृप्ततम और गहनतम चित्रण प्रस्तुत किया है। वाह्य चित्रण में नयनाभिराम शब्दों, बहुश्लेष रम्य प्रकृति की पृष्ठ भूमि, मोहिनी ललाटे, चमक चमक, सुरी की तान, मनोहरिण मासने वाली, दान, मान, रास आदि की ललाटे, शीत, नृत्य, परिलख स्त्रियाँ तथा आन्तरिक चित्रण में प्रमासुरीत की चरमावस्था

उल्लास, मादकता, आत्सुक्य, विरह वेदना, हृदय परवशता आदि के हृदयाहारी वर्णन मिलते हैं।

कृष्ण की बाँल छवि, उनकी बाँल घुलम घँटावे, नटसटपन, प्रत्युत्पन्न मति, सज्ज बाबाळता आदि हृदय पर अधिकार करने वाली है। कृष्ण रौन्दों का ऐसा व्यापक प्रभाव दिलाया गया है कि उसमें गोपि गोपी, सुर नर सुनि, पशु पक्षी सभी जानन्द नन्द में उलरते दृष्टिगोचर होते हैं। अयोग प्रकाश में तो कवि की मादुकता सीमा का उल्लेख कर जाता है। उल्लास के प्रत्येक पद में मान तीव्रता वरम सीमा की है। रास, हृन्दायन विहार और जलकाहा के समस्त पद मान प्रवणता के तीरेपन और मनोवेला निक पर्यवेला पर ही अति प्रीत हैं।

प्रसंगित में गोपि विरह कीमाव प्रवणता का सम्भीरतम चित्रण है। गोपियों की छुंफलाहट, उनकी कटुस्त्रियो प्रताप सभी हृदय ब्रावकता के खनामा विक रूप है। यद्यपि उसे प्रसंग में राधा की बर्बा बहुत कम है। केवल दो बार पदों में ही उनका उल्लेख मात्र है। फिर भी कवि ने कम के कम शब्दों में जेसा सम्भेपशी चित्रण किया गया है जेसा क्माचित ही बड़ा उपलब्ध हो सके। रीति काजीन कवियों के आह्लात्मक वर्णन या सुलसी के मर्यादित और 'सम्भीर' वर्णन उस पद की मात्र प्रवणता के सम्मुख फीके पड़ जाते हैं। राधा के चित्रण में कवि केवल शारीरिक कृपाता और निर्वलता ही का उल्लेख करके नहीं रह जाता। वह तो उसके सुद हृदय की परवशता, कन्-कन्-के देन्द, वेदना, रोषहीनता और आशा की टिमटिमाती किरण की चक्ष्मना से विरह को अत्यन्त ही सुनील और मा मिक बना देता है।

सुरदास जी के प्रज्ञा-बहु अन्तरस्थ को गहनतम स्थल तक पहुँच जाते हैं। बाँल जीला में सुदम मावाभिव्यक्ति के कितने ही स्थल मरे पड़े हैं। बाधेस और सुमता को यह पराकाष्ठा एवं माधों की तीव्रता बालसत्य निरूपण में अन्य कहीं किसी भी कवि में उपलब्ध नहीं है। सुरदास जी की रसानुसृति का जोत्र विशाल

था । जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में जाकर कुछ एक में ही रम जाना उनका स्वभाव था । वात्सल्य और वृंगार का तो उन्होंने कौन कौन साके ही लिया, वीर, हास्य, रौद्र, मयान्तक वादि राजों का जो प्रक्षान्तुषार विमर्श उन्होंने किया है, उसमें भी वे नन्ददास जी की अपेक्षा कहीं अधिक सफल हुए हैं । सुर की मूर्ति सरस काव्य-पे का निर्माण नन्ददास न कर सके । नन्ददास काव्य के शरीर परा का और अधिक ध्यान देते थे । वे काव्य के अन्तर्ग परा का देहा वृंगार न कर सके जैसा सुर ने किया है । मौलिकता की दृष्टि से मा नन्ददास सुर के अनुवर्ती हैं ।

अध्याय पाँचम

सुन्दरास की काव्य कला का तुलनात्मक विश्लेषण

(अलंकारों व शब्दों की दृष्टि से)

सुन्दरास ने अपना काव्य दूर की तरह शब्द तथा पद दोनों शैलियों में लिखा है और उन्होंने अपने काव्य में कई शब्दों का प्रयोग किया है। उपर दूर का वाग्वैद गन्ध सहृदयता से समन्वित है इसी कारण दूर काव्य में अलंकारों का घटाटोप का दर्शन अधिक नहीं होता और इसी कारण दूर अपने रूप चित्रण में तर्जन श्रद्धाशील दोलन पहुँचे हैं। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग विशेषकर शब्दार्थोपमा के लिये ही किया है किसी वस्तु के लोचनोत्कर्ष के जब कवि की शब्दार्थोपमा समझ में आती है, हृदय ललित हो जाता है तो उसकी कल्पना उस वस्तु से शब्दों को अधिक हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक बनाने के लिये अप्रस्तुत व्यक्तियों की भाँति का संनिवेश करने लगती है उस समय कवि की रचना में अलंकारों का समावेश स्वतः हो जाता है। यही कारण है कि दूर की रचना में हमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यक्तित्वोपमा, प्रतिबल्लुपमा आदि अलंकारों के दर्शन होते हैं।

सुन्दरास की अलंकार भाँति बहुत सामान्य है। व्यक्तियों के शब्द समतल में से नहीं पड़े प्रतीत होते। सुन्दरास की अनोखी लुका लुकाई और काव्य में अधिक शक्ति लाने का कुशलता का परिचय हमें उनके अलंकार विधान में प्राप्त होता है। सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग उनके काव्य में पाया जाता है। अनुप्रास तो पवित्र पवित्र ही मिलेगा। अन्य शब्द मुख्य अलंकारों में भी समस्त शब्दों आदि पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इस प्रकार सुन्दरास व सुन्दरास ने अपने अपने काव्य में अलंकारों का प्रशस्नीय प्रयोग किया है। इससे पुनः कि हम दोनों की उही भाँति पर तुलना करे अलंकार दोनों की अलंकार व शब्द प्रयोग के विषय में कुछ जानकारी हो सके।

नन्ददास ने अपने काव्य में शब्द व अर्थ दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में से अनुप्रास के स्वाभाविक प्रयोग ने उनकी भाषा की सुति मधुर बनाया है। अलंकारों के प्रयोग में कवि को अनोखी छूफ और काव्य में अर्थोन्मीरता लाने की कुशलता का परिचय मिला है। नन्ददास चमत्कार वादी कवि नहीं थे, उनके काव्यमें अलंकारों का प्रयोग मात्र व भाषा को सजीव और चिन्ताकर्षक बनाने के लिये ही हुआ है। उनके प्रयुक्त अलंकारों में से उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा, सन्देह, स्मरण, प्रतीप, उदाहरण, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति, विभावना और अलंति विशेष उल्लेखनीय हैं। रूप वर्णन में स्वल्प बोध कराने तथा मात्र चित्रण में भावोत्कर्ष लाने के लिये कवि ने उत्प्रेक्षा से काम लिया है। नन्ददास की उत्प्रेक्षाओं की कल्पना बड़ी सांघिक व प्रभावशालिनी होती है। उनमें मौलिकता होती है बेधिर पेर की उलान तथा शब्दों की कलावाजी नहीं है। रूप मंजरी में अनेक धूमितियाँ सुव्यकारिणी बन पड़ी हैं। विरहमयरी में विरह भाव की गहन वेदना के परिचय के लिये अतुलित का अधिक सहारा लिया गया है। छुड़ामा चरित्र, रथाम आदि तथा गोवर्धन लोला ग्रन्थों में उचित का विचित्रता बहुत बल्य है। कवि के सम्पूर्ण काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि काव्य कला का, सर्वोच्च उत्कर्ष तो उनकी रास पंचाध्यायी में है। मान मंजरी यद्यपि कोष ग्रन्थ है, परन्तु रास के मान मनावन के वर्णन में अलंकार शीष्टव में वर्णन की रसिकता को आकर्षक बना दिया है। अनुप्रास वि शब्दालंकारों तथा उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक आदि अलंकारों से लदा जिस बादरी साहित्यिक भाषा की कवि ने धृष्टि की है, उसके सरस प्रवाह है, अवसुत लीति है और हृदय पर चोट करने की अपार क्षमता है।

सादृश्यमूलक अलंकार :

नन्ददास ने उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का बहुत बखूबी विधान किया है। बहुधा कवि एक बात कहकर उसकी धृष्टि में उपमाओं का असीम चमत्कारिक फाँदी

लगा देता है कि पाठक उसकी कला पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता । उसकी उपमाएं बहुत ही चित्राकर्षक एवं चित्रात्मक हैं । कुछ उदाहरण देखिये :-

छाल रसिक के दूकें बचन धुनि वफित पश्यो ।

बाँल मृगिन की नाँल सवन वन मुठि परीज्यो ॥

(रास पंचाध्यायी)

गोपिकाओं की वफित वित्थन का मटकी हुई बाँल मृगियों की वफित वित्थन से कैसा सुन्दर साम्य है । वही प्रकार --

कामल किरन अलिनियो वनमें व्यापी रही बस ।

मनस्जि लेख्यों कागु धुमहि धुरि रस्यों गुलाब बस ॥

(रास पंचाध्यायी)

शरद की चन्द्रकिरणों का गुलाब की अलणिमा से साम्य दिखाना मन्ददास की मौलिक कृता है । ध्यान रहे यह गुलाब भी कामदेव का गुलाब है । इस प्रकार रासपंचाध्यायी की निम्न पंक्तियों में गोपियों की चित्रात्मक अवस्था का सुन्दर वर्णन है --

मधे परस्पर लखी लखी तिरछी अलिनियो बस ।

रूप उदयि स्तराति रंगीली मान पोति बस ॥

वाक्यार्थोपपत्ता का एक सुन्दर उदाहरण लाविये । पर्यंत कहे में कामदेव ने उत्पन्न मवा रखा है । विरहिणी रूपमंजरी का विरह ज्वाला तीव्र से तीव्रतर होती जा रही है । इन दोनों (वसन्त और कामदेव) का मेल उसी प्रकार विरह ज्वाला को दहकाने वाला है जिस प्रकार अग्नि व पवन का मेल अग्नि को प्रबुद्धता प्रदान करता है --

वित्त वसन्त लता दाँउ रसे ।

पावन पवन मिले जग जंसे ॥

(रूप मंजरी)

उपमा और उत्प्रेक्षा दोनों के अन्तर्गत वे रास क्रीड़ा में गांपिकाओं और कृष्ण के मन्दलाकार नृत्य का केश तुन्दर वर्णन कवि ने किया है --

नमः परकृत मनि रयाम कन्क मन्गिन प्रजयाता ।

कुन्दावन काँ रोकि मनहुं पारशरि माजा ॥

(रासपञ्चाव्यायी)

उत्प्रेक्षा के द्वारा कही कही मन्ददाउ ने बहुत सुन्दर गयात्मक चित्र उपस्थित किये हैं । रास क्रीड़ा में गांपिकाओं की खिलती हुई चेहरे का चाम्प लताओं के ली लीलता हुई अलि चेहरे के साथ दिखाकर मन्ददाउ ने जो गयात्मक चित्र आँखों के सम्मुख उपस्थित किया है वह उनकी कवित्व शक्ति का परिचायक है --

चंचल हव ललनि की छोलिनि अनु अलि चेना ।

छपिली तियन के पाये बाँ बिबुल्लि पेना ॥

(रासपञ्चाव्यायी)

गम्भीरउत्प्रेक्षा का एक बसूठा वर्णन देखिये । कवि नायिका का चेहरे का वंचलता पर कल्पना करता है कि बाल्याभूषण में जो वंचलता पायों में थी वह अब पायों से आँखों में आ गई है । यावन का केश तुन्दर वर्णन है । यावन काँ में पायों का ऊँचा के कारण ठिठकना और चेहरे का अपनी करामात दिखाना किन्हीं सुन्दर ढंग से व्यञ्जित है --

वालपने पग वंचलताई ।

चलो अजोली नेनि जाई ॥

उन उत वहनि चरनि अचुराने ।

बात करन जानन लोँ जगे ॥

(उपपञ्चरी)

अधिकतः परम्परानुसृत हो है, परन्तु कवि ने अनेक स्थानों पर उनकी बहुत ही योग्यता करके अपना प्रतिभा का परिचय दिया है । कहीं कहीं नये उपमान

और बिल्कुल नई व अन्धों हुआ हुआ जो पाई जाती है । निम्न पंक्तियाँ देखिये --

कुंज कंज प्रति कुंज जति ।

कुंजत हृदि परमात ।

जनु रवि हर तम तजि मज्या,

रोवत लाके तात ॥ (५३)

(ऋषभरी)

काँउ मधराँ काँउ प्रकार अवकार के बच्चे बताना बिल्कुल नवीन हुआ है । निम्न पंक्तियों में कन्देह व उत्प्रेक्षा का मिश्रण देखिये --

गौर तन का जाँति छुटि हृदि छाव रज पर ।

मानहुँ ाड़ी कुंजरि सुमन कंचन जनि पर ॥

जन वन ते विजुरि विहरी मानिनि तनु काँवै ।

दियौ बड़ सौं सुखि चोड़िका रहि गई पाँवै ॥

(रासपवाध्यायी)

वास्तव में कन्ददास ने वस्तु और रूपवर्णन में तथा भाव चित्रण में स्वरूप वाँच कराने एवं भावार्थकर्म लाने के लिये उत्प्रेक्षा के विशेष काम लिया है । उनकी उत्प्रेक्षाओं की कल्पना बड़ी मार्मिक व प्रभावशालिनी होती है । इनकी उत्प्रेक्षाओं के कारण ही कन्ददास का वर्णन शक्ति बहुल कलात्मक बन गई है । इनहीं में उन्होंने अपनी कल्पना का परिचय दिया है । चाहे रसपुनि का वर्णन हो (रासपवाध्यायी) चाहे ऋषभरी का वर्णन नार (निर्मयपुर) का, कवि सर्वत्र उत्प्रेक्षाओं की काँड़ी लगा देना है, जिसमें वर्णन में कलात्मकता एवं सजीवता का उद्भूत संचार हो जाता है ।

सुनि कुन्देह के जगों की शोभा का वर्णन कवि ने कल्पनायुक्त ढंग से किया है । उनके कलास्थ का वर्णन करते हुए कवि कहता है --

हुन्दर उदर उदार रौमावलि राजत मारी ।

लिप्य उरवर रस पुरि चलि मनु उमगि मनारी ।

हेतुप्रसाद, रूपक तथा रूपेय से पुष्ट ये पंक्तियाँ कितनी मनोहारी हैं। मुनि
शुभदेव के विशाल कलास्थल पर विपुल रसभावली सुशोभित है, मानों कृष्ण की प्राप्ति
की वारा उनके हृदय की सरोवर को पारपूर्ण करके बाहर उमड़ चली है।

निर्मलपुर की अमरासयों और ताललाताओं का वर्णन नन्ददास ने कैसा
स्वीयता के साथ किया है देखते ही बनता है। उनकी वर्णन शक्ति उद्भूत है —
आस पास अमरासय बरारी जहाँ ला फूल तिथि फुल्लारी।

कवि का वर्णन शक्ति इतनी विख्यात है कि वह जिस वस्तु का वर्णन
करता है उसी में जान डाल देता है। निरुद्ध नन्ददास ने कवि जायसी और तुलसीदास
की तरह एक सफ़ल कलाकार की ही विशेषता है या यह दूसरी बात है कि उनकी
विशिष्ट पद्धति ने उन्हें कोई सुन्दर प्रबन्धकाव्य नहीं लिखने दिया^६। अष्ट
काव्यों में नन्ददास की यह प्रमुख विशेषता है।

नन्ददास की उपमान योजना में कहीं कहीं सादृश्य की बजाय प्रमान साम्य पर
ही ध्यान रखा गया है। निम्न पंक्तियों में विरहिणी को हर्ष शोक से पूर्ण
अवस्था उसे लौटार की सहाती बनाकर बताई गई है जो कभी क्षण भर पानी
में रखा जाता है वही आग में —

हहि त्रिपि वल वेशल हहि,
हीत्यों दुल सुल लागि।
सहसि मज्जुहार की,
सिन पानी सिन आगि।

(विरह क्लेश)

उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा आदि अङ्कारों के सम्मिश्रण से विरहिणी
गोपागनाओं का कैसा स्वीय चित्र नन्ददास ने प्रस्तुत किया है।

६- अष्टकाव्य के कवि नन्ददास- के प्रो० कृष्णदेव पृष्ठ २३७

सुख के घोड़े हवि-सौम,
ग्रीव नय चलि नाँ सी ।
अटक अलिन के मार नमित,
मनु ककल माँ सी ।

(रासपञ्चायायी)

इन पदित्यों में अतिशयोक्ति, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास ये पांच अङ्कार किस छुबी हैं उन्को छु है ।

सादृश्य मूलक अङ्कारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक के बाहुल्य प्रयोग के अतिरिक्त अन्वेष स्मरण, प्रतीप अस्मिन् अतिशयोक्ति, दीपक आदि अङ्कारों का भी नन्ददास ने प्रयोग किया है । स्मरण अङ्कार का एक सुन्दर उदाहरण देखिये—

मारन नूतन बंदना डारे ।
देखि देखि दृग लॉत दुतारे ॥

(विरह मञ्जरी)

कैसा सुन्दर अस्मिन्धित है । मारों के बंदना को देखकर मारे सुकुट मारे कृष्ण की याद तड़पाने लगता है ।

दीपक:

पादाँ अति दुख रेन, कहियो रन्वु गोविन्द लो ।
यन अल तिय के नेन, लोहनि बरसत रैन दिन ॥

(विरह मञ्जरी)

तर्क न्याय मूलक अङ्कारों में नन्ददास ने अर्थान्तरन्यास कृष्टान्त तथा उदाहरण का विशेष रूप से प्रयोग किया है अर्थान्तरन्यास का उदाहरण देखिये —

धुनि कहै उदय साधु लो नित लो है मारै ।
पारस बरसाँ लोह हरन्त कुबन ह्वे जारै ॥

(प्रमरगीत)

विराज सुल्ल अलंकार

विराज सुल्ल अलंकारों का प्रयोग मा नन्ददास के काव्य में स्थान स्थान पर मिलता है । विराजामास असंगति विभावना, विषय आदि समे विराजामुल्ल अलंकारों के उदाहरण पाये जाते हैं । असंगति के सुन्दर उदाहरण देखिये --

गीत विपरित रही तब मैना
गरजे बन बरसै तिय मैना ।

(विरह मुञ्जरी)

कारण कही है और कार्य कही । पशुवारण के समय कांगे लगे तो कृष्ण के पाव में हैं, किन्तु कसक होती है गोंवियों के छुद्यों में,
जब पशुवारन चलत बरन कोमल धरि बन में,
खिल त्रिन कटक बटकत कसकत हमरे मन में।

(रासपचाव्यायो)

विराजामासः

प्रजरिपरत अब जगे सन,
योका चंदन जगि ।

(विरह मुञ्जरी)

विषयः-

कहां लो कुटिल कुवालि लिय को,
कहां रह दसा साधरे पिय को ।

(रूप मुञ्जरी)

सुधालंकार योजनाः

सुधालंकारों में अनुप्रास तो पवित्र पवित्र में पाया जाता है । इस अनुप्रास

के कारण ही नन्ददास को पदावली अत्यन्त मधुर एवं कोमल हो गई है । गीताविन्द-
कार जयदेव की, उल्लिख्य लता परिशालन की ही कोमलता इन पदित्यों में देखिये --

उल्लिख्य लता नि को होहि ।

होसि बोलों होलौ गलनों ही ॥

(विरह मंजरी)

कृति सुन्दर, यमक का समुत्कार भी कितनी ही पदित्यों में बढ़ी ही सरलता
व जीवता से लाया गया है ।

इस प्रकार नन्ददास की अलङ्कार योजना पर्याप्त रूप से सफल रही है ।
अलङ्कार सर्वत्र भाव व वस्तु का उत्कर्ष बढ़ाने में सफल रहे हैं । अपवाद रूप में
हृदय स्थल पर अप्रस्तुत विधान में भी कवित्व का ध्यान कवि को नहीं रहा है ।
कहीं कहीं नन्ददास ने अहात्मक शैली का भी प्रयोग किया है जो आगे बिहारी
के काव्य में तो बिल्कुल दिखाई देने लगे । प मंजरी के रूप लाक्षण्य का वर्णन
करता हुआ कवि कहता है कि उसके आनन आप में राजा का मवन प्रकाशित रहता
है और शब्दा में जो कोई दोषक नहीं जाता :-

ता मृपन के मदन कोऊ,

दीप न बारत सांक ।

झिन हो दोसाई दीप बिधि,

दिपज कुंहरि घर नांक । (६६)

(अपमंजरी)

इससे भी बढ़कर बिहारी का ऊँचा दैतिये कितनी अतृप्त्य पर आधारित
हो गई है :

पत्रा ही तियि पाहर वा वर के वहु पाव,

नित प्रति पुन्योहि रहत आनन आप उपाव ।

इन पदित्यों में बिहारी नन्ददास से भी आगे बढ़ गये हैं । नन्ददास वास्तव
में शब्दों के अधिया रूप में प्रसिद्ध हैं । नन्ददास के विषय में यह उचित और सम

गढ़िया नन्ददास बड़िया बाज भी बड़ा प्रसिद्ध है, जो उस और नन्ददास का महत्व को प्रदर्शित करता है । नन्ददास की अद्भुत अभिव्यक्ति की शक्ति का सभी लोग मानते हैं । गुरदास तो नन्ददास से भी अधिक उच्च स्थान पर विराजमान है ।

वास्तव में नन्ददास के ऊपर गुरदास का कला का सर्वांगीण प्रभाव पड़ा है । गुरदास तो अपने समय के विख्यात महात्मा एवं कवि थे । तुलसीदास जैसे प्राचीन कवि का उनके प्रभाव से बच नहीं सके । तुलसी के अनेकपदों पर गुर की छाया स्पष्ट देखा जा सकती है । कई पद तो ज्यों के त्यों ही मिलते हैं । फिर नन्ददास महा गुर के प्रभाव से कैसे बच सकते थे ? वे तो उसी सम्प्रदाय में ही दीक्षित थे, जिसमें गुरदास का परम भक्त, उत्कृष्ट कवि और सम्प्रदाय के स्वामी के रूप में पहले से ही प्रसिद्ध थे । यही नहीं, नन्ददास को दीक्षा देकर गोसाईं विठ्ठलनाथ ने सम्प्रदाय की शिक्षा और कर्तव्य सेवा आदि सिखाने के लिये गुरदास के पास हाँठ दिया था । कई महीने गुरदास के सम्पर्क देखकर नन्ददास ने सम्प्रदाय का ज्ञान ही प्राप्त नहीं किया, बल्कि काव्य परिपाटी में गुरदास से सीखा । नन्द नन्दनदास हित साहित्यलहरी कीन के अनुसार गुरदास ने साहित्यलहरी की रचना नन्ददास के ही लिए की थी । नन्ददास का मंत्रगीत गुरदास के दोहा राँहा की मिश्रित छंद शैली वाले प्रमणीत की ही शैली पर लिखा गया है । सबसे स्पष्ट है कि नन्ददास ने गुरदास से ही दोहा राँहा छन्द शैली उधार ली ।

नन्ददास ने अपने ग्रन्थों में राँहा, दोहा तथा बाँपाई छन्द को अधिक अपनाया है । उनसे पूर्व के कवियों ने जैसे जायसी, तुलसी आदि ने ब्राह्मण काव्यों के लिये दोहा बाँपाई पद्यति का ही अनुसरण किया था । जैन प्रबन्ध काव्यों में ही यही पद्यति दृष्टिगोचर होती है । नन्ददास ने भी माया दशमस्कन्ध, उपमंशु, विरहमंजरी और रसमंजरी ग्रन्थों में इसी दोहा

वाँपार पद्धति का क्रम प्रारम्भ से अन्त तक अपनाया है । प्रत्येक वाँपार के उपरान्त एक दाँहा जाता है जध्मा कही कही जोरठा पा जा जाता है । कही कही लोँठा और दाँहा दाँहा का कुंजत प्रयोग हुआ है । जोरठा और दाँहा किसी नियत क्रमानुसार नहीं रहे गये । इस मन्जरी में यदि वाँपारों में अर्द्धालियों का क्रम देखा जाए, तो स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक वाँपार के अर्द्धालियों की संख्या विभिन्न है । वहाँ पर अधिक से अधिक तथा कम से कम बार अर्द्धालियों का हुआ है । परन्तु वर्णन प्रयोग में प्रारम्भ होने के पश्चात् वाँपार बहुत उम्हरी बन गई है परन्तु उनके विपरीत अन्त्य केवल बार पंक्तियों की वाँपारों में देखने को मिलती है

कुँहरे कहै सति किहि विधि कहिये,
इस वचन के नाहिं नहिं ।
इस को रस जानै यह नैरा
तिनहिं नहिं विधि दाँहा बैना ।
अ यह रूप जनुपम जैता,
नैननि गह्या गयी नहिं तैता ।
ज्याँ हुँदा का स्थाति को पाई,
चातक बनुपटी न समाई ।^१

रसमन्जरी के अन्तर्गत नायिकाओं के लक्षण वाँपारों में दिये गये हैं, दाँहे का प्रयोग बहुत कम हुआ है । कहीं कहीं लक्षणों की व्यवस्था करने के लिये बख्सा उन्हें स्पष्टता प्रदान करने के लिए दाँहा लिया गया है । विरह मन्जरी में प्रत्येक वाँपार के उपरान्त दाँहा जाता है । परन्तु वाँपारों की अर्द्धालियों में यही ही असमानता है । सभी अर्द्धालियाँ एक ही नहीं हैं । इसमें कवि ने जहाँ बारहपास का वर्णन किया है वहाँ पर प्रत्येक वाँपार का प्रारम्भ लोँठे

वे तथा जन्त दाहे से हुआ है । उदाहरणार्थ :

चैत चलो जिनि फल, बार बार पो परि कहुवाँ ।

निपट अलत दलत, मेन महा मयमत बह ।

तद पि न रहे चले उँ चले ,

कलियाँ बंद मले जु मले ।

तब होँ काँफिउ कुहु कुहु मियाँ

हुनतहि दहकि बहकि गजाँ शियाँ ।

जलवर निमि जल मोर में, परसत ना छिन पोर ।

बिहुरि परँ अब नीर है, जब जानै गुन नीर ॥ ३

भाषा दशमस्कन्ध में भी दोहा चौपाइयों का प्रम है, परन्तु यहाँ बहुत उम्मी उम्मी चौपाइयों के परभाव दाहा आता है । दाहा चौपाई का प्रम ग्रन्थ की रीतिता की बढाने के लिये रखा गया है । नन्ददास से पूर्व आध्यात्मिक काव्यों के लिये दाहा चौपाई पद्धति प्रचलित थी । उसी की उन्होंने भी अपना लिया, परन्तु मात्राओं आदि के सम्बन्ध में कवि ने किसी कठोर नियम का पालन नहीं किया । यों चौपाई में १६ मात्राएँ होती हैं, किन्तु उनके ग्रन्थों में कहीं १५ मात्राएँ हैं तो कहीं १७ भी हैं ।

हुदासा वारिज और गविकन जिला केवल चौपाई छन्द में लिखे गये हैं और मान मंजरी तथा बनेकार्य मंजरी केवल दाहा छन्द में । प्रथम दोनों में दाहा सर्वथा अभाव है तथा द्वितीय दोनों में चौपाई का ।

दाहा रीति के विष्ण का प्रयोग मन्त्रगीत के अतिरिक्त श्याम सागुँ में भी किया गया है । दाहा रीति के साथ दस मात्राओं की टेक ने उसे माधुर्य, गंयत्व और शरिता प्रधान कर दी है । मन्त्रगीत का आरम्भ तो तिलोकी छंद से हुआ है । दो चरण तिलोकी छन्द के छि लेने के उपरान्त चार चरण दाहे

१- सावित्री अवस्थी द्वारा नन्ददास: जीवन और काव्य (शोधप्रबन्ध प्रकाशन, नई दिल्ली १९६८) में पृष्ठ ३८३ पर उद्धृत ।

के लिखकर अन्त में दस मात्राओं को टेक लिया गई है । शेष अन्दा में दोहा रीति का मिश्रण हुआ है ।

रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी और एकमणि झोल तीनों ग्रन्थों में दोहा अन्त में लिखे गये हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि दोहा अन्त को वे लाल ग्रन्थों के लिये बहुत उपयुक्त मानते थे । कविता का आन्तरिक अंगित इस अन्त से अधिक प्रस्फुटित हुआ है ।

उक्त ग्रन्थों में ही नहीं बरन पदों में भी अन्दा का प्रयोग हुआ है । पदों में तार, सरसी, धिष्णुपद, सवेया, कवित्त, सौरठा, दोहा, बीपार, आदि अन्दा का प्रयोग दिखाई देता है । इनके उदाहरण इस प्रकार हैं :

तार अन्तः

गाए तिलावत सोमा मारी ।

गई रज मंहित बदन कमल में, अलक मालक सुधरारी ।

नख सिखा प्रति बहु मोल के मूयन, परिक्षत अदा दिवारी ।

कैंठि रही है सिटक अमा में, न्यान रंग उज्यारी ।

अम कर राजै माँ नह मू, जँव बहसि में बलिहारी ।

ब्रजन हैरि नख अंधे पंचे, बहति सु अटा अटारी ।

मीर बहुत सुमई जात की, महुसन में ब्रजनारी ।

सैन में सुमकावत अगरी, पनि पनि निरलत हारी ।

रहे तिलावत ब्रमरी धारी, गाय गुन्न क्यरारी ।

नन्ददास प्रभु चले अदन नख, एक तार हुंकारि ।^१

उक्त अन्त तार अन्त है । तार अन्त में १६, १२ की विराम है १८ मात्राएँ होती हैं तथा चरणान्त में दो गुरु होते हैं ।

धरती छन्दः

धरती छन्द में १६, ११ के विराम से २० मात्राएँ होती हैं, वर्णान्त में गुण लुप्त होते हैं । देखिये --

जरी। बलि दुल्ल दैनि जाय,
कुन्दर स्याम माधुरी सुरति, जंझियाँ निरलि विराय ।
चुरि जाई द्रुज नारि न्नेज, मोहन दिशि मुसियाय ।
घोरि कंथाँ विर कामन कुँल, मन्धर सुखिं सुमाय ।
पहरि जरकशि पटन बाधुपन, जग जग नैन रिफाय ।
तेखीय जनी बरात क्षीणी जगम्मा रग चुवाय ।
गोप उमा लखर मे कुँले, कमल परम कपटाय ।
नन्ददास गोपिन के दृग बलि अपटनि को बकुलाय ।^१

विष्णुपद

विष्णु पद छन्द में १६ और २० के विराम से २६ मात्राएँ होती हैं, प्रत्येक वर्ण के अन्त में लुप्त गुण होता है :

ओ गोविन्द गुग गुग राज करी ।
मा गुल मवन प्रताप लो ले दिन उत उत न टारी ।
पावन प विताइ प्रानपति पतिन पाप हरी ।
विद्व विदित हुन दोनन पालक निम गति दे उवारी ।
ओ बल्लभ कुल कमल बमल रवि वल मकरंद मरी ।
नन्ददास प्रभु वरगुन उपन ओ विठलेश वारी ।^२

चौपाई :

चौपाई छन्द का प्रयोग तो बहुत नन्ददास जी ने किया ही है :

१- पदावली नन्ददास ग्रन्थावली पृष्ठ २६६

२- वही पृष्ठ २८२

बसुना पुलिन सुफा कुन्दावन, नवल जाल गँवरवन पारी
नवल निमुले नवल कुसुमित दल, नवल परम वृष-मानु दुलारी
नवल दास नवल तप दधि श्रीदत्त, नवल पिजस करत कुलकारी
नवल श्री विठठल कृपा बलि, नन्ददास निराल बलिहारी ।^१

शोरठा और दोहा:

शोरठा तथा दोहा कुन्दा के उदाहरण को पदावली में लीये जा सकते हैं :

हरी वसि, फाटे वृष्ण सुरारी, ब्रज जानंद मयौ
दधि कौन्दा आगन नन्द के ।

विह्वल का फनकार गलिन गलिन अति ह्वै रहा ।

छान कवन थार, उर पर प्रमकन च्यै रहा ।

पाउ विहाल पाउ, पैटा सीध मुखावनौ
थोड़े थलकि बर बाउ, मनौ दुदग मिलावनौ ।^२

यह तो रहा शोरठा । दोहे का उदाहरण को लिया जा सकता है :

श्री ब्रजराज जु के आगन बाजत रंग बयाई
प्रवन सुनत सब गौपिका, जातुर देखनि बाई
नाचत करत कुलह ठे, वारत सुक्तामाउ ।
गौप आये तौ राजये, जाह है तिहि काउ ।^३

कविर

ए तिकालीन कवियों ने अमिकाश कविर और सबैया का प्रयोग किया है । कविर और सबैया शृंगार और कर दोनों रसों के लिये प्रयुक्त होते रहे हैं । नन्ददास ने शृंगार के लिये कविर ग्रहण किया है । देखिये --

१- पदावली नन्ददास ग्रन्थावली पृष्ठ २६५

२- वही पृष्ठ २८८

३- वही पृष्ठ २६०

कलन की माता साथ, कलन फिर जाते साथ,
कोकल कराँसे ठाढ़ी नन्दिनी जनक की ।
कुंभार कोकल गान को कहे पिता साँ बात
हो दि दे यह पन तोरन वनक की ।
नन्ददास पशु जानि तारुवाँ है पिनाक तानि,
बास का बनेया जैसे जालक तनक की ।^१

लावना :

ब्रज के लोक गीतों में लावना शब्द का प्रयोग बहुत प्रचलित है । नन्ददास ने भी लोकगीतों के लिये लावना का ही प्रयोग किया है । लावना में १६ और १६ के विराम हैं ३० मात्राएँ होती हैं । उनमें दोहाती गीतों का ही स्वामा विकता रहती है । उदाहरणार्थ निम्नलिखित शब्द को लिया जा सकता है :

कृष्ण जन्म सुनि अपने पति को, हँसि डाटिन यो वाली सु ।
जाउ जाउ तुम नंद नृपति के, दान कोठरी छोड़ि सु
तुमहि मिलो बागवती, पक्षिना मरि मरि फोरि सु
लैयो कल जुगति सो लैयो हम बहिर को छोड़ि सु ।
छोटो सा भँस सोहने सीगनि, टहलि करनि को गोलि सु ।
साज सखि एक बुझिया लैयो, गैया दुप अतौलि सु ।
सुन्दर सो एक हाथी लैयो, हमनी ली बमौलि सु ।
सज्जा सखि एक दुलिया लैयो, जाँ पानन का छोड़ि सु ।
वीरा करि करि मोहि सवाये, लैयो ली तमौलि सु ।
नन्ददास श्री नन्दराय ने किया बजावक छोड़ि सु ।^२

उक्त पद में लोकगीतों का स्वामा विक शब्द ही मालूम रहा है । कृष्ण जन्म के अक्षर पर डाटिन का चित्र आकार हो रहा है । लावना के साथ कुन्दल शब्द

१- पदावली नन्ददास ग्रन्थावली पृष्ठ २८०

२- वही पृष्ठ २६०-६१

का भी प्रयोग हुआ है। कुण्डल छन्द में ६२ और १० के विराट हैं २२ मात्राएं होती हैं अन्त में दाँ मुँह होते हैं। जैसे —

काहे काँ प्यारे तुम सजा मेरा कौनों
सुषन बसन साजि, बीना कर लौनों
मोतिन तैं माग गृही कैये तुम प्यारे ।
नहिं हौं पहचान सकी, कान के दुलारे
रुति वाँ को नैम नित, प्यारी तुम लौनों
ताही के फारन हम सजा मेरा कौनों ।^१

इस प्रकार नन्ददास ने पदों की अपेक्षा अपनी रचनाओं के लिये छन्दों का अधिक प्रयोग किया है। यहाँ तक कि उनके पद की सरला, लावनी, कवित्त, चौपाई, आदि छन्दों के बंधन में बंधे हुए हैं।

यहाँ तक अलंकार योजनका प्रश्न है नन्ददास की रचनाओं में अप्रस्तुत योजनारे सुल्यतः साम्यमूलक अलंकारों पर आधारित है। रूप साम्य, वर्म साम्य, तथा प्रमाथ साम्य के अतिरिक्त कश्चित् साम्य के भी कई उदाहरण उनकी कृतियों में उपलब्ध हैं। वे कुछ चित्रकार थे। यही कारण है कि उन्होंने वर्ण साम्य, वर्म साम्य तथा रूप साम्य के संयोजन द्वारा अत्यन्त प्रभावोत्पादक चित्र अंकित किये हैं। उनकी रचना दृष्टि में कई उपमाओं ने नूतन रंगों के द्वारा नित्य नूतन रूप ग्रहण किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने प्राचीन परम्परा के अनुसार प्रकृति तथा लौकिक चीजों से अप्रस्तुतों का तुल्य किया है किन्तु उन्हें अस्मिन् रूप प्रदान करने में वे सफल हुए हैं। इसी स्पष्ट करने के लिये कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

रूप साम्य :

रूप साम्य के उदाहरण नन्ददास के काव्य में अधिकतमः यहाँ होते हैं।

१- पदावली नन्ददास ग्रन्थावली पृष्ठ ३१६

जहाँ कृष्ण के बाल तथा युवा रूप का चित्रण किया गया है । उनके बाल रूप का एक चित्र यह है :

पानि पकरि अब जागन जाने, जिनते हर हरपे सु हरावे ।
हर ते नैन सजल ह्वै माये, जनु अरविन्द अलिखि लजाये ।
परत ह्यान ते अलखन जातो, हारत ससि जनु मण्डल मातो ।
मोजित चल मसि प्रसरत रेवे, निर्मल बल विद्यु-कलक जेवे ।^१

यहाँ बालक कृष्ण के लयन का वर्णन किया गया है । अप्रस्तुतों की सहायता से उस लयन की अवस्था में ही उनके सुन्दर रूप का चित्रण अनूठे ढंग से किया है । नेत्रों के लिये कमल, मुख के लिये चन्द्रमा-- इन अप्रस्तुतों का चुनाव तो प्राचीन है किन्तु कवि विन्दुओं के साथ जोस के कणों का तथा चन्द्रमा से करने वाले मोतियों का साम्य और नेत्रों से बहते हुए काजल के साथ चन्द्रमा के कलक की स्याही का जो साम्य स्थापित किया गया है वह नितान्त नवीन है । कलक की स्याही का काजल के साथ, जनु विन्दुओं का मोतियों के साथ, मुख का चन्द्रमा के साथ तथा अरविन्द का नेत्रों के साथ -- रूप साम्य के उदाहरण हैं, परन्तु कमल से मोतियों का माला और कलक की स्याही का गिरना-- कल्पित साम्य पर आधारित हैं । इन उदाहरणों में मूर्त का अमूर्त के साथ साम्य स्थापित किया गया है ।

मानसजती से नन्ददास ने राधा के ललित वर्णन में जिस कला वेलना तथा अश्लेषजना शिल्प का परिचय दिया है वह अनुपम है, निम्न दाँहिने में राधा के नेत्रों के लिये जिस अप्रस्तुत का चुनाव किया है वह इस प्रकार है --

कहु रिस राते नैन जनु जावक भी मोन ।

यहाँ जावक के रंग से मोना हुई मछली के साथ नेत्रों के रूप साम्य स्थापना से सम्बन्धित मानसजती राधा का मान से उत्पन्न होने वाला रोष सहज ही से प्रकट हो जाता है । नाविका के ज़ोव का अनुमान लगाणा के सहारे लाया जा सकता है । नेत्रों

के लिये मङ्गली का उपमान तो उद्धृत है, परन्तु उसके साथ जावक के रंग में भागने की कल्पना नूतन शरीर का वस्तुकार है । यही अर्द्ध शरीर का मूर्त जावक के रंग के साथ साम्य स्थापित किया गया है ।

रासर्पवाज्यामी:

रासर्पवाज्यामी के आरम्भ में मालावरण के रूप में जो शुक्रदेव मुनि की कन्दना की गई है, उसमें उनके अंग प्रत्यङ्ग के रूप का चित्रण करने में अप्रस्तुतों का ध्येय निरूपणता से किया गया है --

नोत्पल दल स्थाप अंग अव जीवन प्राजे ।

कुटिल अलक मुख कमल मनो अति अवति विराजे ।^१

यही अंगों के लिये नाल कमल का पंखुलियों का प्रयोग उनके शरीर की कान्ति, दीप्ति, स्निग्धता और स्वच्छता को प्रकट करता है । मुख कमल पर केश लपेट मन्त्रे गुंजार करते हुए मुख के सख मायुर्य और आकर्षण का स्पष्टीकरण करते हैं । मन्त्रों के साम्य से केशों की श्यामलता की वारे मा ध्यान सख ही बारम्बार हो जाता है । मूर्त वस्तुओं का मूर्त अप्रस्तुतों के साथ साम्य स्थापित कर रूप साम्य तथा वर्ण साम्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है । अगली पंक्ति में श्री शुक्रदेव जी के गरिमाय व्यक्तित्व का परिचय दिया गया है :

उल्लि विशाल सुमाठ दिपत जनु निकर निताकर ।

कृष्ण माति प्रतियं तिमिर कहु कोटि दिवाकर ।

कुमारगे रस रेन नैन राजत रतनारे ।

कृष्ण रसावध पान अलस कहु वृम सुमारे ।^२

यही श्री शुक्रदेव जी के विशाल मस्तिष्क से विकीर्ण होने वाली ज्ञाना के लिए कन्दमान के समूह से उत्पन्न होने वाले प्रकाश पुंज को अप्रस्तुत रूप में रखा गया है ।

१- रासर्पवाज्यामी कन्दना सु० पृष्ठ १५५

२- वही पृष्ठ १५५

फिर कहा गया है कि कृष्ण पवित्र से जाने वाले प्रतिस्पर्धी रूपों के लिये बल कारोहों की ओर के समान है। यों लक्षणों के द्वारा उस वर्ण की प्रतीति होती है कि उनके गरिमायु व्यक्तित्व के प्रभाव से पवित्र के मार्ग में जाने वाली बानाएँ टिक नहीं सकती। पवित्र की पराकाष्ठा में उनके नेत्रों में जो लालिमा आ जाती है उसका तुलना आत्म के मद से की गई है। यहाँ अप्रस्तुत का तुलना बहुत सार्थक बन पड़ा है। निम्न पंक्तियों में रही आमा और गरिमा का चित्रण कृष्ण के व्यक्तित्व में किया गया है।

निज विमाकर हुति मेटत तुम कौस्तुभ मणि जस ।

सुन्दर नन्द कुंजर उर पर सोई लागत उहु जस ।^१

कृष्ण के वेशस्थल पर पड़ी कौस्तुभ मणि की आमा, जो विमाकर की किरणों के पुनः की मो लज्जित करने जाती है, कृष्ण की शारीरिक कान्ति के समान आधारभूत मात्र की मोति निष्प्रम दिखाई देती है यहाँ आभ्य तथा वैश्वभ्य के अंशों द्वारा कृष्ण के गरिमाली व्यक्तित्व का परिचय दिया गया है।

कृष्ण के सुन्दर रूप का वर्णन कवि ने कई स्थलों पर किया है। निम्न पंक्तियों में उनका अनुपम सौन्दर्य दृष्टव्य है --

सुन्दर विषय को वदन निरति वस को नहि मूरखो ।

एष सरिषिरी मोक सरद जम्बुज अनु फूल्यो ।

कुटिल अलक मनु अनुजोरे मयुकर मल्लारो,

स्ति मे फिरे गर वपल नयन विष मोन हारो ।^२

यहाँ कुल कम्प के लिये शब्द कतु से विकसित होने वाले कम्प को अप्रस्तुत रूप में रखा गया है और कुल के लक्षण का सरिषिरी के साथ आभ्य स्थापित किया गया

१- रास पदोपजायि नन्दवाह सुन्दर पृष्ठ १५८

२- वही पृष्ठ १६४

है । जिस प्रकार शरद कवच में शरीर में छिड़े हुए कमल को देखकर हृदय प्रफुल्लित हो उठता है उसी प्रकार कृष्ण के सुन्दर रूप के दर्शन पाकर विलस स्वस्थ हो जाता है कुचित केशों के लिये मृक मयारों की कल्पना उनके निष्कम्प केशों को उद्वेगना करती है । अतुल्य पंडित में कवि की सुलभ कल्पना देखने अन्याय है । गोपियों के मूर्त नेत्रों के लिये मधुरों का कृत जायार लो निःसन्देह एक उपमान है, किन्तु कृष्ण के केश उन्नी मयारों में गोपियों की नेत्र रूपा मधुरियों का मिल जाना नितान्त नूतन कल्पना है । शरीर में कमल का होते हैं और मधुरियों का होता है । इस अप्रस्तुत योजन के द्वारा कृष्ण के श्यामवर्ण कुक्षि केशों के साथ गोपियों का उनके सुन्दर रूप पर हुन होना का अविद्यमान होता है, जहाँ ही मधुर प्रेम की पराकाष्ठा का मा परिचय मिलता है ।

कृष्ण के साथ नृत्य करती हुई गोपवालाओं के चित्र में यद्यपि प्राचीन उपमानों वन, वपला, अलि, लता आदि का योजन का गई है, तथापि इसका साँन्दर्य अपनी नूतनता में ही निहित रहा है —

साधने पिय की निरतत वंचल ब्रज की वाला ।

मनु वनमन्दल खेलत मंजुल वपला माला ॥

वंचल रूप लतनि की लोललिंगनु अलि रेना ।

लुपिणी लियन के पाछे जाये निरुलित केना ।^१

यहाँ साम्य अत्यन्त शरीर है । जिस प्रकार नृत्य में स्थिरता नहीं होती, उसी प्रकार केशों में काँपती हुई वपला निरन्तर गतिशील रहती है । कृष्ण के साथ अप्रस्तुत वन का तथा गोपियों के साथ अप्रस्तुत वपला का योजन कर कवि ने आत्मा तथा परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्ध को भी स्पष्ट किया है । बरलम सम्प्रदाय के अनुसार कृष्ण (ब्रज) ने जीव की उत्पत्ति और उस में उसका रूप होता है । जो इस साम्य ने भी स्पष्ट होता है । इसके साथ ही गोपियों का कृष्ण के प्रति अनन्य मन्त्र का परिचय भी मिलता है । अगले दो पद्यों में गोपियों का जो लताओं

के साथ साम्य स्थापित किया गया है और वेणी के साथ प्रमरावली का वह अत्यन्त शार्क है । प्रथम साम्य से गौपियों की कोमलता तथा सुकमारता स्पष्ट होती है और द्वितीय से उनके केशों की सुन्दरता । उसके साथ ही एक बात और दृष्टव्य है और वह यह कि साधारणतः वेणी का उपमा उपमिति से की जाती है किन्तु यहाँ गौपियों को यदि उत्तिकाये कहा है तो वेणी को प्रमरावली कहना व अपने आपमें शार्क ही है ।

रूपमञ्जरी के रूप का वर्णन करने के लिये नन्ददास ने अनेक प्रकार के उपमान बूटाये हैं । निम्न पंक्तियों में युवावस्था में निहरने वाले रूप का सादृश्य चन्द्रमा की विकसित होती हुई किरणों के साथ स्थापित किया गया है --

तिम तन रूप पद्म चर्याँ ऐसे, हुतिया चन्द क० नि करि जैसे ।^१

रूपमञ्जरी की यौवनावस्था में जा जाने वाली कान्ति को तुलना द्वितीया के चाँद की क्रमशः घटने वाली कान्ति के साथ की गई है । उसके युवावस्था में जा जाने के सौन्दर्य का पाँव अप्रस्तुतों के स्रष्टार पूर्ण रूप से हो जाता है । अन्यत्र रूपमञ्जरी के नख शिख का वर्णन कवि ने २४ प्रकार किया है --

मूव धनु ेहि मद पक्ष्त्याँ

हरकै समर समय किन मयाँ ।^२

छुर का अङ्कार योजना :

जैसा कि पूर्व विदित है काव्य शास्त्र में अलङ्कारों की चर्चा रस से भी प्राचीन है । आचार्य राजशेखर ने तो अलङ्कार शास्त्र को बढाग ही माना है और उसका उत्पत्ति मगवान शंकर से बताएँ है । सगुण मन्त कवियों में जहाँ एक ओर हिन्दी का पूर्व प्रचलित काव्य शैलियों को परिपक्व और परिनिष्ठत रूप के दर्शन होते हैं, वहाँ अलङ्कार योजनाओं की कम महत्त्व की नहीं है । मामू, उपमृष्ट आदि आचार्यों ने

१- रूप मञ्जरी नन्ददास शुक्ल पृष्ठ ५.

२- वही पृष्ठ ६

पी अलंकारों को काव्य में तब प्रमुख स्थान दिया । वण्टी ने तो उन्हें काव्य की शोभा का कारण ही माना । केशवदास ने भी उन्हें जाबज्यों के सुर से सुर मिलाया और अलंकारों की मरल को स्वीकार किया :

सुषान विनु नहिं राजई कविता, वनित, मिय

वास्तव में सुर का काव्य तो भावों का उमड़ता सागर है, जिसमें रस की याह नहा पायी जा सकती । मन्त्र और वात्सल्य के भावों की रस कीटि तक पहुँचाने का श्रेय सुर को ही प्राप्त है, क्योंकि इन भावों का इतना तीव्र रूप व्यापक अभिव्यक्ति, जो रस के सारे शास्त्राय अर्थात् से पुष्ट है, सुर के अतिरिक्त किसी कवि से ही नहीं पाया । आधावारण भावोद्भेद के कारण वर्णन में, वर्णन शैली की वक्रता और चमत्कृति आ ही जाती है, यह स्वाभाविक है । उन पालित्य पराधन कवियों का बात दूसरी है, जिन्हें भाव और अनुकृति के स्थान को चुन चुन कर स्याये हुए छंदों और अलंकारों से मरकर कविता का मिनी को हृदय रहित प्रस्तर प्रतिमा रूप में प्रस्तुत करने का यत्न है । सुर की रचना में जैसी भाव प्रवणता है वैसी चमत्कृति की उनकी अलंकार योजना में न तो केशव के समान काव्य शास्त्र ज्ञान प्रदर्शन की प्रवृत्ति है और न जायसी के समान एक एक मौखत में कई कई अलंकार चुस कर संकर और संघुष्ट करने का अग्रह ही । वास्तव में सुर ने भाव और कलापना का संतुलन रस अपनी कला की कला ही बना दिया है । आचार्य कुल ने कहा है कि सुर में जितनी सहृदयता है उतनी ही वाग्मिवदयता । यही कारण है कि उनके काव्यमें अलंकारों के घटाटोप के दर्शन नहीं होते और वे अपने उपवर्णिता में सर्वत्र सौंदर्यशाली प्रकट होते हैं । उन्होंने अलंकारों का प्रयोग विशेषतः सौन्दर्य बोध के लिये ही किया है । यही कारण है कि सुर की रचना में हमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकालिख्योक्ति, प्रत्विस्तुपमा आदि अलंकारों के ही दर्शन होते हैं । उन्होंने अपनी अलंकृत योजना में मानव और मान्यता का व्यापार लिये है । इस प्रकार उनकी अलंकार योजना में सख्त ही प्रकृति से तारात्मय हो गया है ।

हूर के कवचक काव्यों में छद्माङ्कारों की अपेक्षा अव्यङ्ग्यता का ही प्रयोग अधिक व स्वाभाविक मन पडा है । क्योंकि छद्माङ्कार तो वर्ण सौन्दर्य को ही विशेष तौर पे प्रस्तुत करते हैं । रूप सौन्दर्य के लिये उनका उतना महत्व नहीं जबकि हूर का उद्देश्य हम सौन्दर्य का चित्रण और उसके माध सौन्दर्य का पोषण करना था । यही कारण है कि छद्माङ्कार विशेष रूप से साहित्य छहरी के अतिरिक्त कही नहीं मिलते । साहित्य छहरी की रचना सम्भवतः छद्माङ्कारों के प्रदर्शन के लिये ही हुई । छद्माङ्कारों में हूर ने यमक, अनुप्रास, श्लेष, वीप्सा और वक्रोक्ति का ही विशेष प्रयोग किया है । श्लेष व यमक टुट्टकूट पदों में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । अनुप्रास का प्रयोग तो हूर साहित्य में अत्यन्त ही स्वाभाविक है क्योंकि अनुप्रास द्वारा जहाँ पर एक ओर व्ययात्मक सौन्दर्य का विधान होता है वहाँ दूसरी ओर उससे आलावरण का दृष्टि भी । वीप्सा अङ्कार कवि के हृदय की मजिद भावना का ही परियायक कहा जा सकता है, क्योंकि उसका प्रयोग उन्होंने राधा कृष्ण के अंग प्रत्येक सौन्दर्य रसमान से वृष्ट होकर बार बार स्वल्प वर्णन में किया है । वक्रोक्ति का प्रयोग व्यंग्यव्यङ्ग्यताओं में है । व्यंग्य को चुगार रस का सर्वस्व कहा जा सकता है और संयोग व विभाग दोनों में प्रेक्षा और प्रेक्षिकाओं द्वारा उसका आचार ग्रहण किया जाता है । हूर काव्य में व्यंग्य को भी महत्वपूर्ण स्थान मिला है । उनके वात्सल्य के मा हमें व्यंग्य के दर्शन होते हैं । इसलिये हूर साहित्य वैक्रोक्ति के सुन्दर उदाहरण में पड़े हैं ।

हूरसागर में अङ्कार रत्नों की कमी नहीं है । यदि किसी ने गाँता जानने की शक्ति व साहस है तो वाहें कितने अङ्कार निकाल सकता है । किन्तु हमारा अभिप्राय यहाँ अङ्कारों का संपादित विश्लेषण व विवेचन ही है अतः कतिपय अङ्कारों का उल्लेख हम करेंगे । महाकवि हूर ने अपनी रचना में अनेक अप्रस्तुत व्यापारों का आचरण किया है जिसके कारण उनमें सादृश्य मूलक अङ्कारों का प्राचुर्य है । आगेपक का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है जिसके उदाहरण हूरसागर में भी पड़े हैं । निम्न पद में साहीठाठ से सुशोभित पतितों के राजा हूर की कदाचित आप पहचान सके :-

हरि हौं तब पतितन की राजा

निन्दा परसुत पुरि रह्यो जग, यह निशान त्माजा ।

तृष्णा देश अत सुमर मनोरथ, उन्नी सलग हमारी ।

कन्हा काम कुमति दीवै को, ज्ञोय रहत छति लारी ।

गज अंकार चढ्यो दिग विजयी, लोम अत्र करि सीस ।

कांज जगत कीति को मेरे ऐसी हौं मेरे उब ।

मालिन्य जन्म गुन गावन- सागव दोष अपार ।

सुर पाप को गड दड कोन्हो सुखम लाइ कियार ।^१

साधारण विषयों के चक्र में पड़कर नट का नेप धारण का नाचते नाचते सुर धर गये और वे अपने आराध्य से प्रार्थना करते हैं कि इस माया कृत्य से पीछा छुड़ावे :

जब ही नाचत बहुत गोपा० ।

काम ज्ञोय को पहिरी धोना, कंठ विषय की मा० ।

महा मोर के तुरुर जागत निन्दा रुद रसा० ।^२

क्यों उपमान का वर्णन कर उपमेय केषुणों को और संकेत करने से उचित है जो वक्तुकार वा वाता है, उसे अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत का प्रशंसन करने के कारण अप्रस्तुत प्रशंसा कहते हैं । दण्यै वस्तु का नाम तक लिये बिना उसके उद्घाटन का यह सीधा सादा ढंग है । सौन्दर्य की अनुसूति को पराकाष्ठा में लीची सादी भाषा में अभीष्ट प्रभाव की वसिष्ठ्यवित नहीं होती तो कवि को कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है और अपनी कुम दृष्टि से वह अनेकानेक उपमान खोजे जाता है । जब इतने पर भी सन्तोष नहीं होता तो कल्पना द्वारा प्रस्तुत वस्तु के समान वर्म वाली वस्तुओं की दृष्टि कर उनसे अपना तादात्म्य स्थापित करता है । इस प्रकार उत्प्रेक्षा के अनेक रूप उसका रचना में आ जाते हैं । सुर ने उत्प्रेक्षा का बहुत ही अधिक प्रयोग किया है । कृष्ण के सुस की शक्ति का वर्णन देखिये :-

१- भूतानगर (समा) पद ५४४

२- वही पद ५५३

सुत छवि कहा कहीं बनाई ।
निरति निरपति बदन सीमा गयीं धीन दुराह ।
अमृत अलि मउ पियन जाये, जाई रहे दुमाह ।
निकसि सरत मीन मानों, लरत कीर बुराई ।^१

उत्प्रेक्षा के न जाने कितने उदाहरण शूर में मिले पड़े हैं ।^२ उप चित्रण में वृष्टान्त और उपमा का भी शूर ने सुव प्रयोग किया है । उपमा का एक उदाहरण देखिये :-

हरि सरसन की साव सुई ।
उद्धिये उड़ा फिरति नननि लो, कर फटे ज्यो जाक लुई ।
-- -- --
खसि शूर वान, अक्षर लो, कि बरसा ज्यो पुल लुई ।^३

शूरजी मनोहर रसाम के सौन्दर्य का गोपिनी पर भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ा है जिसकी प्रतीति करने के लिये कवि जलकार का आश्रय लेता है :-

हरि प्रीत अग नागार निरलि ।
दृष्टि रोमावली पर रही वनत नहो परलि ।
कोउ कहति यह काम सरनो, कोउ कहत नहि जांग ।
कोउ कहत बलि बाल फोति, गुरा एक सजोग ।
कोउ कहत बलि काम फोयो, लो जिनि बह काहु ।
रसाम रोमावलि को बलि शूर नाहि निवाहु ।^४

रस प्रयोगों में प्रतीप, ऊँदेल अतिरयोचित, समानता आदि बलकारों के उदाहरण भी दृष्ट्य हैं :-

-
- १- शूरसागर (समा) पद ६७०
२- वही पद २७३, ७२२, ६६६
३- वही पद २४७३
४- वही पद ६२५४

प्रतीपः

देहि रा हरि के बनेल नेन

-- --

रा जिहदल, हदीअर सतदल, कमल सुसैय जा ति ।

निजि मुद्रित प्रातहि वै विकसित, ये विकसित दिन रा ति ।^१

सुदेहः

गौपि तजि लाज, लो स्याम रंग मुली ।

पुरन सुखवन्द देहि, नेन करै फुली ।

कैयों नव जलद स्वाति, चातक मनलार ।

कियो वारि बुंद सीप, हृदय हरष पार ।

रविशवि कैयों तिलारि, पंकज विकसनै ।

कियो वज्रामि निरखि मुरली बुनि रोमो ।

सुर स्याम सुत फल दधि, कै रस पीजे ।^२

अतिशयोक्ति :

रुद रुदन मुत देखा पाई

उपकातिशयोक्ति:

सजेन, मान, मृग वारिज, मृग पर दृग अति ० वि पाई ।

सम्बन्धातिशयोक्ति:

श्रुति मल्ल कुण्डल मकराकृत,

बिलसति मदन सदाई ।^३

१- सुरसगर (समा) पद २४३१

२- वली पद १२६०

३- वली पद १२४४

सम्भावना:

यहाँ निरु विवना यह देखीं ।
जय ते जाजु नन्द नन्दन भवि, बार बार करि पैर्या
नर अंगुरी, पग, जाजुन, कटि रवि कीन्हा निरमान ।
हुदय, बाहुकार, अरु, जग जग, मृत जुन्दर आवधान ।
अवर, दान, रत्ना, दारुमानी, दान, नेन अरु पाठा
गुर रामे प्रति जीवन देखीं देखत मनत गुपाठ ।^१

अपहृति:

वातक न लोई कोई निरहिना नारि ।
अजहुं पिय पिय रजनि सुरति करि फटेदिनागत कारि ।^२

मगवान के गुणाज्वाह में अतिशयोक्ति स्वाभाविक अन्वेषण और विरोधामास अलंकारों का अधिक प्रयोग हुआ है । अर्थान्तरनाम और उदाहरण में जहाँ तहाँ पाये जाते हैं । चकई, मृगी, हुकड़ आदि के उदाहरण मिलते हैं । मगवान अकारण जो मकतों और दोस्तीयों पर कृपा करते हैं ऐसे मावों के प्रकाशन में विभावना अलंकार है । प्रेम गोपन के लिये कदवेह, निमयोत्पाद के लिये अमंगल, असम्भव और विषय आदि अलंकारों का आश्रय लिया गया है ।

राधा और कृष्ण के सौन्दर्य वर्णन में व्यतिरेक का प्राचुर्य है । प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में उत्प्रेक्षा में सांगत्यक का तथा संसार की अवसरता, जाणमगुरता, मगवत्प्रेम आदि के वर्णन में उपमा के साथ साथ अर्थान्तिजन्मसि का विशेष प्रयोग हुआ है ।

शब्द :

अलंकारों के अतिरिक्त काव्य की कलात्मकता में शब्दों के महत्व में सर्वविधित

१- सुरसागर (समा) पद ४२६६

२- सुरसागर (बोप्रे) पद ४१२६

हैं। लय व छन्द से कविता की व्यञ्जकता भी समझी जाती थी। छन्दों की परम्परा भी प्राचीन काल से ही चली आ रही थी। सुर की सर्वप्रथम पदशली में राग रागिनियों का विशेष स्थान है। यह हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं। हमारे यहाँ तो छन्दों की दृष्टि का आधार लय और स्वर रहा है। लय के विषय में भी जीजावर गुप्त अपने पारमार्थ्य साहित्यालोचन शास्त्र ग्रन्थ में लिखते हैं :-

लय की उत्पत्ति अनन्तवर्ग से है और जन्तवर्ग को उत्तेजित करने की उसमें विशेष साम्प्रदायिकता है। लय हमें हँसा सकती है लय हमें उला सकती है, लय हमें अपकृष्ट कर सकती है, लय हमें सुला सकती है। लय हमें जगा सकती है, लय हमें शान्त कर सकती है, लय हमें उदासीन कर सकती है, लय हमें हमारा सच्चा रूप दिखा सकती है, लय हमें ब्रह्म ज्ञान की ओर उन्नत कर सकती है।^६

जार्गे बल्लभ गुप्त जी ने लय पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि लय में एक रूपता और नियमितता होती है। उसमें लय और पद का ढाँचा भी होता है। ऐसा व्यवस्थित ढाँचेदार पद ही छन्द होता है। छन्द का काव्यात्मक मूल्य और भी अधिक है। छन्द विस्मय द्वारा चेतना को धीमा करके मोहिन निद्रा की ओर जाता है और सुविचारिता, सूचकता और स्मृतिशीलता की वृद्धि करता है। छन्द अपनी गति और ध्वनि से अर्थप्रकाशन करता है। गुप्त जी जार्गे कहते हैं कि छन्द काव्यात्मक अनुभव को अभिव्यक्ति का स्थित और परिमाणित कर देता है। छन्द कल्पना को प्रज्वलित कर कवि को ऐसी दृश्यमान और श्रव्य प्रतिमाएँ प्रदान करता है जिसे उसके अनुभव की अभिव्यक्ति स्पष्ट और प्रेरक हो जाती है।^७

गायत्री, त्रिष्टुप, अनुष्टुप जगती आदि वैदिक छन्द और मन्दाक्रान्ता, हुत विष्णुध्वज, शिखारिणी आदि लौकिक संस्कृत के छन्द लय के आधार पर पढ़ाये गये हैं। राग रागिनियों के मूल से भी वे लय, गति और स्वर ही हैं।

१- पारमार्थ्य साहित्य लोचन के सिद्धान्त के जीजावर गुप्ता पृष्ठ २२६-२२७

२- वही

पृष्ठ २२८

हिन्दी के छन्द प्रभुत और अपभ्रंश के छन्दों के ही रूपान्तर है । कुछ छन्द तो विशिष्ट कवियों की रचनाओं के आधार पर ही गढ़े गये जाते हैं । हमारे कवि सरदास की रचना जैसा कहा जा चुका है, गैद्यपद शैली में ही हुई है उनके अविकसित पद कीर्तन के रूप में है, जो लिये छन्दोविधान का कोई विशेष स्थान उनके काव्य में नहीं है । विगुण शास्त्रीय छन्दों की अपेक्षा अंगित शास्त्रीय राग रागनियों ही उनके काव्य में पाई जाती हैं । उन्होंने जिन रागरागनियों का प्रयोग किया है, उनमें से बहुतों का तो अभी नामकरण भी नहीं हुआ । वे मावातुल्य राग रागिनी का प्रयोग करने में सिद्धास्त थे यही उनकी विशेषता थी । उनके पदों को छन्द शास्त्र की कसीटी पर कसना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता ।^१

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपने सरदास में सर के छन्दोविधान पर विशेष रूप से विचार किया है और सरसागर के वर्णनात्मक एवं गैद्य सभी वर्णों का विश्लेषण छन्दों की दृष्टि से किया है । उन्होंने जिन छन्दों को सरदास में दिखाया है, उनमें से मुख्य मुख्य निम्नलिखित हैं :-

१- चौपद, चौपाई, दोहा, रौंदा तथा उनसे निर्मित छन्द ।

२- अन्य छन्द ।

सरसागर के वर्णों के जाकार के विचार से छोटे व उम्मे सब तरह के छन्द पाये जाते हैं । जिन छन्दों का ऊपर उल्लेख हो चुका है उनके अतिरिक्त कवि द्वारा प्रयुक्त -- कद्र (१०, ७७) और (६, ६, १६) मानु (६, १५) कुण्डल (१२, १०) छुसदा (१२, १०) राक्ता (१२, ६) उपमान (१२, १०) लामर (१२, १२) विष्णुपद (१६, १६), और (१६, १५), हरिप्रिया (१२, १२, १०) आदि को उम्मे छन्दों में गिना जा सकता है ।

उपर्युक्त पंक्तियों में हमने विस्तृत रूप से सरदास व नन्ददास का अलंकार व छन्दों का दृष्टि से जला जला रूप देखा । अब हम इन दोनों महान कवियों पर

१- सर और उनका साहित्य जे० डा० हरमोश जी० शर्मा दृष्ट १०२

दृष्टान्तात्मक दृष्टिकोण से भा दृष्टिमात्र कर है ।

नन्ददास ने अपना काव्य गुरु की तरह छन्द तथा पद दोनों शैलियों में लिखा है और उन्होंने अपने गुरुओं में कई छन्दों का प्रयोग किया है जैसा कि उपरोक्त में प्रस्तुत किया जा चुका है । नन्ददास की पदावली तथा उनके गुरुओं के अध्ययन से सात होता है काव्य का प्रजनाभा पर पूर्ण अधिकार है । जिन गुरुओं में उनकी भाषा का रूप प्रसिद्ध है, उनके छन्दों में प्रवाह और लीलात्मकता है । नन्ददास जी गान बिना में निपुण थे । उनके काव्य उचितताओं की उनकी लीलात्मक भाषा में और भी सुगमकारी रूप दे दिया है । भाषा में प्रवाह व लीलात्मकता की कृति मधुर गुण उनका रासवर्णाभ्यास लक्षणांग माला व मन्त्रगीत में सबसे अधिक है । वास्तव में नन्ददास की भाषा का रूप उनमें सब गुरुओं में तथा उनके द्वारा प्रयुक्त सभी छन्दों में एक सा नहीं है । रासवर्णाभ्यास में तो एक एक शब्द उस प्रकार काव्य पद्यता के साथ चुन चुन कर छन्द की लक्षणांग में परोक्ष प्रयोग किया गया है जिससे एक शब्द से दूसरे शब्द पर सहज ही में सरलता चलती है । स्वाभाविक अलंकारों के प्रयोग में उनकी भाषा में नाद लीलात्मकता पर दिया है ।

उपर लीलात्मक विषयक उस ज्ञान लीलात्मकता पर जब ध्यान करने जाते हैं तो यह बहुत लोचने उठ जाते हैं । वास्तव में यदि काव्य और लीलात्मकता का उच्चा समन्वय और प्रयुक्त रूप से कर सका है तो यह ध्यान है । दुर्लभ लिखावा लिख के सम्राट है । उन्होंने भी गीत शैली में गीतावली और विनयविका की रचना की है । पर ध्यान जितना उकलता तो उन्हें भी प्राप्त नहीं हुई । वास्तव में ध्यान की प्रयुक्त रूप से प्रयुक्त होने वाली शब्द लक्षणांग स्थापना विज्ञान, सादगी, अलंकरण और प्रवाद को समान रूप से लिये हुए आगे बढ़ता है । रहने की आवश्यकता नहीं कि गीत शैली ध्यान के लक्षणांग में बढ़कर मजि ही गई है । जितनी उकलता के साथ ध्यान में गीत छन्दों का प्रयोग किया है उतनी उकलता के साथ नन्ददास ही नहीं अन्य कोई कवि भी नहीं कर सका है । उनके पदों की लीलात्मकता लीलात्मक भाषा में स्वरूप है । उनके सभी पद लीलात्मक हैं । उन्होंने लीलात्मकता की स्वरूपता को सरलता, माधुर्यता,

प्रवणता और वक्रता के साथ प्रवाहित किया है। उनके पदों में उनकी सरसता दिखायी नहीं मिलती। वैयक्तिकता और आत्मप्रियुषेन, जो गीत काव्य का सर्वप्रथम व सर्वप्रमुख लक्षण है सुर के गीतों में वादि से इति तक व्याप्त है। भाव की एकात्मकता, अनुसृति की स्वतः पूर्णता और अभ्यासत व्याप्ति जो मुक्तक काव्य की प्राण वायु है, सुर के गीतों में स्वीकार करती हुई श्रुति के दृश्य पर अप्रति बिन्दु बना देती है। उनका एक एक राग, एक एक गीत अपने आप में पूर्ण और रस दृष्टि में समर्थ है। आकार की दृष्टि से कहीं कहीं उनके पद गीत काव्य की मर्यादा का उल्लंघन कर गये हैं पर ऐसा उन्हीं स्थलों पर हुआ है जहाँ कवि कथा के तारतम्य को अच्युत रसने के लिये घटनाओं का वर्णन करता है। दूसरी बात जो सुर के पदों में मिलती है वह है कहीं कहीं आवश्यकता से अधिक अलंकारों के मार से कवी हुई उनकी पारती, अपनी वीणा के तारों को फंकृत करने में भी अपने को असमर्थ पाती है। परन्तु उनके इस गतिरात्रि में भी विज्ञापन सौन्दर्य है, जिसमें मूक जीवन का स्वर स्पष्ट रूप से दीप्त पड़ता है। वास्तव में भावपूर्ण गीत शैली के शास्त्रीय पारिष्कार में सुर ने सबकुछ बहुत बड़ा योग दिया है।

नन्ददास की रचनाओं में स्वाभाविक अलंकारों की कमी नहीं है। कागस्तुति, वक्रोक्तियाँ, रूपक उत्प्रेक्षा, उपमा आदि अस्त्रों से उनके काव्य की शोभा बढ़ाते हैं। नन्ददास अनुप्रास के प्रयोग से स्वाभाविक मधुरता प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल हैं। भाव सौन्दर्य और मूल्य-व्यवस्थात्मकता की विशेषता भी भाषा में है। नन्ददास शीत के समस्त थे। गानविद्या में निपुण होने के कारण उनके काव्य में संगीतमयता का प्रवाह अनायास हो जा गये हैं। नन्ददास की भाषा का एक बड़ा गुण मधुर व परिचित शब्दावली का प्रयोग भी है। परन्तु नन्ददास के चौपाई या चौपाई वाले ग्रन्थों की भाषा बहुत शिथिल है। रीला तथा रीला दोहा छन्द वाले ग्रन्थों में शब्द, भाव से परे और छन्द में तुल्य हुए हैं। चौपाई वाले इन ग्रन्थों में दोहा और चौपाई की भाषा जैसी अवस्थित, भावपूर्ण व मधुर है वही चौपाई की भाषा नहीं है, मानाँ कवि को कवित्व शक्ति और भाषा लालित्य के प्रस्तुत करने में चौपाई छन्द असमर्थ है।

यह बात सू. के ग्रन्थों में भी पाठकों को मिलती है। कुछ विद्वानों का कथन है चोपाई और वरदा छन्द जितने अवधी भाषा में तुल्य हैं उतने ब्रजभाषा में नहीं। इस विषय में कोई नियम तो निर्धारित नहीं किया जा सकता परन्तु अवधी भाषा में तुलसी, जायसी जैसे कवियों द्वारा चोपाई छन्द में रचित रचनाओं की तुलना करने पर यह बात अवश्य व्यर्थ हो जाती है। नन्ददास के ग्रन्थों में एक बात यह भी ज्ञात होती है कि कवि के भाव गाम्भीर्य, रोचक उत्प्रेक्षा से पूर्ण उसकी सुविधा तथा अनुप्रासों ने भाषा की शिथिलता वाली कमी की पूर्ति में बहुत सहायता दी है। यह दोष रहते हुए भी नन्ददास भाषा जालिन्त्य के लिये प्रसिद्ध है। उपर्युक्त की भाषा की पूर्णता को प्राप्त नहीं मानी जा सकता। उनके छन्दों में लिंगी भाषा के भी शिथिलता है तथा माधात्मकता, प्रवाह और काव्यात्मिक विमलता की कमी है। नन्ददास की, जिन्होंने अपने जिस कथा प्रसंग को रौला छन्द में लिखा है उसकी भाषा में लय और प्रवाह सब कवियों से अधिक है। यही उन्होंने सुर की भी पीढ़ी छोड़ दिया है।

ब्रजभाषा के कवियों ने चोपाई छन्द अविकल लिखे हैं। सुरदास ने इस छन्द का सुव प्रयोग किया है। नन्ददास की कृतियों में चोपाई व चोपई दोनों छन्दों का एक नाम चोपाई दे दिया है। इससे प्रतीत होता है कि कवि ने इन छन्दों में कोई भेद नहीं किया। हिन्दी के बहुत से विद्वानों ने रौला, दाँहा और दस मात्रा की टेक वाले छन्द को जो नन्ददास के मङ्गरगीत में प्रयुक्त हुआ है, सर्वप्रथम प्रयोग में लाने का श्रेय नन्ददास को ही दिया है। परन्तु वास्तव में यह प्रम है। नन्ददास जो से पहले सुरदास को ने भी इस छन्द का रौला, दाँहा और दस मात्रा की टेक सहित छन्द प्रयोग सुरदास के दशमस्कन्ध में दानलीला के वर्णन में किया है।^१

नन्ददास में छन्द में दोष के स्थानों पर दिताई देता है। कुछ दाँहा में भी छन्द में दोष है। उनके चोपाई दाँहा छन्दों में लिखे कथानकों में भाषा

१- अविगत अण्व अमार, आदि नाही अविनाशी,

परम पुरुष अवतार माया जिनकी है दासी (२६) सुरदास दशमस्कन्ध (मे० प्र०) सं० १६१ पृष्ठ २२

उल्लेख होते हुए भी शिथिल है और पाद्य प्रधान प्रकारों में पूर्ण ग्रन्थों में माया में प्रौढ़ता, स्वगतन, सुन्द अलंकारिकता तथा वृजमाय के लोच में डली संस्कृत शब्दावली है। इस भाव तथा कृतिकता माया के लालित्य के लिये नन्ददास जाहिया भी और उस गहिया वाली कथायत प्रसिद्ध है। नन्ददास ने केले कुंदर शब्दों के मोती, माणिक्य, हीरा, मालम आदि जोड़ते हैं, अथिषु हार बन जाने पर उस पर पालिश भी करते हैं। यही कारण है कि उनके पदों में माधुर्य उच्च श्रेणी का पाया जाता है। इनके शब्द एक ही अनुप्रास द्वारा एकपता जाते हैं कुंदर कोमलता व माधुर्य उत्पन्न करते हैं तीसरे कृतितात्मकता ध्वनि उत्पन्न करते हैं। चौथे अलंकारों से सबे होते हैं। पाचम विधात्मकता प्रस्तुत करते हैं। छठे प्रसाद गुण होने के कारण अंतर रसात्मकता उत्पन्न करते हैं और सातवें माया में अभाव प्रसाद जाते हैं। उनके शब्द गीतियों की तरह रेशम पर डलकते हैं। और इस सब का श्रेय उनकी शब्दों व अलंकारों का यथास्थान प्रयोग का फल को जाता है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि नन्ददास के काव्य में अलंकारों की योजना प्रयत्न साध्य नहीं है। अप्रस्तुत विधान में कवि की सौन्दर्य भावना अत्यन्त बलवती रही है। नन्ददास की साम्य योजनाओं में कल्पना का वैभव विशेष दर्शनीय बन रहा है। उपमानों का चपन मुख्यतः चार जोड़ों में किया है। (१- प्रकृति, २- कर्म-कर्म तत्कालीन वातावरण एवं जीवन ३- पशु पक्षी जगत ४- धरोरु जीवन), दृगारात्मक उपमानों का नियोजन नन्ददास की अप्रस्तुत नियोजन कला की पराकाष्ठा है। पण्डित का ७ के अन्य कवियों ने इस प्रकार से उपमानों का निबंयन नहीं किया है।

नन्ददास के शब्द नियोजन के सम्बन्ध में भी निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता कि नन्ददास ने शब्द और पद दोनों शैलियों में काव्य रचना की है। कवि की प्रसन्न रचनाएं गोपनी, दोहा, और रौंज, शब्दों में लिखी हैं। शब्दों में कवि ने कृतिक और लय का विषाकर्षक विधान किया है। रौंज शब्द में लिखी गई रासपनायिका में यत्र तत्र कुछ दाँवें भी आ गये हैं। किन्तु ये प्रसिद्ध हैं।

मंथरगीत व स्थापलाओं में रीठा, दाँहा मिश्रित विशिष्ट स्वर का प्रयोग किया है। मयितकाँ में नन्ददास ही ऐसे कवि हैं जिनके काव्य में उन्नत हृन्द का विधान इतनी विपुलता से हुआ है। मात्राओं के बड़ जाने, गुरु लघु का ध्यान न दे कर्ने और यति का सम्यक विधान न होने से कही कही हृन्द भी पी हो गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्ददास एक विद्वान् व्यक्तित्व थे। आर्ताकार ने भी उनकी विद्वता की प्रशंसा की है। उनकी बहुकता और पादित्य का परिचय उनकी रचनाओं से प्रकट है। ये काव्य शास्त्र के ज्ञाता, संस्कृत भाषा के पंडित तथा सामप्रदायिक सिद्धान्त के जाचार्थ थे। यदि हम अलंकारों के व हृन्दों को जाचार बनाकर ह. व हृन्द के काव्य पर दृष्टि डालें, तो किसी स्थान पर सुर का और कही हृन्द का बल्ला मारी लोगा। विद्वानों का मत है सुर ने नन्ददास पर अपना प्रभाव डाला था। नन्ददास एक महाकवि थे। इस तथ्य का स्वीकार करते हुए भी हमें यह सत्य स्वीकारना ही होगा कि हर दृष्टि से सुरदास प्रथम स्थान पाने के अधिकारी ही हैं। मद लालित्य और माषा मासुर्य की दृष्टि से यदि हम देखें तो नन्ददास अपने सुख का ग्रन्थों के जाचार पर सुर से उच्च ठहरते हैं। जैसे इन दोनों कवियों के तारे काव्य को सम्पुल रखा जाय तो हृन्द व अलंकार के जाचार पर भी सुरदास ही श्रेष्ठ प्रमाणित होंगे। परन्तु चक्षुता यह अर्थ नहीं कि नन्ददास उनकी अपेक्षा कम महत्त्व के कवि हैं। परन्तु सुर का प्रभाव तो तुलसी पर दृष्टिगत होता है जो कवियों के स्फोट माने जाते हैं।

जैसे दाँ महान कवियों की तुलना केवल तुलना के लिये की जाय तो अल ज्ञात है नहीं तो यह कार्य बहुत कठिन होता है। जन्त में हम इस कथन के साथ कि दोनों ही महाकवि हैं और अलंकार व हृन्द प्रयोग में एक से एक जागे हैं, हम यह अध्याय समाप्त करते हैं।

अध्याय सप्तम

सुरदास व नन्ददास की भाषा का अध्ययन रूढ़ सम्पत्ति, लोककवियों और मुहावरों

सुरदास व नन्ददास ब्रजभाषा के बड़े व्यक्तियों के कलाकार हैं। वास्तव में दोनों ही ब्रजभाषा के रत्न हैं। ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप देने, उसे सरल, मधुर व शक्ति सम्पन्न भाषा बनाने वाले सुरदास, रज्जान, मतिराम, धनानन्द और जाधुनि सुग के मारुहेन्दु व रत्नाकर जाद कवियों का जो प्रयास है, उसे आज कौन मुला सकता है। नन्ददास तो ब्रजभाषा के चित्तेरे थे उन्होंने इस भाषा में पर्याप्त कलात्मकता का प्रचुर समावेश किया था। भाषा पर उनका अवूर्त अधिकार था इसी कारण और कवि मांडव्या नन्ददास गढ़िया की उक्ति प्रचलित हुई। परन्तु यह भी सत्य है कि नन्ददास के सभी गुणों की भाषा में वह प्रौढ़ता व माधुर्य नहीं जो उनके कुछ चुने हुए गुणों में है। रास पंचाङ्गाधी प्रेमगीत अपमूर्जिता आदि रचनाओं में ही नन्ददास गढ़िया की शक्तिता प्रमाणित हो सकती है। वैसे यह आवश्यक भी नहीं कि कवि की सभी रचनाओं में भाषा शैली की प्रौढ़ता हो। सुरदास के बने अमूल्य पद रत्नों के साथ कंकर, पत्थर व राँड़े भी पाये जाते हैं। परन्तु इससे न सुर का महत्त्व कम होता है और न नन्ददास का।

नन्ददास की भाषा :

रूढ़ सम्पत्ति, लोककवियों व मुहावरों :- जिस प्रकार नन्ददास के भाषा का उत्कर्ष प्रदान करने और उन्हें सुहाव्य बनाने में उनकी मात्र प्रवणता, उनकी कृपणात्मक कल्पना और उनसे उद्धृत बलुकारों का योग दृष्टिगत होता है, उसी प्रकार उनकी भाषा की प्रौढ़ता प्रदान करने का श्रेय उनके विपुल रूढ़ सन्दार और रूढ़ श्रौजना की शक्ति के साथ उनके द्वारा गृहीत मुहावरों और रूढ़ों के ठाका णिक

प्रयोग ऐसे लौकिकीयों को है। जिस प्रकार सुन्दर लार बनाने वाला मोती, माणिक्य और हीरे के साथ नीलम, पन्ना और भूरे को तराश तराश कर रंग में रंग का जोड़ मिलाता है, उसी प्रकार नन्ददास जी ने शॉट शॉट कर सुन्दर ध्वनिपूर्ण मधुर और सासुप्रासिक वर्णों को मालाएं गुथी हैं। डा० खगरी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में शब्द अनुप्रासों का मोकार से नन्ददास ऐसे वातावरण की दृष्टि करते हैं कि पाठक अभिभूत हो जाता है। शब्द की ध्वनि और अर्थ की गम्भीरता एक दूसरे से स्पर्श करते हुए प्रकट होते हैं। जष्टदास के किसी दूसरे कवि ने शब्द गठन और ध्वनि निर्माण की ऐसा पामता नहीं दिखाई।^१

शब्दावली :

नन्ददास ने संस्कृत साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया था। यह बात अनेकानेक माषा नाममाला व रसमंजरी से सहज ही प्रकट होती है। अतः उनकी माषा में संस्कृत का प्रभाव परिचित होता है। यहाँ तक की कहीं कहीं कवि क्रियाओं को भी संस्कृत से लेकर ज्यों का त्यों रस देते हैं।

१- तन्मर्षि पद परम गुरु कृष्ण कमल दल मेन ?

२- जवा सि बजासि पिय महाबाहु इमि बदति बनेलो^३

यहाँ तन्मर्षा यि जवा सि बदति शब्द दृष्ट्यर्थ है। इसी प्रकार उनकी शब्दावली में संस्कृत के सभी प्रकार के शब्दों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। शब्द प्रयोग की दृष्टि से नन्ददास में मौलिक विशेषताएं विद्यमान हैं। संस्कृत शब्दों के ब्रजमाषा के अनुकूल ढाँढने के प्रयत्न में नन्ददास ने शब्दों को नया रूप प्रदान कर दिया है। अतः उनका मुख्यंश कुछ मात्रा में शेष रह पाया है। माषा वैज्ञानिक शब्दावली में इनके अर्द्धतत्सम का अर्द्धतत्सम शब्द कहा जाता है। अस्तु के मतानुसार ऐसे शब्दों को

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास (डा० खगरी प्रसाद द्विवेदी) पृ० १६१

२- नन्ददास शब्दावली पृष्ठ जंथा ७६

३- वही

हम परिवर्तित शब्द विभाग के अन्तर्गत रख सकते हैं।^१ नन्ददास के काव्य में ऐसे शब्द प्रायः माधुर्य के साधन के लिये आये हैं। कतिपय शब्द दृष्टव्य हैं :- जाति, शरार, उमंगि, कच्छ, बच्छ, मछ, वरम, सरद, आत्माराम, निवन, सहस्र, अतिमय, श्रेष्ठि, पक्ष आदि।

नन्ददास की भाषा सौन्दर्य शब्दों की परमार है। जहाँ भी अनुसूति तत्त्व प्रयान हुआ है, वहाँ भाषा स्वयं स्वामाविक हो गई है। यह स्वाभाविकता तत्पक्ष शब्दों के प्रयोग से जाई है। कतिपय शब्द उद्धृत किये जाते हैं :- फाटिक, पावु, वानक, उलहँ, सुहय, पटकी, बावन, निरबधि लुठ, उनहारी, लिन, जिह, आदि। नन्ददास के काव्य में ब्रजभाषा के शब्दों की प्रसूता है और यह स्वाभाविक भी है। प्रकृति से ही कर्मल ब्रज भाषा के शब्द नन्ददास के भाषा की व्यञ्जना करने में पूर्णतया सफल हुए हैं। शृंगार रस की स्यांग व विप्रलम्ब दोनों ही दशाएँ भी ब्रजभाषा के शब्दों के द्वारा मार्मिक रूप से अंकित हुई हैं। यही नन्ददास की कृतियों से उन शब्दों को उद्धृत किया जाता है, जिनका प्रयोग केवल ब्रजभाषा में होता है -- बाँप, गाँहन, सिरावहु, मलकनि, विधुरन, शरार, विस्सर्ब विरराहँ, टटावक, उफकै, गिलि, उपबानी।

कवि ने ब्रजभाषा के शाशिण शब्दों का भी प्रयोग किया है, क्या -- उस, बेगि, वीर, रुति, लरिका, पूत, हलाये, करनी, विरिया, गमारि, मुह, नेरे जादि। कुछ शब्दों को कवि ने स्वयं ही गढ़ लिया है -- उखा (वीरहर), उखा (उर) दुबबा (मोर, मूर) आदि। इसके अतिरिक्त कुछ शब्दों को कवि ने ब्रजभाषा के बाँचे में इस प्रकार डाला है कि वे उसी के प्रतीत होते हैं। छु धित के लिये छुछित, छुम के लिये छुद्धम परिक्रिया के लिये परिकल। किन्तु नन्ददास की भाषा का लालित्य बहुत कुछ उन सौन्दर्य शब्दों के कारण है, जिन्हें कवि ने ब्रजभाषा से हाँवे हाँवे कर निकाला है और उन्हें भावपूर्ण प्रसादता का गुण देकर अपने काव्य में स्थान दिया है।

तत्सम शब्द भाषा का सबसे बड़ा आधार होते हैं, क्योंकि भाषा की स्वाभाविकता के लिये इन्हीं का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है । और इन्हीं भाषा की सम्पत्ति कहना अनुचित न होगा । मूलतः ये शब्द संस्कृत शब्दों से गृहीत हैं किन्तु परिवर्तन और प्रयोग दोनों के कारण ये मूल रूप से बहुत मात्रा में मिल से जाते हैं । अतः इन्हीं के प्रयोग से भाषा की व्यावहारिक और स्वीय रूप प्राप्त होता है । नन्ददास के काव्य में तत्सम शब्दों का प्रयोग भाषा के इसी लक्ष्य की स्वाभाविकता एवं व्यावहारिकता की ध्यान में रखकर किया गया है । कुछ प्रयुक्त शब्द इस प्रकार हैं -- बानक, दाँठि, चंद, बस, लखै, कानहर, पावस, स्थि, पाहन, पचि, पचि, हरिह, सजना, मीत, जुगति, बीसर आदि ।

उसके अतिरिक्त देशज शब्दों का प्रयोग भी भाषा विशेष के रूप की स्थिति रखने के लिये अत्याधिक आवश्यक है । अन्य भाषा की शब्दावली कितनी भी अधिक हो, वह तब तक भाषा में अपनापन देने में समर्थ नहीं होती, जब तक भाषा विशेष के पास अपनी शब्दावली नहीं होती । यही देशज शब्द उसे अन्य भाषाओं से पृथक् करने में सहायक होते हैं । व्रजभाषा तो इस प्रकार के शब्दों से समृद्ध है । नन्ददास के काव्य में प्रयोग होने वाले देशज शब्द कुछ इस प्रकार हैं-- मल्लकि, विठुल्लि, चाहि, कैक, उखैली, बिसेनी, अरगार, सात, गहर, पटोरन, सौवे, हुमेल, बंकुस, मयाद, गहर, कामरि, हल्लेवा, हुलिय, बिसेली, बीजना, विरराँ, उलहे, आदि ।

नन्ददास की भाषा में विदेशी शब्दों का बहुत सीमित प्रयोग हुआ है उन्होंने अपने समकालीन सभी कवियों की अपेक्षा विदेशी शब्दों का रूप ही प्रयोग किया है । यद्यपि इसलामी संस्कृति व भाषा के प्रचार से फारसी व अरबी के शब्द कुछ अधिक ही प्रचलित हो रहे थे किन्तु नन्ददास के सम्पूर्ण काव्य में विद्वानों की दृष्टि पर बार बार शब्दों, गरज, अरदास, लायक और मल्ल का प्रयोग ही मिल सका है । डा० दीनदयाल गुप्त ने प्रथम तीन का ' तथा जी डा० उषेती ने अन्तिम

तीन शब्दों का उल्लेख किया है ।

गरज:

जाकाँ रुचक रज गरज,
अज ते मरि पवि जात ।

लायक:

अहा विप्र जन ठाम न कीजे,
या लायक, लायक कुं दाजे ।
कुर धवन जनि कहाँ,
नहिन ये तुम्हारे लायक ।

अरदास:

बहुत मोति बदन कही,
बहुतहिं करि अरदास ।

ब्रजभाषा से इतर भाषाओं में से अरदास ने अवधी से भी कुछ शब्द ग्रहण किये हैं क्योंकि अवधी के शब्द उस का० में इतने प्रचलित हो गये थे कि वे ब्रजभाषा के शब्दों के समान सामान्यतया प्रयुक्त होने लगे थे । ऐसे भी यदि बल्गम सम्प्रदायी साहित्य के आधार पर अरदास का तुलसीदास से कुछ भी सम्बन्ध स्वीकार किया जाय तो ये शब्द उनकी मातृ भाषा के माने जायेंगे । पर अवधी के शब्दों का अत्याधिक प्रयोग न करना उनके ब्रज भाषा पर पूर्ण अविकार का सूचक है । अवधी के कुछ शब्दों का प्रयोग इस प्रकार है :-

हमरे : हमरे सुन्दर स्याम प्रेम को मारग सुयो ।^१

रावरे : विचारौ रावरे ।^२

कीनी : स्याम स्ना निज जानि बहुरि हित सेवा कीनी ।^३

इह : जो इह रूप बफाल नहीं जाई ।^४

१- मुरारीत, शब्द ८

२- वही शब्द ३१

३- वही शब्द ४

४- नैग० उपनिषद् पृष्ठ १०६

आली: निमैल जल जनु मुनि मन आली ।^१

दीनी: सूर कुरुप कुंजर कहुं दीनी ।^२

अनुरणात्मक शब्द कवि की अपनी दृष्टि होती है । माया में व्यन्धात्मकता और वर्ण साम्य की दृष्टि से शब्दों के नये रूप कवि स्वयं बना लेता है जिससे माया की अर्थशक्ति में पर्याप्त वृद्धि होती है और हम में निसार आ जाता है । नन्ददास का रचनाजी में इस प्रकार के शब्द प्रचुर ऊँचा में उपलब्ध होते हैं । कुछ का प्रयोग इस प्रकार है :

ठगान: ठगान ते सब वाम, वसनन सजि सजि कै गई ।^३

फकारत: इत बनसार लुसार मलय मंदार फकारत ।^४

थिरकि: सुमग बटा प, बटा दवीली थिरक रहत ज्यो ।^५

अलवत: विहल ह्वै गई बाळ बाळ सो अलवत बोले ।^६

जामग: जामग जामग जाँति होति रवि वसि सो आई ।^७

ररनात: ररकत, डरकत री तिलक भृग मेदन ।^८

रमक: रमक रमक फारमत पिप प्यारी,

सुख बरसत तिहिं काळ ।^९

उपरोक्त शब्दों में उनके प्रयोग से यह स्पष्ट है कि उन शब्दों की दृष्टि विशेष कारण से हुई है । इनके द्वारा वस्तु और भाव दोनों का विम्व ग्रहण

१- नन्ददास ग्रन्थावली उपमंजरी, पृष्ठ १०५

२- वही ११ ११ पृष्ठ १०६

३- पदावली पद २७

४- स्यामसंगीत ६-६२

५- नन्ददास ग्रन्थावली पृष्ठ २६

६- सिद्धान्त पंचाङ्गिका ५६६

७- रत्नमणिमाला ३५

८- वही पद १०५

९- वही पद १६४

एक ही होता है । प्रत्येक शब्द निरिक्त उद्देश्य से निर्मित है । यह उद्देश्य अनुभूति व्यंजना, कार्य व्यापार, और रूप व्यंजना तथा अन्ति व्यंजना, किसी भी प्रकार का ही होता है । नन्ददास की कला संगता इन शब्दों के निर्माण में अत्यधिक स्पष्ट है । उस प्रथा में नन्ददास माया में सजीवता के प्रवाह बनाये रखने में सर्वथा उत्कृष्ट है ।

मुहावरें, लोकोक्तियाँ :

जिस प्रकार नन्ददास के मायों को उत्कर्ष प्रदान करने और उन्हें छाह्य बनाने में उनकी भाव प्रवणता, उनकी धृष्टिगत कल्पना और उससे उद्भूत व्यंग्य का योग दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार उनकी माया को प्रीति प्रदान करने का श्रेय उनके विपुल शब्द भंडार और शब्दरूपों की शक्ति के साथ साथ उनके द्वारा गृहीत मुहावरें व लोकोक्तियाँ ही हैं । लोकोक्तियाँ जहाँ युग्म से बनी जाती हैं वहाँ सा मिश्रण प्रसिद्ध उक्तियाँ से सम्बन्धित हैं, जहाँ मुहावरों का प्रयोग माया को ब्रह्म, मार्मिक और तीखा बनाने के लिये किया जाता है व मुहावरों का आवार लाना है । इसी शब्द शक्ति के सहारे मुहावरों की प्रयोग विशेष में बँटाया जाता है । नन्ददास ने अपने कथाकाव्यों में लोकोक्ति मुहावरों का उचित प्रयोग किया है । वास्तव में शब्द समूहों के रूप में लोकोक्तियाँ व मुहावरें जीवन्त माया के प्राण, विविध विषयों पर समझ और अनुभव के प्रतीक तथा मानवीय ज्ञान के बोले और चुपके हुए सूत्र होते हैं ।^१ सामान्यतः जब वे शब्द समूह पूर्ण वाक्यों के रूप में लोकांशुओं को प्रकट करते हैं, तब लोकोक्ति या कहावत कहलाते हैं । और जब प्रयोगात्तु वाक्यांशों के रूप में माया की प्राणलता, प्रवाहिला तथा व्यङ्ग्यजना शक्ति में वृद्धि करते हैं तब मुहावरें । लोकोक्तियों में जाति के समस्त जीवन का दीर्घकालीन अनुभव रहता है वे व्यावहारिक जीवन का कुंजियों का काम देता जाई है ।^२ नाचें काव्य की कृत्याप्रसूत कल्पित मुहावरें व लोकोक्तियाँ

१-} हिन्दा काव्य साहित्य डा० जगमोहन पृष्ठ १६६
२-}

प्रस्तुत है :-

राम साहे :

मनहिं फुले फिरे (२) सकहि डोल बडावे (७) नाके जार (६)

नाममाला :

करत छटा ओ बात (१३) सरदी चुनो पढ़त (७७) पानी पर पाथर तिर (१३०)
बानर के कर ना रियल (१४८) मणि जैत कपि बठ (१६०)

पमंजरी :

करमीदे सरवरि पक्षताई (८६) छिताया के चांद को तरह बड़ना (६९) चन्द्रमा
को ओर हाथ बडाना (१५०)

विरहमंजरी :

बहकि गयो हियो (२५) अगिन मे अगिन ज्यो बड़ (३६) करत नकुवानी (५३)
दावे पर नर लागत जैन (६१)

हकमणि मंगल :

चित्र छिछो सी रहना (३) मन को सी गति करना (७५) घटा से घाते
करना (३५) छग मटी खाना (११७) आँख मे धूल फाँकना (११६) चन्द्रमा मे धूल
उछेलना (१२६)

रासपंचाव्यायक्ति :

नैन सिमिटि प्रमननि, जाये (६६-२०२) रहि गई एक टक ठाड़ी (७५ अ०२)
चिन माले को दासा (२ अ०३)

पंखगीत :

ग्यान की आखिन देखो (७) पवित्रिये (१६) हिय जैन लाये (३२) चोरि
चिच लै गये (३४) बिजा कला मानिये (३६) छुदित ग्रास मुल काठि (४१) मटत बह
बाँल को (४७) नयन मरि जाये (७३)

पदावली:

चक्कई सन होरे (५६) नना रंग माँवे (१०९) जाना जानी करना (१०४)
 प्रेम प्रीति के जोड़े पाक (१०६) जास जूठन की (१०६) करत मनमाँई (१३२) बात
 उभाड़ना (१२५) जाप काज मलाकाज (१३२) जास बात की एक बात (१२६)

ठेठ लौकिकित्यों और मान व्युत्पन्न प्रकृतियों के क्लेश प्रयोग में नन्ददास ने
 अपना अत्युत्कृष्टता प्रदर्शित की है। उनकी रचनाओं में इन लौकिकित्यों के प्रयोग
 से एक धरेल जातावरण सा उनकी भाषा में पाया जाता है। उनकी रचनाओं में
 लौकिकित्यों के उदाहरण देखिये :

नाममाँता:

ताहि रवी विधिना निपुन
 ह्ये गयाँ बहुरयो वाक् ।

विधुरि कइ से वन्धिका रहति न न्यारी होई ,
 अवधि अनादर होत जो रहे निरन्तर पाउ, मई
 तया काँ बुद, पारो हुरे के ब्रज बिर,
 सोदत साज न लाज ।^१

रसमंजरी:

२ जाको जहँ अधिकार न होई,
 निकटहि वस्तु दूर है सोई ।

प्रेम मिटै नहि जनम मरि
 उनम मन की लागि
 जो जुग मरि जठ में रहे,
 हुकै न वकमक आगि ।

१- नाममाँता दोहा क्रमशः ८६, १००, १४२, २०२, २०६, २१० ।

२- रसमंजरी पदित क्रमशः १२, १२६

रसमञ्जरी : १

अलि बिन, कबलुहि को पहचानै, हार नार नितारि विवेजा, फलन के
नार नम्रि द्रुम ऐसे, अपति पाय बहु जन जैसे, वेतते के सब उज्जवल गारे हार काम
नाही आयत मारे, किन पार्थ या अपन कहानी, विजननि बात्मन कवन अवार्थे,
मृगतृष्णा कब पानी मई,

विरहमञ्जरी : २

अवगुन होय जो मिय मे

मिय न चित वरत ।

बिक्लित जब विपरीत

तब पानी हो से जागि ।

रासपवाव्याधी :

हरि मृग सी चरही,

सावन सरित न लके करे जो जतन कोऊ अति,

को जड़ को चेतन्य कछु न जानत विर हो जन,

महा निधि लार्ह मय्य आधी निधि पार्थ,

(छन्द १६ अवधाय १

छन्द ५६ ,, १

छन्द ५ ,, २

छन्द ३६ ,, २

पदावली :

गिनि देता नाठि ना जाना,

दाम लरनि मनो मोठि लई रो,

१- रसमञ्जरी प्रथित क्रमशः ४, २०, ४८, ६५८, १६४, २१८, २५६, २२१

२- विरह मञ्जरी :- दोहा क्रमशः ५७, ७४

तेरे वना की का है चोरी, पाथन कहु मंहरि

बड़े, मई कहा और जागे होना (पद क्रमशः १०८, १२६, १२६, १४६)

वर आए नाग न पूजाहि दानी पूजन जाहि

(मधुरगीत सन्द १८)

सुर:

शब्द सम्पत्ति, मुहावरें, ठीकौचित्त्योर-

सामञ्जस्य और समन्वय ही रचना की सफलता के मूल मन्त्र हैं।^१ कलाकार कला के विभिन्न अंगों का समन्वय करके आवारमुक्त वस्तु को हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयत्न करता है परन्तु उसका शैली का सौन्दर्य उसकी भाषा की समृद्धि पर ही आधारित होता है। वह शब्दों का प्रयोग इस प्रकार करता है कि हमारे भावों और विचारों को व्यञ्जित कर देते हैं। उत्तम कलाकार भाषा को अपने आन्तरिक के समान बना लेते हैं और उसकी मान प्रेषणायिता को द्विगुणित कर देता है। इसलिये अर्थ में त्रिपमता और सजावट लाने के लिये कवि भाषा, लक्षणा और व्यङ्गना की सहायता से शब्दों का विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त करता है। कवि के हाथों में पड़कर शब्द में एक विशेष दायित्व या जाती है और वह अर्थ विशेष का वाहक बन जाता है। वास्तव में शब्द का मूल्य भी अनुसृति पर आधारित है। इसलिये शब्द की व्यञ्जकता भिन्न भिन्न कवियों की रचनाओं में विविध रूप में परिलक्षित होती है। सुनानी आलोचक लाजायनस ने सुन्दर शब्दों को भावों और विचारों का प्रकाशन माना है।^२

भाषा शब्दों का ही समुदाय है। परन्तु कविता भाषा को भावों और विचारों का प्रतिनिधि बनाने का प्रयत्न करती है। कविता के लिये भाषा और श्रोतृत्व व दृश्यमान दोनों ही चित्र अपेक्षित हैं। भाषा के दृश्यमान बिन्दु हैं

१- सुर और उनका साहित्य - डॉ० डा० हरवृक्ष लाल पृष्ठ संख्या ३०३ ।

२- वही

कुरिन्द्रिय के माध्यम से भावों को हृदय तक पहुँचाया जाता है, इसलिये किसी कवि के मूल्यांकन में यह सभी बातें विशेष महत्व रखती हैं।

सुरदास ने अपने काव्य के लिये अपने दृष्टदेव की विहार भूमि ब्रज को ही माया का अपनाया। ब्रजमाया व्याकरण की कताई पर सुर की माया सरी नहीं उतरती क्योंकि उन्होंने ब्रजमाया के ही शब्दों को नहीं तोड़ा मरोड़ा, प्रत्युत अन्य भाषाओं के शब्दों को भी अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा की है। इस कारण उनकी माया शुद्ध परिमाणित माया नहीं मानी जाती। जैसे बोलचाल की भाषा को साहित्यिक रूप देने का सुर का प्रयास नितान्त सराहनीय है। संस्कृत के तत्सम शब्दों से तो उनकी माया का ड़ाँपा बनाने में सहायता मिली ही है, अन्य देशी भाषाओं और जरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों का भी विशेष महत्वपूर्ण योग है। इस प्रकार बहती हुई ब्रजमाया को व्यापक व प्रभावशाली बनाने का स्तुत्य कार्य सुर ने ही सबसे पहिले किया। उन्होंने विनय तथा मर्मित सिद्धान्त प्रतिपादन के पदों में संस्कृत के तत्सम व तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। उपचित्रण एवं प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में भी ऐसे शब्दों का प्राचुर्य है। संस्कृत के तत्सम शब्दों में यह बात लक्ष्य करने की है कि उन्होंने उन शब्दों को ब्रजमाया की ध्वनि के अनुकूल ही बना दिया है। संस्कृत के कर्ण कटु शब्दों में ब्रजमाया के उच्चारण के आधार पर आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर उनमें उन्होंने माधुर्य लाने का प्रयास किया है। उनकी माया में तत्सम शब्दों की अपेक्षा तद्भव शब्दों का आधिक्य है और कहीं कहीं तो तद्भव शब्दों से ही नये नये शब्द भी गढ़ लिये गये हैं। संस्कृत की तत्सम व तद्भव पदावली के अतिरिक्त उड़ी बोली, अवधी, बुन्देलखण्ड और पंजाबी शब्दों की भी कमी नहीं है। अवधी भाषा के सम्बन्ध सूचक अभिव्यक्तियों को देखकर कभी कभी तो सुर के पदों की पाठ शुद्धि में भी संदेह होने लगता है।

देशी भाषाओं के अतिरिक्त जरबी, फारसी के भी शब्दों का प्रयोग सुर की माया में पर्याप्त अविकला से हुआ है परन्तु उन्होंने उन शब्दों को उनके

मौलिक रूप में प्रयुक्त न करके प्रचलित रूपों में ही प्रयुक्त किया है। सुसलमानों सम्पर्क के कारण देशी भाषाओं में अनेक सुसलमानों सुसलमानों शब्दों का प्रवेश भी हो गया था और उन साधारण द्वारा वे अपना भी लिये गये थे। यह प्रक्रिया सताब्दियों तक चली रही। आज भी पश्चिमी जिलों में बरबा, फारसी के शब्दों का इतना बाहुल्य है कि उनका एक अलग कोष बनाया जा सकता है। परन्तु ध्वनि वादि की दृष्टि से वे अपना रूप बदलकर हिन्दी शब्दों में इतने घुल मिल गये हैं कि साधारण तथा विदेशी प्रतीत नहीं होते। ऐसे शब्दों का तो शुरू में सुझाव प्रयोग किया ही है साथ ही साथ और भी नवीन शब्दों को अपनी भाषा के ळावे में ढालकर ग्रहण किया है। शुरू की भाषा विषयक यह उदारता ब्रजभाषा को सुदृढिशास्त्रि और प्रमांशास्त्रि बनाने में बड़ी सहायक सिद्ध हुई। कुछ विदेशी शब्दों का उन्होंने नाम वासु बनाकर प्रयुक्त किया है। अन्य देशी और विदेशी भाषाओं के शब्दों की सुशालित्व में प्रभु भाषा मिलती है। यहाँ हम सुरागर में प्रयुक्त कुछ शब्द बान्गी रूप में प्रस्तुत करते हैं। सुविधा के लिये प्रत्येक शब्द के आगे उस पद की संख्या भी दे दी गई है जिसमें उस शब्द का प्रयोग हुआ है। यह पद संख्या नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सुरागर के अनुसार है।

तत्सम शब्द :

अध्विति (२६) अधिकार (२८) अनायास (१०५) अभिराम (४६६)
अजिर (४६६) अमिलाष (५४४) अवज्ञा (५२) आसुष (२२१) अभिर्भाव (४५६)
हन्दीवर (२४३१) कालिमा (५८) कौतुक (६३२) कुतल (७७२) कौविद (७७२)
पनाधि (२०७०) द्वारा (८०) दालक (१६३) चिबुक (७२४) निरालम्ब (२) प्रतीति (४८६)
परिवेश (२४१४) रविर (६६६) स्नात (५२६) संकुचित (६८२) सत्वर (२७८६)
क्षारक (७६६)

अनेक तत्सम शब्दों के उच्चारण की कठिनता को स्वयंमयित अध्या सुध ध्वनि परिवर्तनों से दूर किया गया है। ऐसे शब्दों को जब तत्सम शब्द कह सकते

है । छुर की माषा में ३७ प्रकार के शब्दों का मा बड़ा किया है यथा:-

अजस (२०३) अम्रित (२४२) आरत (२५१) गनिका (१६०) जनम (२०८) तीरथ (२०८) लूकर (४१) स्वान (४१) सुरसरि (२७७) साक्षात् (२८७) परजाद (५३७)

परन्तु छुर के काव्य का शान्दिय बहुत कुछ तद्भव शब्दों के उत्पन्न है । प्रज माषा के स्वामा विक मासुर्य ने छुर की माषा को अत्यन्त, मधुर बना दिया है । उनके काव्य का डाँचा तद्भव शब्दों से ही बना हुआ है । विशेष कर प्रमरगीत में, गोपियों की सखन व्यङ्ग्यात्मक उक्तियों में माषा की सरलता और सरलता पराकाष्ठा को पहुँचे गई है :

तद्भव शब्दा-

अनमावत (६४६) बाहि (४८६) आखर (६५८) उल्लो (६०६) काठ (४८६) कुखेत (२६) कोहरि (५०२) रवेम (३२) दूव (६३७) दोठि (८१८) पसारना (४८५) मसान (३७८) सजनी (४८८) सरिष (५२७) सराय (२२६) सतिमार (२८४)

उनके अतिरिक्त अति प्रचलित ग्रासीय शब्दों का प्रयोग भी छुरदास ने बहुलता के साथ किया है । कुछ ग्रासीय शब्द ऐसे भी हैं जिनका प्रयोग अब या तो होता ही नहीं या विरल रूप में होता है । कुछ प्रचलित शब्द ये हैं :-

करतूति (४६४) करनी (२४६८) विरिया (२३४) चुल्लुकी (७६२) नौं (२०६) सठिया (१६२) न्नाँवे (२८४६) ।

तुल्य मिलाने के लिये और छन्द के अनुरोध के कारण छुर ने निरक्षुताःकवलय के अनुसार अपने उस अधिकार का बराबर प्रयोग किया है और शब्दों को पर्याप्त रूप में विकृत कर दिया है, यथा वाक्य -- बिके, पक्कौरा -- पकौरा, (८०१) बचना (बनचरना) (७३१) आदि । कुछ शब्द उन्होंने स्वयं भी गढ़ लिये हैं -- ज्योतिक-- ज्योतिषी (३५५५) नील कण्ठीर-- नीलकण्ठ (७७६) ज्योति मरि ।

मोनी-- मतिमान (१८२) उत्तमगे-- उत्तम (२५४०) आदि ।

विदेशी शब्द:

जैसा कि कहा जा चुका है राजनीतिक सामाजिक आदि परिस्थितियों के अनुरोध पर शूर के समय में अनेक अरबी, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का अनन्तवारण में सुव प्रचार हो गया था । शूरदास ने इस प्रकार के शब्दों को स्वतन्त्रा पूर्वक ग्रहण किया था परन्तु उनके मौलिक रूप में नहीं अपितु अपनी भाषा की व्यवस्था के अनुसार अनुचित परिवर्तित रूप में । इस सम्बन्ध में निम्न पद विशेष रूप से प्रस्तुत हैं :

हरि हो रैधों अम कमायाँ ।
 सा निज जमा हुती जो बारी,
 मिन जालि तू जवायाँ ।

बासिल हाकी स्यादा मुजमिल, सब अवम को बाकी ।
 विकल्पुप्त सु होते सुस्तोको, सरन वै गहुं काकी ।
 मोहरिल पावे सात करि दाने, तिनकी बड़ी विपरीति ।
 जिम्मे जिनके मांगे मोते, यह तो बड़ी अतीति ।
 पावे पञ्चोष साथ जगजानी, सब मिठि काज विगारे ।
 सुनी लोरी विरारि गहं सुवि, मो तजि मर निपारे ।
 बडौ तुम्हार बरामद हुं माँ, लिखि कीना है साफ ।
 शूरदास की यह चीन्ती दस्तक कीजै माफ ।^१

इस प्रकार के मर्दा से स्पष्ट हो जाता है प्रायः राज और राजस्य सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द विदेशी हैं, जो मुख्यमानी शासन होने के कारण उस समय जनता में अत्यधिक ही प्रचलित रहे होंगे । इन शब्दों के वातरिक्त और भी बहुत से विदेशी शब्दों का प्रयोग मिलता है: -

वरदान (२६), जहाज (६६) सिरताज (६६) नपा (२६७) रेशम (६५६)
 सहर (१२२५) ह्यूर (१८८७) लावित (२४४७) अपलोव (२८५३) दिवाना (२५६६)
 तन्दूक (२५६२) जाँहर (३७०६) चरकार (४५२७) गुनछार (४५२७) ।

इतना ही नहीं लॉन लामो (२८७०) और फाँजपति जैसे हीज शब्दों की
 धृष्टि में उदारात्म सुर ने कर ली है । कही कही फाँजरी के समास के डों के
 समास भी किए हैं । मूष नासिया- सिया का मूष ण, पैला (२५६१) डोरी (२५५६)
 आदि गुजराली और फाँहरना (२५३८) आदि हुन्दली शब्द भी वहाँ जहाँ मिल
 जाते हैं । सुर ने मनोदेश विशेष के चित्रण में मापा को मान के सामानान्तर
 लाने के लिये स्तुत्य प्रयास किया है । मापा को प्रवास व प्रवास प्रदान करने
 वाली मिली जुली शब्दावली उसी प्रयास का एक अंग और सुर की उस समन्वयवादी
 प्रकृति का प्रतीक है जिसका स्पष्ट प्रस्फुटन हरिहर की नयानमः ^१ वाले पद
 में हुआ है ।

मुहावरे और लोकोचित्यो :

मापा को प्रोढ़ता प्रदान करने में मुहावरे व लोकोचित्यो का कितना
 हाथ है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है । इन लोको और सरल लोकोचित्यो
 में मान व समाज का विरकाठ का अनुभव संचित है । इनका आचार मनोवैज्ञानिक
 है । अतएव देश व काल की सीमा से ये परे व पर मानव मान के हृदय को समान
 रूप से स्पर्श करने की सामता रखती है । आश्चर्य होता है कि उस अन्यकवि की
 सुप्तदर्शिता, दूरदर्शिता तथा विस्तृत निरीक्षण पर, जिसने अपनी शब्दावली में
 अनेक धृष्टि रत्नों को गूँथ कर बाणों का अपूर्व ढंगार किया है ।

वास्तव में लोकोचित, लोकतुल्य व लोकनाट्य एवं लोक कलाओं की भाँति
 लोकोचित्यो और मुहावरे भी लोक साहित्य की असुल्यतम निधि हैं । सामाजिक

जीवन के नैतिक जीवन का प्रतिनिधित्व लोकोपितियों और सुहावरे ही किया करते हैं। हा० बासुदेव शरण अग्रवाल के रूपां में लोकोपितियों मानवी ज्ञान के चोखे और चुपते हुए पुत्र हैं। अनन्तका० तक बासुओं की तपाकर हुए राशि नाना प्रकार के रत्नों, उपरत्नों का निर्माण करता है, जिनका बाजों के जेदा छिटकता रहता है। उसी प्रकार लोकोपितियों मानवी ज्ञान के अनोपुत रत्न है। जिन्हें बुद्धि और अनुभव का किरणों से फुटने वाली ज्योति प्राप्त होती है।^१

सुहावरे बाज्याश बनकर बाजियों में प्रयोग होते हैं। उनमें पूरी बात व्यक्त नहीं होती है। लोकोपित में पियर की पूर्णांशिवनित होती है। उसके मूल में कोई न कोई अन्तर्कथा होती है। इसलिये इसे सुहावत भी कहते हैं। सुर द्वारा प्रयुक्त हुए सुहावरे व लोकोपितियों यहाँ दिये जाते हैं :-

सुहावरे :-

अगुरी गहत गह्यौं जिहि पड़्यौं (१६२३)

अपने हाँ छिर जानना (२४४६) अपना हाँ करना (२६६८) आँखें बाँधना (२८२७) उनहि हाथ का पाठाँ (१५५३) एकपुं अंग न काँची (१६४८) एक बात की कील बनाई (३२५०) एक छाल के तारे (४२६१) आँखें बाँधना (२६३०) एक दुल्ल हजे होसी (४६६१) ।

गाढ़े दिन के मीत (३१) गमन में कुष हाँदेना (४२६८) जाति पाँति उवटना (१६५३) जिय में छूत रजौं (३६१७) जन्म बिहाइना (३६५६) घर के चारे (२८८७) ठाँठ बजार ठगी (३८८३) ठग मीदक होना (४०१६)

तारे गिनना (३६२७), तिका तौड़कर छालना (२७५२), दग की पाँती (१६११) है काँड़ी के (३८७२) नाच नवाना (४२) नैन लाना (२०७५) ।

पाठ पठाना (१६०६) पीछे पीछे फिटाना (२६६२) पराए होना (३०१६)

पलक न पड़ना (३८३५) पृष्ठ पारना (३६५६) मनमाना कहना (४१३६) माँह लानना (२६२८) मोठी साठी कहना (८७२) मूँह बढाना (१८८८) मनमिठना (२६१८) ।

लोकें लोबकर कहना (२५६५) लैन न देन (२८६६) लोउ बढा लेना (२४८६) हँस काग का लो मयाँ (४०३६) को ह्वे ना बढत है (१६०५)

लोकवित्त्या :

अपने स्वाराय के सब कोऊ (४५६३) उत्की मई न उत्की खजनी (२६३५) जोड़ाई हलरात (१८८६) कबन सार्ई, कावे लै जाइ (३१२६) मान, सुर खवेया थोकाँ (४४७६) काको मूल गई मन लाहु (४४७६)

जाके साथ पैड़, फल ताकाँ (१६५१) जई सुनिये सार्ई पुनि लुनिये (२४०३) जो छोटा तई है लोटा (२६६६) जादि कुछ हँसी लोकवित्त्या है जिनका समाज विरकाउ है प्रयोग करता चला जा रहा है । इन कहावतों में समाज की जागृक चेतना एवं नैतिक स्तर का प्रदर्शन हुआ है । कुछ परिष्कृत लोकवित्त्या में जीवन का फिलिमिल सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है ।

धोले ही बिवा लाई के

काटत ताहि वहाँति (३६७४)

मे लोकें रवि का अस्थियुजेने हुआ है । लोकवि प्रकृति को खनकारी सामग्री में ही निःशेष नहीं कर डालती है प्रत्युत उस पर अपनी मायनाओं का आरोप करके उसे अपने समान प्राणवान बना लेती है ।

सुरसागर में प्रद्युम्न लोकवित्त्या की कुछ और वस्तुएँ देखिये :- मारे का मारत है वई लोम मारं (२६२१) मैद आगे मैद कैसे (४४८३) प्रेमकथा सार्ई पै जानै जाये बीती सार्ई (४६६०) सुर समान तबै नहीं कारों, कोजै कोटि उपाय (४६१७) सुरदास प्रभु सीख बतावे सबब लार्ई के चाटों (४५४०) सुरदास वै मन के सार्ई, जवसर परे जाहि पहचानै (४३६६)

लोक प्रचलित उपमाओं, मुहावरों और लोकोचित्यों का वाक्य लेकर गुर ने अपनी माया को अमीष्ट भावों की अभिव्यक्ति के लिये कितनी उपयुक्त बना लिया है यह निम्न पद से स्पष्ट हो जायेगा जिसमें प्रेम विह्वला ब्रज बालार उद्वेग पर सीधी साड़ी माया ने ऐसा चुटोला चका करती है कि वे अवाक रह जाते हैं:

जाने जाँगे खिलान पाहे ।

परमारथी पुरा ननि लादे ज्यों बनजारे टाहे ।

हमारे गति पति कमल नयन की, जाँगे खिलते रोहे ।

कहाँ मधुप कैसे समा लिये एक ध्यान दाँ हाँ ।

कहू पटपद कैसे लेयतु है साधिनि के संग गाँ ।

काकी भूख गई बवारि मधि बिना ह्वय घृत मोहे ।

काहे काँ फाला है पिलवत कौन वरि तुम हाँ ।

गुरदास तीनों नहि उपजत, वनिधा, धान, कुँहाँ । १

स्वार्थ लोकोचित्यों में समाज की हृदयात् मायनाओं का चित्रण बड़ी कुशलता से किया जाता है । समाज के दैनन्दिन अनुभव का उचित कोष यदि आपकी कहीं देखने की मिल सकता है तो वह लोकोचित्यों में ।

कहावत व नीतियुक्त बातों में देशकाल के अनुसार एक प्रकार की विविन्नता पाई जाती है । प्रत्येक कहावत उदगम स्थान की विशिष्ट परम्पराओं एवं बौद्धिक मान्यताओं का परिचय दिया करती है । इन कहावतों में निश्चय ही जीवन के सत्यांश एक अनुभव के सारस्त्व को व्यंजित किया जाता है । अनुभव के आधार पर कहावतें सार्वका लिन एवं सार्वदेशिक हुआ करती है । परिस्थितियों के बदलने के समय कहावतें परम्परागत रूप में लड़ एवं लयार्थों को प्रतीक बन जाती है । उनमें हमारे पुरातन की वैचारिक राशि धानी के रूप में सर्वत्र सुरक्षित रहती है । लोकनीति,

धारणा, मान्यता, और विश्वास की निवृत्ति सबसे अधिक सुहावरे व लोकप्रियता में हो जाती है। अनुभव और ज्ञान को अक्षुण्ण धारा में तपे हुए ये काव्य स्रष्टा स्वसुव ही अपने गर्भ में ऐसा विबुध पर्वे बिपाये हुए हैं जिनको अमिथित प्राचीन संस्कृति की जानने के लिये अत्यावश्यक है।

सुर व नन्ददास की तुलना उपर्युक्त के आधार पर

सुरदास व नन्ददास दोनों हिन्दी साहित्य में बहुत ही उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। उपर्युक्त के आधार पर हम इन दोनों महान कवियों की भाषा के कुछ व्यक्तित्व लक्षणता प्रकाशित करने पर ध्यान देंगे तो हमारे सम्मुख वास्तविकता स्पष्ट प्रस्तुत हो जायेगी। वास्तव में सुरदास का कुसुमाव भाषा की स्वामाविकता पर अनिक था, तो नन्ददास ने उसे सुमधुर, सुसंस्कृत एवं अलंकृत रूप प्रदान किया। नन्ददास की भाषा निरुद्ध सशक्त है। उनकी कल्पना शक्ति के प्रयोग से गुरु विषय की मध्य एवं सरल बन गये हैं। भाषा की कोमल एवं प्रसाद गुण पूर्ण बनाने के लिये नन्ददास ने संस्कृत के अनेक शब्दों का ब्रजभाषा में प्रकृति की क्षमता लाकर प्रयुक्त किया है। शब्द चित्रों से नन्ददास के मधुर ब्रजभाषा को और भी मधुर बना दिया है। उनकर सुरदास की शब्दों के इस प्रकार के प्रयोग में कोई नही रहे है। सुर ने तो ऐसे शब्दों का सब सुलभ प्रयोग किया है और इन शब्दों को अपनी कलाकार शक्ति से अपने सारे में डालकर समझासुक्त बना लिया है। शब्द शक्ति के इस प्रयोग में वास्तव में सुरदास नन्ददास से कुछ श्रेष्ठ ही बैठते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि नन्ददास अपने मनस्त्व में सफल नही है। वैसे नन्ददास के पदों की भाषा में भी स्वीयता, भाषात्मकता, अलंकारिता तथा चित्रमत्ता के गुण विद्यमान हैं, परन्तु उनमें ये गुण उस मात्रा में नहीं हैं जितने सुर की भाषा में पाये जाते हैं।

सुर ने अपनी भाषा में विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग जिस मात्रा में किया है, उस अंश में नन्ददास ने अपनी भाषा में नहीं किया है। वैसे नन्ददास

की भाषा में भी विशेष शब्दों का प्रयोग हुआ है परन्तु गुरु ने उन्हें इस ओर ध्यान दिला दिया है। अष्टाश्रय के प्रत्येक कवि की पद रचना में एक दूसरे की छाप बदलकर यदि हम देखें तो इस सम्पूर्ण काव्य में छोटे से ही ऐसे पद निकलेंगे जिनकी हम भाषा की दृष्टि से किसी विशेष कवि की कृति होने का पता लगा सकें। ऐसे कुछ पदों का पता हम-से-4- का फारसी शब्दों के प्रयोग और शब्दावली की व्यं के आधार पर लगाया जा सकता है। नन्ददास की कुछ शब्द और वाक्य तण्ड बहुत प्रिय थे। उनका प्रयोग उन्होंने बहुत अपने समस्त ग्रन्थों तथा पदों में किया है। नन्ददास की कृति ऐसे कुछ शब्दों के सहारे अवश्य छांटो जा सकती है।

गुरु की भाषा बहुपिणी है। उनका मुख्य रूप ब्रजभाषा के होते हुए भी, उनमें फारसी व अरबी शब्दों का मेल अन्य अष्टाश्रय कवियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में है। उनके शब्दों में किसी भाषा में शिथिलता है तथा भाषात्मकता, प्रवाह और काव्यनिक विनमता की कमी है। परन्तु उनकी भाषामयूर व प्रांड दोनों रूपों में पदों में ही अधिक सुन्दर है। परन्तु एक बात हमें स्वीकार करनी ही होगी कि गुरु की भाषा में संस्कृत की तत्सम व तद्भव शब्दावली के अतिरिक्त लड़ा लोड, लवली, लुन्दलुण्डी और लुजावी के शब्दों की कमी नहीं है और साथ ही अवधी भाषा की सम्बन्ध कुछ विभक्तियों को देकर कमी कमी तो गुरु के पदों की वाक्यशुद्धि में भी संदेह होने लगता है।

नन्ददास की भाषा में पूर्ण रूप से एक रूपता नहीं पाई जाती है। भाषा की शिथिलता के वी भी शिफार है। अनेक शब्दों का भी विकृत रूप उनकी भाषा में दृष्ट्य है। वैसे भाषा का जितना शब्दकोष गुरुदास के पास है उतना नन्ददास आदि अष्टाश्रय के किसी भी कवि के पास नहीं है। नन्ददास के पदों में गुरु की ही भाषा शक्ति नहीं मिलती। नन्ददास का पदावली साहित्य उतना मार्मिक नहीं जितना गुरु का है। वास्तव में नन्द की अपेक्षा गुरु का कलाकार अधिक विस्तृत स्वाभाविक एवं भावोत्पादक है। एक बात हमें अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी कि

सुरदास ने जिस वद्वले से विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है उतना ही नन्ददास ने कम किया है । सुर ही नहीं अपने समकालीन सभी कवियों की अपेक्षा नन्ददास ने विदेशी शब्दों का ~~कम~~ कम प्रयोग किया है । यद्यपि इस्लामी संस्कृति और माफा के प्रचार से फारसी और अरबी के शब्द कुछ अधिक प्रयोग व प्रचलित हो रहे थे किन्तु नन्ददास के सम्पूर्ण काव्य में विद्वानों को ढूँढने पर भी वार शब्दों गरज, अदास, लायक और महल का प्रयोग ही मिल सका है । डा० दीनदयाल गुप्त ने प्रथम तीन को ^१ और डा० मन्मथ प्रसाद उग्रेंती ने अन्तिम तीन का उल्लेख किया है ।

मुहावरों व लोकोक्तिों को समयानुकूल प्रयोग करने में सुर व नन्द कक्षा से पीछे नहीं रहे हैं । दोनों ही इस तथ्य से मजबूती परिचित हैं कि लोक का अनन्त ज्ञान और अनुभव का अथाह सागर हमसे अमर जड़ नहीं सुर, प्रत्युत विकास का अपरिमित दिशाओं को सम्पर्क करते हैं । सुरदास जी ने सुरसागर में लोको-क्तियों व मुहावरों का सुब डट कर प्रयोग किया है और उन्होंने प्रयोग की सामक्षिता को पूर्ण ध्यान में रखा है । सुर व नन्ददास के मुहावरों व लोकोक्तियों के प्रयोग में समाज के व्यावहारिक ज्ञान व लोकाचार की विवृति हुई है । मुहावरों के अश्लिष्ट चित्र में समाज की अन्तर्चेतना का स्मरण किया जाता है । लोको-क्तियों की सामाजिक वातावरण में परिपोषित हुआ करता है । सुर ने जिस प्रकार लोकोक्तियों का प्रयोग किया है उससे समाज के शाश्वत सत्य को उद्भासित किया गया है । वास्तविकता तो यह है कि दोनों ही कवियों ने अपनी कल्पना शक्ति व काव्य प्रतिभा तथा मथित भावना से उसे सजीवता व काव्योपयोगिता प्रदान की है । मुहावरों व लोकोक्तियों के समयानुकूल प्रयोग से वे दोनों ही अपने अपने उद्देश्य में उफल रहे हैं । हों इस बात से हन्कार नहीं किया जा सकता कि सुरसागर

१- अष्टकाय और बल्हसम्प्रदाय पृष्ठ ८७८ (डॉ० दीनदयाल गुप्त)

नें सुर ने उस ओर जो सफलता प्राप्त की है नन्ददास तक नहीं पहुँच सके हैं। यद्यपि कही कही वे सुर की मात कर गये हैं परन्तु कुल मिलाकर सुर उस जायार पर नन्ददास की अपेक्षा श्रेष्ठता ही प्रमाणित होते हैं।

फिर भी एक बात स्पष्ट है नन्ददास का काव्य वास्तव में उस मनोरम चित्र के समान है जिसके अल्प कलेवर में समग्र जगत् का चित्रावली बड़ी सुसामता के साथ किया रहता है। उनकी दृष्टि काव्य के वास्तव सज्जा पर ही नहीं जमी, प्रत्युत उन्होंने काव्य के अन्तराल को पारसा है। और इस प्रेरक कविता के मर्म को पहिचाना है। नन्ददास के काव्य की भाषा प्रांज, सरस, प्रवाहपूर्ण, अतिमयी और श्रुति मधुर है। वह भावार्थ एवं प्रसाद गुणों से युक्त है और लालित्य, कोमलता, ध्वन्यात्मकता, कलावती, सुहावरी आदि से सुशोभित होकर कविता कामिनी के कलित कलेवर को सुशोभित करता हुई दृष्टिगत होती है। उसमें रूप, दूरय, भाव एवं नाद की अपूर्व सामता है। नन्ददास की स्वयं भाषा कोष के बनी थी। विपुल शब्द भंडार, लोको-चित्तियों व सुहावरी के समयानुकूल प्रयोग पर अविकार तथा साहित्य शास्त्र के पूर्ण पोषित थे। इसी लिये नन्ददासजी की भाषा के अनुसार चमक में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। उपयुक्त शब्दों को चुन चुन कर कलात्मक ढंग से काव्य में यथास्थान रखने में वे नितान्त महारथ हैं। उनकी वस्तु स्याजिनशीलता, भाव प्रवणता, विचारात्मकता, एवं उर्वरा कल्पना से युक्त मौलिक प्रवृत्ति को है जिसके कारण उनका काव्य बहुलांश में प्राचीन दिशा की प्रातःकालीन अमिन्न लुटा की तरह लावण्यमय होकर नूतन रूप में समुत्पन्न जाता है। नन्ददास की इस प्रकार की विशेषता धस्तुतः उनकी अन्तःप्रेरणा तथा प्रशस्त प्रतिभा का मनुष्य फल है।

उपर सुर का काव्य मा जहाँ तहाँ से एकत्र किये गये शब्द सुत्रों का वाग्जाल नहीं है, दैन्य की पुनीत अनुमति में कवत्कवि के अन्तःकरण से उमड़कर फूट निकलने वाला भावधारा है जिसे किसी एक संकीर्ण दिग्भाग से बावद्ध होकर प्रवाहित होने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता। अपितु जो अपनी व्यापकता

मैं वारों और अपना रास्ता बनाती हुई चलती हूँ । केवल किसी एक ही प्रकार के शब्दों के प्रयोग का आग्रह न कर सचमुच सुर ने अपनी भाषा को एक वैशेष्य अथवा पंगु होने से बचा लिया है । हमारे माध सम्राट कविवर सुरदास ने मनोदशा विशेष के चित्रण में भाषा को मात्र के अनुसार लाने में मान्य प्रयास किया है ।

लोक प्रचलित उपमाओं, सुहावनों व लोकोपितियों को आधार बनाकर व उनका आश्रय लेकर सुर ने अपनी भाषा को अभीष्ट भावों की उपाध व समयानुकूल अभिव्यक्ति हेतु बहुत ही उपयुक्त बना लिया है । मानव मन की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपनी अनुभूतियों को व्यक्त एवं पूर्ण रूपेण प्रदर्शित करने के लिये खड़े जाबुल रहता है । अभिव्यक्ति की अदम्यता के साथ साथ उसमें सौन्दर्य के प्रति आकर्षण भी स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता है जिसके कारण वह अपनी प्रत्येक वस्तु को सौन्दर्य समन्वित बनाना चाहता है अतएव वह अपने भावों को सुन्दरतम रूप में प्रकट करने को उत्सुक रहता है । मानव मन की वृत्तियाँ वही ही जटिल एवं अगम्य होती हैं । जिससे उनकी विविधता एक विविधता में एकरूपता का आवेक्षण बड़ा दुष्कर कार्य है । ये भाव हमारे मानसिक जीवन के अमैय अंग बनकर उसमें तिलों में तेल की भाँति व्याप्त रहते हैं तथा प्रत्येक प्रकार के ज्ञान के मुलकारण होते हैं । भाव प्रत्येक व्यक्तित्व अन्तः का एक वर्म है, उल्लिखित वर्णनातीत है और केवल अनुभवगम्य है ।

अतः यही कारण है कि अपनी गहन से गहन भावना की अभिव्यक्ति के माध्यम स्वरूप सुहावरी, लोकोपितियों व कहावतों प्रयोग करने में हमारे दोनों कलाकार जागे रहे हैं । तुलनात्मक रूप में यद्यपि दो महान कलाकारों को प्रत्येक बात की तुलना के लिये हम तराजू के पल्ले पर नही बिठा सकते परन्तु तथ्यों से परिचित होकर हमें यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सुरदास नन्ददास से ही नही, अष्टशाय के अन्य सभी कवियों से भी जागे हैं और सुहावरी व लोकोपितियों के प्रयोग करने में उन्होंने देश काल का पूर्ण ध्यान रखा है और नन्ददास की अपेक्षा भाषा पर सुर का अधिक प्रभाव होने के कारण सुर को नन्द की अपेक्षा अधिक समालता मिली है ।

अष्टम अध्याय

शूर और नन्द के काव्य का साम्प्रदायिक विवरण

नन्ददास जी किसे सम्प्रदाय में आस्था रखते थे तथा उनके गुरु कौन थे, इस विषय में किसी ग्रन्थ के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने पुस्तक पदों में उल्लेख उल्लेख किया है। बाह्य साधन अन्तः साध्य दोनों ही उनके सम्प्रदाय और साम्प्रदायिक गुरु का परिचय देते हैं। डॉ. सी. वाचन वैष्णव की वार्ता से विदित होता है कि नन्ददास जी पहिले रामानन्द सम्प्रदाय में विश्वास रखते थे परन्तु जब वह काशी से किसी को के साथ हारिका में स्थित श्री रणेश्वरी जी के दर्शन को चल दिये तथा मार्ग में एक सिद्धांत ग्राम जा पहुँचे, वहाँ किसी उपवती कात्राणी के रूप शिन्दर्भ पर रुक रुक कर उन्होंने के पीछे गोस्वामी विठ्ठल नाथ जी की शरण में जा पहुँचे। तब से उनका विचार परिवर्तन हुआ तथा वे गोस्वामी विठ्ठल दास के मत बन गये। ऐसा भी ज्ञात होता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने उन्हें बहुत समझाया, और कहा ब्रज में मति जाहि, पर नन्ददास जी ने उत्तर दिया कि जब विधि चुके तो जायको जायको कहा।^१

डॉ. सी. वाचन वैष्णव की वार्ता में लिखा है कि तुलसीदास जी ने नन्ददास जी से कहा हमारे को बल, ग्राम एवं तो क्यो-या में रहो, पुरी एवं तो काशी में रहो, पर्यंत एवं तो विष्णुट में रहो, वन एवं तो वण्डकारण्य में रहो।^२ पर नन्ददास जी ने इसके उत्तर से एक पद लिखकर तुलसीदास जी को भेजा :-

जो गिरि एवं तो बसो श्री गोविन्द,
ग्राम एवं तो वसी नन्द गाम, नगर एवं तो बसो श्री मधुरी
सोपा धाम, अति अभिराम, उरिता एवं तो बसो श्री यमुना तट,

१- मुक्तमाल की प्रियादास रचित मयितरस बर्हिना नामक टीका पर नन्ददास निवासी ज्वादास की टीका, पृष्ठ १४३ पंक्ति १ से १५

२- डॉ. सी. वाचन वैष्णव की वार्ता -- कांकरांजी विद्या विभाग से प्रकाशित प्रथम संस्करण की २०१४। पृष्ठ २७४

सकल मनोरथ पूरन काम नन्ददास कानन जब तो बंधी भूमि हृन्दावन वाम ।^१

उसके अतिरिक्त कवि के कुछ ऐसे भा पद मिलते हैं जिनमें राम कृष्ण दोनों का गुणगान किया गया है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये पद उनके ब्रजागमन के पूर्व के होंगे जबकि बल्लभ सम्प्रदाय में उनका प्रवेश हो गया होगा । अतः तक उन पर कृष्ण रंग चढ़ा नहीं होगा ।

सारांश भाष्यों में इस कथन का पुष्टि होती है कि कवि बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे । कृष्णदास द्वारा लिखित नन्ददास वैशाखी की दो पदितियाँ इस प्रकार हैं :-

रामवरित मानस रच्यो पहिल तुलसीदास,
बल्लभकुलबल्लभ मये तासु अनुज नन्ददास ।
धीर बल्लभ आचार जिन रच्यो मागवत रास ।

अष्टश्लोकानुत में प्राणेश कवि लिखते हैं :-

जाये सुकर लेत लाजि,
ब्रज बलि सेवत रयाम ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि नन्ददास कृष्ण भक्त थे और बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे । इन सब प्रमाणों के अतिरिक्त कवि ने स्वयं कहा है कि :-

मजो श्री बल्लभ सुत के वरण ।
नन्दकुमार मजन सुखदायक पतितन पावे करन ।

-- -- --

नन्ददास प्रभु प्रकट रूप धरि
श्री मिठठ गिरवरन ।^२

१- जो ली वाचन वैष्णवों की वार्ता - काफिरांजी विद्या विभाग से प्रकाशित प्रथम संस्करण सन् १९४० पृष्ठ २७२

२- नन्ददास प्रभावली ब्रजरत्नदास, पद २५४ २८१

श्री बल्लभ भुत के वरन मर्ग ।

अति सुकुमार मजन सुतदायक

पतितन पावन करन मर्ग ।^१

उसी प्रकार :

प्रातः समे श्री बल्लभ भुत के

बदन कमल को दरसन दीजे

तान लोक वंदित पुष्पात्म

नन्ददास श्री बल्लभ भुत से

तनमन बन न न्यायान कोजे ।^२

इन सभी पदों के कवि ने अपने सामप्रदायिक गुरु कीयन्दना बदन अनेक प्रकार से की है । श्री बल्लभ भुत तथा पद्मावती लक्ष्मणी नाथ श्री गौस्वामी चिठ्ठल नाथ ही उनके सामप्रदायिक गुरु थे । बल्लभ सम्प्रदाय ही उनका सम्प्रदाय तथा पुष्टि मरजाद मजन सुत दीपा का पुष्टि मरजाद ही उनका मार्ग था । इस प्रकार स्पष्ट है कि नन्ददास बल्लभ सम्प्रदायी गौस्वामी चिठ्ठलनाथ जी के शिष्य पुष्टि मार्गीय कृष्णामृत कवि थे ।

अतः पुष्टिमार्गी के अनुयायी मृत कवि नन्ददास के काव्य में शुद्धादित दर्शन और पुष्टिमार्गी के सिद्धान्त होने स्वाभाविक ही है । उनके काव्य को समझने के लिये हमें उनके सामप्रदायिक विचारों और सिद्धान्तों को समझना बहुत ही आवश्यक हो जाता है । बल्लभ सम्प्रदाय की जिस विचार वारा और जिन सिद्धान्तों का उल्लेख आज आमतौर पर किया जाता है उनकी स्पष्ट व्याख्यायित हमें नन्ददास की रचनाओं में दृष्टिगत होती है । पुष्टिमार्गीय का कवियों में नन्ददास के पश्चात् नन्ददास के काव्य में ही बल्लभ सम्प्रदाय की विशिष्ट पार्मिक भावना का विस्तृत विवेचन मिलता है । मासुर्य शक्ति तथा राखीला का तो जितना विस्तृत विवेचन, विशद व विस्तृत रूप से निरूपण नन्ददास जी ने किया है,

१- नन्ददास ग्रन्थाली ज्ञानरत्नदास पद ६ पृष्ठ २८१

२- नन्ददास श्री उमाशंकर कुमल, पदावली पंक्तियों २८०-२८१ पृष्ठ ३४३

उत्ता अष्टादश के किसी, काय ने नहीं किया । सिद्धान्त पंचाध्यायी, रूपमंजरी, रावपंचाध्यायी, प्रमरणीत आदि रचनाओं में ब्रह्म श्रीकृष्ण, जीव, संसार, पुष्टि प्रकृत, रासलीला, सगुण निर्गुण आदि एकी के सम्बन्धित उनके पुष्टि मार्गीय दृष्टिकोण का अध्ययन किया जा सकता है । ब्रह्म

ब्रह्म श्री कृष्ण

सुरदास जीर नन्ददास ने ब्रह्म सम्पन्धी अपने विचारों का सुझावत दर्शन के अनुसार ही व्यक्त किया है । नन्ददास ने ब्रह्म को अद्वैता को पूर्ण रूप से स्वीकार किया है । वही ब्रह्म सब ठीक है, उसके सिवा अन्य कोई तत्त्व नहीं । वही नाम रूप गुण भेद से सब तरफ से प्रकट हुआ है ।

नाम रूप गुण भेद जे, सोई प्रकट सब ठीक ।

ता चिन तत्त्व जु जान कहु कहैं सो अति बड बोरे ॥ (नाममाला)

वह अज है -- अज एकै जगदीश अनन्त होता हुआ भी एक है । हरि अनन्त बड़ एक । उस पर ब्रह्म के कृष्ण रूप संसार में अपनी लीला के हेतु प्रकट होते हैं । सत् चित् व आनन्द दोनों तत्त्वों के सम्मिश्रण से उन्हें सच्चिदानन्द कहा जाता है । इन्हीं के आनन्द तत्त्व के तिरौभाव व सत् चित् के आविर्भाव से जीव की सृष्टि होती है और आनन्द और चित् के तिरौभाव व सत् के आविर्भाव से जगत् प्रकट होता है । इस ब्रह्म में विबुद्ध धर्मावधि भी है और उषा से सभी धर्मों गुणों से रहित होते हुए भी धर्मों हैं, अर्क होते हुए भी कर्तृ हैं । वही ब्रह्म सब जगत् का कारण और कर्ता है । वह जगत् का निमित्त कारण और उपादान कारण दोनों हैं । उसी की उपाति का प्रकाश भी जगत् में पाया जाता है ।

जो प्रभु जोति जगत् मय,

कारन करन अवैध,

विवन हरन सब सुम करन,

न्याये न्याये ता देव ॥ (ननेकार्य मंजरी)

जगत् का यही कर्ता ब्रह्म गोकुल में कृष्ण रूप में प्रकट हुआ है । नन्ददास ने

कृष्ण के परब्रह्म होने का भाव कई स्थानों पर व्यक्त किया है ।

तन्ममा मि पद परम गुरु, कृष्ण क्षणं दलं नमः

जगत्कारन करुणायतन, गोकुल जाको रैन ॥

(नाममाला)

इस कृष्ण के रूप, गुण, कर्म अपार हैं । वे परम उदार हैं । जगम, निगम, पुराण इतिहास तथा सारा ज्ञान विज्ञान उनकी निःश्वास है । उनके षट्गुण हैं, वही नारायण हैं । वही अवतार धारण करते हैं, वही स्वकी आश्रय हैं । उनकी लीलाओं कई भाग हैं -- शिशु, सुभार, पाँच, आदि किन्तु सभी रूप होते हुए भी वे नित्य किशोर वित्तरी एक रस हैं :-

जदपि नित्य किशोर

हरि बचत ब्रह्म इमि ब्रैन ।

सर्व वयस ब्रज दैन,

सुख प्रकटे पंकज नैन ॥

(दशमस्कन्ध)

दशमस्कन्ध भाषा में नन्ददास ने हरिहर विषयक विचार कृष्ण की अनेक स्तुतियों में प्रकट किये हैं । परब्रह्म श्रीकृष्ण के विश्वरूप, ज्योति रूप, रस रूप, जीव रूप, जगत् रूप आदि की अनेकता में जिस स्वरूप का नन्ददास ने प्रतिपादन किया है वह न तो शक्ति के कैवल्यहेतु से सम्भव रहती है और न रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत से । रामानुज के मतानुसार जीव नित्य और अनेक हैं और वे ब्रह्म के नित्य वश हैं । उस प्रकार हरिहर, प्रकृति और जीव से विशिष्ट हैं । नन्ददास आदि अष्ट कवियों ने कही भी हरिहर की इस प्रकार विशिष्ट अद्वैतता का उल्लेख नहीं किया है ।^१

नन्ददास ने ब्रह्म के अन्य अवतारों के प्रति भी अपनी भावस्था प्रकट की है । कृष्ण की शक्ति राजा की भाँति उन्होंने उपासना की है । राधा सम्बन्धी ये

१- अष्टाध्याय वार बल्लभ सम्प्रदाय - डा० दीनदयाल गुप्त पृष्ठ ४१६ ।

विचार उनमें सितहरिकेश के राधास्वामी सम्प्रदाय और हरिदास के बट्टी सम्प्रदाय आदि के प्रभाव स्वरूप प्रतीत होते हैं किन्तु परब्रह्म सम्बन्धी उनका दृष्टिकोण कृष्ण के अवतारों पर है ही ।

जीवः

नन्ददास ने ईश्वर व जीव की अद्वैता की स्वीकार किया है । वह ब्रह्म ही सब भूतनि की विस्तार है, वही जीव है । दशमस्कन्ध भाषा में वे बल्लभमत के अनुसार हैं ब्रह्म ही जीव की उत्पत्ति अग्नि से स्फुरित होने के समान बताते हैं --

तुम परमेश्वर सब के नाथ,
विरह समस्त निहारें हाथ,
किन्क में करी, मारी, संहरा
अन्नामि लों फिर विस्तारों ॥
तुमहें हम सब उपजत रहें,
अग्निनि तैं विस्फुरीं गन जेहें ।

इन पदित्थों से बल्लभ के अधिकृत परिणापवाद का भा उल्लेख हुआ है । वह ब्रह्म मण्डो की मोति ही अपने से अपना विस्तार करता है ।

जीव रूप में ब्रह्म के आनन्द तत्त्व का बिल्कें तिरमिन्न रहता है । ऐश्वर्यादि गुणों के अभाव में जीव संसार को मोह माया, ममता तथा देश पि के बंधों में पकड़ा जाता है । ईश्वर का कर्म और माया आदि के बन्धन से अलग है परन्तु माया उसके अधीन है । किन्तु इसके विपरीत जीव का कर्म और माया के बंध में है । पर विधि निषेध और पाप पुण्य में बन्ना है ।

संसार में वह जीव जब ईश्वर के अनुग्रह से गुणामय धरार के बंधों को छोड़कर ईश्वर का नैकट्य प्राप्त कर लेता है, उसका ममता कम जाता है तो वह अपने सत्य आनन्द रूप को प्राप्त करके आनन्द लाभ करता है । जैसे सच्चिदानन्द अपी आनन्दो मगवान है, वैसे ही उनके ममता ही जाते हैं --

अन सच्चिदानन्द नन्दनन्दन ईश्वर जग
तेसेही तिनके मगल जगत में मये मरे रह ।।

(सिद्धान्त पंचाध्यायी)

चिन गौपिकावाँ ने शरीर बने को छोड़कर कृष्ण का अनुसरण किया, ये तो
कृष्ण के ही शुद्ध जाँति मय रूप हो गई, किन्तु जो घर बाँरे, पति पुत्र तथा
गुणमय शरीर के मोह में फँसी रही, ये बद्ध जीव बनी पाप पुण्य, प्रारब्ध आदि
के चक्कर में फँसी रही :

शुद्ध जाँतिमय रूप
पाप मौलिक तै न्यारी ।
किन्तु कहा कोउ गई,
जाँति ही जा उजारी ।
ये रुकि गई घर बलि बंधार,
गुणमय शरीर बस ।
कुन पाप प्रारब्ध कबो,
तन नाहि पचो रह ।

(रास पंचाध्यायी)

जगतः

बल्लभाचार्य के अनुसार ही नन्ददास ने जगत को मिथ्या न बताकर, सत्य
कहा है । बल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार ही नन्ददास ब्रह्म को जगत का निमित्त कारण
और उपादान कारण मानते हैं । अतः उनकी यही साम्प्रदायिक भावना उनके
काव्य में स्थान स्थान पर परिलक्षित होती है यथा --

जो प्रभु जाँति जगतमय कारन करन अपैव,
दिवन हरन सब सुप करन, नमो नमो ता कै ।

(जनैकार्ये मूजरी)

एक ही तत्त्व किस प्रकार अनैकानैक रूप में परिणत होता है । इस बात को
नन्ददास ने अपने काव्यमें बल्लभ के अविकृत परिणामवाद से समझाया है । जिस

प्रकार सन्ने से बने आसुषण नाना प्रकार के रूप व आकार ग्रहण करते हुए भी स्वर्ण ही है उसी प्रकार जगत का नाना रूप आकार सब परब्रह्म से ही प्रसृत है और उसी के अविवृत परिणाम है ।

इसके धस्तु अनेक हूँ जगदगत का वाम ।

विमि स्वेन से किंकिनी कृष्ण कुन्दल नाम ॥

(अनेकार्थ मञ्जरी)

जगत की उत्पत्ति के विषय में ऋददास ने सिद्धान्त पञ्चाध्यायी में बल्हम के अनुसार २८ तत्त्वों से सृष्टि रचना का वर्णन किया है । ये तत्त्व हैं पंचमहाभूत, पंचणनेन्द्रियाँ, पंचमैयन्द्रियाँ, पंचतन्मात्राएँ, अक्षर, महत्त्व (बुद्धि) तीन गुण (सत्, रज, तम), मन और इनके अतिरिक्त पुरुष और प्रकृति --

रूप गंध, रस स्पर्श, (स्पर्श) जेष्ठ विषय वर

महोद्भूत पुनि पंच पवन पानी ज्वर वर ।

रास पञ्चाध्यायी में ऋददास कहते हैं कि इस संसार में अक्षर चारों ओर छाया हुआ था और सब लोग अज्ञान व अविद्या के तिमिर में फँसे कराह रहे थे उसी की ऐसी दशा को देख कर मागवत स्वी विलासिनी को प्रकट किया गया --

पसरि मूर्याँ ज्योतिरार

सकल संसार प्रमद्वि बुरि ।

तिमिर गृक्षि सब लोकें जोके,

उसि दुखित दया कर ।

प्रकट कियाँ जद्गुत प्रभाव मागवत विचार ॥४४॥

दशमस्कन्ध भाषा में यमालार्जुन के प्रति नारद की उक्ति में ऋददास ने संसार सम्बन्धी विचारों को प्रकट किया है । नारद के अनुसार वाचार्थिक ऐश्वर्य, बुद्धि को प्रम में डालने वाले और धर्म विनाशक हैं । इस ओर मद है पूर्ण संसार को छोड़कर ही मनुष्य वाच पा सकता है ।

माया:

बल्लभ मत में माया के दो रूपों की कल्पना की गई है। एक माया मगधान की जाति शक्ति स्वरूप माया है जो सृष्टि का पाठन, कृपण व संहार करती है और दूसरी माया अविद्या है। जो मनुष्य में मोहमाया, ममता का स्वरूप कर उसे फँसाये रखती है। इसी दूसरी माया अथवा सुविद्या से आच्छादित होने पर जीव अपने वैश्वरूप गुणों व स्वस्वों को भूल जाता है। सिद्धान्त पंचाध्यायी में नन्ददास जी ने जाति शक्ति माया का इस प्रकार वर्णन दिया है। स्वतन्त्रों से बना हुई सृष्टि माया को ही परिणाम है --

रूप, गंध, रस, स्पर्श (स्पर्श)

ये पंच विषय वर ।

महामुक्ति पुनि पंच पवन,

पानी अम्बर वर । ३ ।

तो माया जिन्को अवीन

निल रहत मुनि वर ।

विश्व प्रभव प्रतिपाल

कारण आयुष वर । ४ ।

इस प्रकार यह माया मगधान के ही अवीन है और उसी की इच्छानुसार जगत का पाठन, कृपण, व संहार करती है। कृष्ण स्वयं (रासपंचाध्यायी) ने गर्भियों से कहते हैं कि मेरी शक्ति माया ने विश्व को वश में कर रखा है किन्तु तुम्हारी प्रेम्णयी माया ने मुझे वश में कर लिया है --

सकल विश्व अपवस करि

मैं माया लोहति है ।

मोह मैं तुम्हारी माया,

जो मैं मोहि मोहति है । १८ ।

प्रमरणीत में भी नन्ददास ने देखा है सगुणत्व की प्रतिष्ठा में आदि शक्ति माया व अविद्या जन्य माया में अन्तर स्पष्ट किया है । गोपिकारं उद्धव से कहती है कि ईश्वर सगुण ही है और उसके गुणों का परधर ही उसकी माया (प्रकृति) के दर्पण से प्रकट हो रहा है ।

ईश्वरीय गुणों से साधारण प्राकृतिक गुण अविद्या के वर्णों से ही भिन्न स्थित हैं । यदि अविद्या माया का मल अलग कर दिया जाय तथा प्रकृति माया का माय्यम रूप दर्पण हटा दिया जाय तो शुद्ध ब्रह्म ही अपने शुद्ध गुणों से प्रादोषासित होगा ।

या गुण की परधर ही
माया दर्पण कीच ।
गुण ते गुण न्यारै म्ये
अमल बारि मिलि कीच ।

जिस माया के दर्पण का नन्ददास ने यहाँ उल्लेख किया है वह शंकर की मिथ्या माया का मिथ्या दर्पण नहीं है, वह दर्पण ब्रह्म की सत स्वरूपा प्रकृति की माया का दर्पण है । इससे जो विजातीय विकार है, वह अविद्या रूपी माया की कवि है जो अन्यथा प्रतीति कराती है । शंकर मत में सृष्टि ब्रह्म का परिणय नहीं है ।

मोक्ष :

बल्लभ सम्प्रदायी कृष्ण मन्त्र अमैव मुक्ति के स्थान पर भेद मुक्ति की कामना करते हैं । जिसमें ब्रह्म का सामिप्य, सात्त्व्य और सात्त्विक्य प्राप्त होता है । नन्ददास ने भी वही ब्रह्मानन्द प्राप्ति की वर्णन किया है । वे स्पष्ट कहते हैं कि कृष्ण के सामिप्य का आनन्द करोड़ों स्वर्गों के सुख से भी अधिक है । मानवान के पद पंक्त के सामिप्य मात्र से सृष्टि मन्त्र मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं ।

बल्लभ अपने मन्त्रन से हेतु,
हृदय मुक्ति हृदय करि देत, ।
तुम पद पंक्त नौका करिके,
पार परे मन्त्रागर तरि कै ।

(भाषा दशमस्कन्ध)

इस प्रकार जीवन सुख हो जाता है तपस्वियों में भी नन्ददास ने नित्य रास को आनन्द की स्वर्गादि को सब सुखों से उत्तम माना है। पुष्टि पत्रित में मान्य सर्वोत्तम मोक्षावस्था मगवान के लीला आनन्द में पाग लेना ही मानी गई है। रास वर्णन में नन्ददास जी ने शालोचय, साध्व्य, सामीप्य व साकृज्य इन चारों प्रकार की उचितियों का वर्णन किया है। राम कृष्ण का आनन्द साधारण आनन्द नहीं होता।

यह अद्भुत २६ रासि कहत कहु नाहि बाधै

(रासपंचाध्यायी)

उस आनन्दवात्मक मोक्षा की वैगण भी स्पृहा करते हैं।

कृष्ण लीला:

अष्टाश्रय के सभी कवियों ने कृष्ण की लीलाओं को महत्व दिया है। उनके अनुसार आनन्दमय ब्रह्म लीला के लिये ही अवतार धारण करता है। उन लीलाओं में वही पाग लेने का अधिकारी है जो मगवान का अनुग्रह प्राप्त करके उसके प्रति आत्मसमर्पण की भावना रखता है। गोपियों इस दृष्टि से भगवद् आनन्द की सबसे बड़ी अधिकारिणी हैं। क्योंकि उन्होंने लोके लाज वादि को बाँझकर कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त करके उसके प्रति पूर्णतया आत्मसमर्पण किया है। नन्ददास ने रासपंचाध्यायी, मधुरगीत, सिद्धान्त पंचाध्यायी, आदि ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर इसी भावना का प्रतिपादन किया है।

अन्य पुष्टि मार्गीय कवियों की तरह नन्ददास ने भी गोकुल वृन्दावन आदि को मगवान का नित्य धाम बताया है। इसी महत्ता का वर्णन करते वे नहीं बघाते। नन्ददास ने ब्रज और वृन्दावन का वर्णन बरलम सम्प्रदाय में मान्य २६ रूप पुरुषार्थम श्रीकृष्ण के लीला धाम के रूप में किया है।

नन्ददास ने सुरली को योगमाया और रुद्र ब्रह्म के रूप में वर्णित किया है। यह ब्रह्म का आवाहन है। वैदिक साहित्य में ही हमें रुद्र ब्रह्म की महत्ता मिलती है।

वल्हमाचार्य ने एक वृत्ति उद्धृत की है :

यदा तल्लु पुरुषः श्रिय मश्नुते दीप्ता अस्मैवाचते ॥^१

नन्ददास ने एक स्थान पर सुरली को योगमाया की कहा है । वल्हमाचार्य ने इसको छिपे पाठपादित शब्द का भी प्रयोग किया है । क्योंकि योगमाया भगवान की शक्ति है । इस प्रकार नन्ददास के काव्य में सभी विधि विधान और सिद्धान्त पाये जाते हैं । साथ ही यह है कि पुष्टि मार्ग का जितना स्पष्ट विवेचन नन्ददास जी ने किया है उतना किसी का पुष्टिमार्गीय कवि ने नहीं किया । पुष्टिमार्ग का स्पष्ट रूप में निरूपण नन्ददास जी की रचनाओं में हुआ है । अष्टशाय वास्तव में वल्हम सम्प्रदाय का ही साहित्यिक रूप है । वल्हमाचार्य के पश्चात् गाँगाई चिटठल दास ने वल्हम सम्प्रदाय को पूर्ण व्यवस्थित व स्थापित करने का प्रयत्न किया था । उन्होंने चार अपने पिता वल्हमाचार्य के शिष्यों तथा चार अपने प्रिय मित्रों को भी सम्प्रदाय को प्रभु जी का गान की दृष्टि से सर्वप्रथम वे, अष्टशाय में सम्मिलित किया और उन पर अपनी कृपा की छाप लगाई । उन्होंने अपने चार प्रिय शिष्यों में नन्ददास जी को भी लिया था । नन्ददास सम्भवतः अष्ट कवियों में सबसे बाद में जीवित हुए थे । ऐसा विश्वास किया जाता है । पुष्टि सम्प्रदाय का साहित्यिक व काव्य की दृष्टि से साम्प्रदायिक महत्त्व भी बहुत अधिक माना जाता है । भारत के धार्मिक इतिहास में वैष्णवी भावना का उल्लास प्रचार गुप्त काल में भी नहीं हुआ था जितना इन अष्ट कवियों के सहयोग से १६वीं व १७वीं शताब्दी में हुआ था ।

अष्टशाय के सभी सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक तथा साम्प्रदायिक पक्षों का स्पष्टीकरण नन्ददास ने अष्टशाय के सभी कवियों से अधिक पूर्णता के साथ किया है । पुष्टिमार्गीय मन्त्र का जितना स्पष्ट वर्णन उन्होंने किया है उतना

स्पष्ट वर्णन हमें सुरदास के काव्य में भी नहीं मिलता । वास्तव में नन्ददास एक उच्च कौटि के रसिक, फलतः और महात्मा थे । उनके काव्य का महत्व कदाचित् है ।

नन्ददास जी की ही भाँति सुरदास भी अष्टाश्रय के प्रसूत कवि हैं । हरिदास जी के माधप्रकाश के अनुसार केवल छः वर्ष की आयु में ही विरक्त होकर सुरदास अपना ग्राम छोड़कर चार कौस के अन्तर पर एक तालाब के तट पर पीपल के वृक्ष के नीचे रहने लगे थे । १८ वर्ष की आयु तक वे उस स्थान पर रहे और उसके पश्चात् प्युरा, बागरा के बीच गाँ बाट पर रहने लगे । चौंदाश वैष्णवों की वार्ता के अनुसार बल्लमाचार्य जी दक्षिण देश और काशी में मायावाद का सन्धन और मन्त्रि मार्ग की वहेल से प्रज को बाधे और उही समय मार्ग पर गाँ बाट पर ठहरे थे ।^१ बल्लम दिग्विजय से उही कथन की पुष्टि होता है । श्री नाथ जी की प्रागल्भ्य वार्ता के आधार पर सुर का शरणागति काल ई० १५७७ माना प्रतीत होता है । परन्तु यदि सुर वास्तव में ई० १५७७ में ही बल्लम सम्प्रदाय में सम्मिलित होते तो उनके द्वारा ई० १५७२ में गोस्वामी विठ्ठलदास जी के प्राकट्य अवसर पर गाया हुआ कवार्त्त का पद किस प्रकार उल्लभ्य होता है ? अतः अन्तः एवं बाह्य साक्ष्य के आधार पर सुर का शरणागति काल ई० १५७६ विक्रमा निश्चित होता है । आचार्य हुजूर ने आचार्य बल्लम का शिष्य होना ई० १५८० के लगभग माना है ।^२ वास्तव में सुरदास लगभग ३२ वर्ष की आयु में सम्प्रदाय में दीक्षित हुए तथा अन्तकाळ तक सम्प्रदाय की सेवा करते रहे । उनके जीवन की घटनाओं का उत्तम वाता वाहित्व में विशेषकर हरिराम जी के माध प्रकाश में हुआ है । सुर और तुलसी की भेट का उत्तम भी कतिपय ग्रन्थों में हुआ है । मूल गुप्तार्थ चरित के अनुसार ई० १६१६ में श्री गोशुल्काय जी की प्रेरणा से सुरदास जी तुलसीदास जी से चिक्कट में मिले । इसके विरुद्ध प्राचीन वार्ता रत्न में यह कथन है कि तुलसीदास जी जब

१- अष्टाश्रय, कांकरांजी, पृष्ठ ११-१५

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास, संस्करण २००६, पृ० १६२

अपने मांरुं मन्ददास जी से मिलने ब्रज में जायें, उस समय पारसोली ग्राम में उनकी श्रद्धास जी से मेट हुई ।^१ उसे वालासाहित्य का कथन ही समाधीन प्रतीत होता है जिसका समर्थन हर निर्णय के लेखकों द्वारा समित प्रयत्न किया है ।

पुष्टि सम्प्रदायः

श्री बल्लभाचार्य जी ने जिस मत का प्रचार किया वह पुष्टि सम्प्रदाय कहलाता है । बल्लभाचार्य जी तेलंग ब्राह्मण थे और उन्होंने काशी में रहकर वेद, वेदान्त और दर्शन का अध्ययन किया था । उन्होंने दस वर्ष की आयु में ही शास्त्रों में निपुणता प्राप्त कर ली थी और काशी में प्रसिद्ध हो गये थे । अपने पिता के गौरीकुमार के पश्चात् उन्होंने समस्त भारतवर्ष की कई बार यात्राएँ की और उन यात्राओं में उन्होंने मायावाद का खण्डन और ब्रह्मवाद तथा सत्त्ववाद का प्रचार किया था । सिद्धान्त रूप में बल्लभाचार्य ने जिस मत का प्रचार किया उसे हठाद्वैत, ब्रह्मवाद या अविकृत परिणामवाद कहते हैं, ध्यान की दृष्टि से वह पुष्टिमार्ग कहलाता है ।

बल्लभाचार्य ने अपने पुष्टि सम्प्रदाय की स्थापना मर्यादा सांख्यिक सम्प्रदायों से भिन्न रूप में की और उन्होंने अपने सम्प्रदाय के नामकरण की प्रेरणा श्रीमद्-भागवत से प्राप्त की । भगवान के अनुसार वे ही मन्त्र के हृदय में सचित का उदय होता है, उसलिये मन्त्र अपना सब कुछ भगवान को ही समर्पण कर देता है, जिससे भगवान के प्रति अनन्यता हो उठे, वही पुष्टि मार्ग कहलाता है । पुष्टि सम्प्रदाय का विशेष उन्नति गौरीमायी विठ्ठलदास जी के समय में हुई और उन्होंने इस सम्प्रदाय की सांगोपांग व्यवस्था की । पुष्टिमार्गिक सेवा भाव को विस्तार से क्रियात्मक रूप देने का कार्य गौरीमायी विठ्ठलदास जी ने किया ।

१- श्रुत गुणार्थ चरित पृष्ठ २६-२७

२- प्राचीन वार्ता रहस्य, वि० भाग, पृष्ठ २४४

सुरदास और पुष्टि मार्ग :

पुष्टि मार्ग के दो पक्ष हैं सिद्धान्त पक्ष और सेवा पक्ष । सिद्धान्त पक्ष भेद, जीव, जगत, संसार, मोक्ष आदि का विवेचन होता है । बरहम सम्प्रदाय में उसे ह्युदात्त सिद्धान्त कहा गया है । सेवा पक्ष में तीन स्वरूप माने गये हैं— गुरुसेवा, सन्तसेवा और प्रभुसेवा । गुरुसेवा व सन्तसेवा से सम्बद्ध पद सुरसागर में बहुत हैं । गुरु की आवश्यकता सुरदास ने अनिवार्य बताई है और गुरु का स्थान अधिकतम में अत्यन्त उच्च माना जाता है । गुरुमयित मगधमयित का प्रधान उदाहरण है । सुर कहते हैं :-

नर तैं जनम पाइ कह कीर्ति

-- -- --

औ मद्भागवत सुनि नहिं सुमननि

गुरु गौविन्द नहिं चीना ।^१

जनन तौ मारिऔ गयो सिराई ।

हरि सुमन नहि गुरु की सेवा मनुजन बस्याँ न जाई ।^२

बृहद्गुरु का उपदेश ही हृदय में धारण करना चाहिए क्योंकि वही सकल प्रेम का नाशक होता है ।

एतगुरु को उपदेश हृदय धरि,

जिन प्रेम सकल निवार्यो,

हरि क्य मिल्य कोहि सुरज सर,

ऊँचै टैरि पुकार्यो ।^३

रास प्रयोग में भी कवि ने गुरु के महत्त्व को स्वीकार किया है और जब कलूर को वृष्ण ने अपने वलौकिक रूप में दर्शन कराये हैं, उस समय भी कवि ने गुरु का कण स्वीकार किया है । इस प्रकार सुर ने गुरु सेवा और सन्त सेवा का,

१- सुरसागर (समा) पद ६५
२- वही पद ११५
३- वही पद ३३६

जो पुष्टिमार्गीय सेवा के मरुत्वपूर्ण अंग है, विवर्धन किया है। जहाँ तक प्रभु सेवा का सम्बन्ध है, उसके दोनों ही रूप अर्थात् नाम स्मरण और रूप सेवा सूर में मिल जाते हैं। रूप सेवा के भी त्रियात्मक और भावात्मक दोनों रूप सुरागार में पाये जाते हैं। बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने अनन्तर सुरदास की निरन्तर रूप से गोविन्द पर श्री नाथ जी के मन्दिर में कीर्तन करते रहे। इस कारण पुष्टि मार्गीय सेवा का जितना विकसित रूप हमें सूर में मिलता है। उतना अन्यत्र दुर्लभ है। पुष्टिमार्गीय सेवा के तीन अंग हैं। मोगे, राग और शृंगार। बल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत के आचार पर ही उन अंगों की मरुजा प्रदान की। और इन अंगों से अध्यात्म जीवन के सब क्रिया कलापों को भावान को समर्पित कराया है, जिससे वे मगध मन्त हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत में लिखा है —

कामं श्रौवं स्नेहमेव च शौचयनेन च ।

नित्यं हरौ विद्यतां यान्ति तन्मयतां हिते ।^१

अर्थात् काम, श्रौव, मय, स्नेह ऐव्य, शौचाद, इनमें से कोई भी पाथ यदि हरि के साथ लाया जाय तो वह लौकिक रूप छोड़कर ईश्वरमय हो जाता है। सूर ने मोगे की विविध कामगिरियों की एक सूची दी गई है।

गोस्वामी विठ्ठलदास जी ने भावान के आठ शृंगारों की कल्पना की है, परन्तु वे आठों शृंगार भावान के मस्तक के हैं। कण्ठ, हस्त, वरण, कटि और मुखादि अंगों की भी कल्पना की गई। शृंगारों के अतिरिक्त सम्प्रदाय में मस्त्री का भी वर्णन है। पुष्टिमार्गी की त्रियात्मक सेवा में सदाचार का भी मरुत्व है। सूर के पदों में स्थान स्थान पर सत्संगति और सदाचार का वर्णन मिलता है।

जहाँ कवि ने गुरु सेवा और सत्संगति की महिमा का वर्णन किया है, वही सदाचार का महत्व भी बताया है। श्रुताचरण के बिना हरि की भक्ति सम्भव नहीं। भक्त का व्यापक उद्देश्य भक्ति की ही साध्य मानना है, साधनों का साध्य नहीं। परन्तु दशमस्कन्ध में कवि का भक्ति विषयक दृष्टिकोण कुछ परिवर्तित हो दिखाई देता है। और इसलिये सदाचार आदि का जितना विवेचन गुरु ने विनय के पदों में या पहिले स्कन्धों में किया है, उतना दशमस्कन्ध में नहीं फिर भी पुष्टिमार्गीय परम्परा के अनुसार उन्होंने सदाचार तत्व को अपनाया है। मनः कामना को जीते बिना गुरदास जी योग, यज्ञ, व्रत आदि को व्यर्थ मानते हैं। और स्नान, तीर्थ, मन्त्र और प्राणायाम को निरर्थक। अष्टांग योग आदि का लण्डन भी गुरदास जी ने सदाचार के आधार पर ही किया है।^१ वे कहते हैं, मनुष्य के लिये कटुवचन, कुलग, पाषाण वनसविद्य, गुरु, ब्राह्मण, व्रत, सुजन का भी न करना, पात्रदुमजन न करना और पर-पोढ़न करना कुटुम्ब सहित छूटने के कारण है।^२

पुष्टिमार्गीय भक्ति में श्री बल्लभाचार्य जी व छिठलाय जी ने जोति पीति का कोई ध्यान नहीं रखा था। गुरदास जी ने भी अनेक पदों में ऐसे भाव प्रकट किये हैं कि भगवान की भक्ति का द्वार सबके लिये उन्मुख है। यहाँ स्त्री पुरुष, छोटे बड़े और जोति पीति का कोई ध्यान नहीं। गुरदास जी के पदों में दोन्ना भी स्थान स्थान पर प्रदर्शित की गई है। पुष्टिमार्ग में हरि की कृपुष्ट करने का एक मात्र उपाय दोन्ना है। उनके पदों में द्वैत भाव का निर्मल प्रीति बलाने वाले अनेक पद हैं।

पुष्टिमार्ग में जो तीन अवस्थाएँ मानी गई हैं उनका वर्णन भी गुरदास के पदों में मिलता है। वे तीन अवस्थाएँ हैं स्वप्नासक्ति, लीलासक्ति और भावासक्ति। गुरदास जी के काव्य में इन सभी का वर्णन मिलता है। वास्तव

१- गुरसागर (समा) पद ३३८

२- वही पद ४२५०

में सुरदास जी का प्रायः समस्त रचनाएँ पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों के बल्लूक हैं । ऐसा होने पर कुछ विद्वानों ने आश्चर्यपूर्वक लिखा है कि सुरदास ने पुष्टिमार्ग का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं किया है । हिन्दी साहित्य के अनेक विद्वानों ने सुरदास की रचनाओं का मज़ीमाति अध्ययन नहीं किया है, इस कारण उनका सुरदास विषयक मत कभी कभी प्रमात्मक हो जाता है ।^१ सुर निर्णय के लेखकों ने सुरदास के ऐसे पदों को उद्धृत किया है, जिनमें स्पष्ट पुष्टिमार्गीय उल्लेख है । उदाहरणार्थ निम्न पद --

हरि में तुमसे कहा दुराज ।

जानत की पुष्टि पद मोक्ष कहि कहि प्रकटाऊ ।

मारा रीति उदर के जागै सोल सकल मरमाऊ ।

अति बाजार भाँ खै करि नाकै करि करि पद रिखाऊ ।^२

लेखकों ने इस प्रकार के उदाहरण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सुर ने अपना रचनाओं में पुष्टिमार्ग का प्रत्यक्ष उल्लेख किया है तथा यह भी सिद्ध करने की चेष्टा की है कि सुरदास की समस्त रचनाएँ पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त के बल्लूक हैं । परन्तु विद्वान लोग इन उदाहरणों को सुरदास जी का होने पर संदेह करते हैं । दूसरे सुरदास जी को पुष्टिमार्ग का उल्लेख अपना रचनाओं में करने की कोई आवश्यकता भी नहीं थी । पुष्टिमार्गीय होना उनका परम धर्म और उनका जीवन स्वयं पुष्टिमार्ग की व्याख्या हो । इस कारण उनका रचनाओं में पुष्टिमार्ग का उल्लेख होने या न होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता । वार्तासाहित्य में हमें इस बात का साधाय मिल जाता है कि सम्प्रदाय में सुरदास जी की बड़ी मान्यता थी । वे अष्टसत्तान में से एक थे । श्री हरिदास जी अष्टसत्तान वार्ता पर मान प्रकाश नामक टिप्पणी लिखी है, जिसमें उन्होंने अष्ट सत्तान के साम्प्रदायिक महत्व का विवेचन किया है । साहित्य और कला की दृष्टि से परमानन्दस्वामी व सुरदास जी को सम्प्रदाय का सागर बताया गया है परन्तु अष्टशाय का वास्तविक गौरव सुरदास जी ही हैं ।

१- सुर निर्णय (अग्रवाल प्रेस मथुरा) पृष्ठ २६६

२- सुर निर्णय से उद्धृत ।

सुरदास जी का मन्त्रित साधना जहाँ एक ओर भागवत की मन्त्रित से प्रभावित है, वहाँ दूसरी ओर कवि बल्लभ सम्प्रदाय की मर्यादा का भी यथावत पालन करता है। वह स्वयं एक उच्चकोटि का मन्त्रित है और समाज पर वही विदेशी विलासिता के प्रभाव से अनभि नही है। इसके अतिरिक्त अनेक मतमतान्तरों और सम्प्रदायों के जाँच भी उसकी दृष्टि से बाँझ नही है। सुरदास जी की रचनाओं में उन सभी परिस्थितियों और मर्यादाओं का समन्वय है। पुष्टिमागीय तत्त्वों का उन्होंने बड़ा मनोबलानिक विश्लेषण किया है। कृष्ण चरित्र में अत्याधि अतिमानवता का स्वभाव से ही निर्यय करके कवि ने पुष्टिमागीय मन्त्रित की सर्वसाधारण के लिये सुगम बनाने का प्रयत्न किया है, इसलिये सुरदास ने तो वैष्णव अलंकारिकों के बन्धन में बंधे, न ही उन्होंने भागवत का ही गुणान किया और न ही बल्लभाचार्य द्वारा पुष्टि मन्त्रित का विवेचन अपना कर्तव्य समझा। इस कारण सुरदास पुष्टि सम्प्रदाय में दोषित होते हुए भी साम्प्रदायिकता से बहुत दूर थे और भागवत का अनुसरण करते हुए भागवत निर्पेक्ष थे। उनका अपना जला व्यक्तित्व है, उनका काव्य एक महान सागर है जिसमें अनेक प्रकार के रत्न छिपे हुए हैं।

सुरदास जी का दार्शनिक पक्ष :

सुरदास जी तत्त्वतः दार्शनिक नही थे। वे तो सन्त मन्त्रित व सिद्ध कवि थे। उनका ज्ञेय दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन नहीं था। मन्त्रित की मन्त्रित में विपरीत हुए उनके हृदय की तन्त्री से जो राग स्वतः निर्गत हुए, उन्होंने का संकलन सुरसागर है। परन्तु महात्मा सुर एक सम्प्रदाय विशेष में दोषित थे। और उसकी सेवा पद्धति को जो उस सम्प्रदाय का आचरण पक्ष है, उन्होंने अपनाया था। इसी कारण उसके सिद्धान्त पक्ष से भी सुरदास जी अवश्य ही प्रभावित हुए होंगे।

यों तो सुरसागर एक महान सागर है और जिन साँझ जिन पाइयों के अनुसार किसी भी वैष्णव सम्प्रदाय का व्यक्तित्व अपना हृदयमाला के रत्न उसमें से साँझ निकालता है। फिर भी उसमें प्रचुरता बल्लभाचार्य सम्प्रदाय के सिद्धान्त सुनताओं से भरे रहने वाले रत्नों की हैं। बल्लभ सम्प्रदाय की मन्त्रित सुरदास के दृष्टि श्रीकृष्ण

रूप पर ब्रह्म है । जिस प्रकार बलमाचार्य जी ने बनेक बनेक ग्रन्थों में कृष्ण का नाम हरि लिखा है वही उन्हें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव से ऊपर बताया है उसी प्रकार स्थान स्थान पर सुरदास जी ने हरि का स्मरण किया है । ब्रह्म का निरूपण सुरदास जी इस प्रकार करते हैं :

सोमा अमि, अपार अतण्डित बाप जातमाराम ।
 पुरन ब्रह्म प्रकट पुरुषार्थम सब विधि पुरन काम ।
 जावि सनातन एक अनुपम अविगत अल्प अहार ।
 अकार आदि वेद असुर, उन निर्गुण गुण अपार । १

सुर ने बलमाचार्य जी की भाँति ब्रह्म, प्रकृति और पुरुष में अद्वैतता स्थापित की है और पूर्ण पुरुषार्थम परब्रह्म और श्रीकृष्ण का स्वीकरण किया है यथा--

सदा स्वरस रस अलङ्कित आदि अनादि अनुप, ।
 कोटि कथ्य बीतत नहिं जानत विहारत युगल स्वरूप, ।
 सकलतत्त्व ब्रह्माण्ड द्वै पुनि माया सब विधि काज,
 प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायन सब है अंश गोपाल । २

सुर सागर में इस प्रकार के बनेक पद हैं जिनमें अन्तर्यामी स्वरूप विराटस्वरूप तथा निर्गुण स्वरूप का वर्णन है । भगवान् विराट का रूप वर्णन करते हुए सुर कहते हैं :-

नेत्रों से श्याम का रूप देखो । बड़ी अनुप
 रूप ज्योति । प सीकर घट घट में व्याप्त हो रहा है ।
 सप्त पाताल उसके वरण है, आकाश सिर है, बुध,
 चन्द्र, क्वात्र अग्नि सब में उसी का प्रकाश है । ३

१- सुरसारावली पद ६६३ पृष्ठ ३४ (ब्रैकेटेश्वर प्रेस)

२- वही पृष्ठ ३८ ,,

३- सुरसागर (४मा) पद ३७०

जीवः

सूर ने बल्लभ के अनुसार जीव को गुपाल (गोपाल) का अंश माना है । और प्रेम को अद्वैत सत्ता को स्वीकार किया है । ईश्वर के विषय में उन्होंने जितने संकेत दिये हैं उतने जीव के विषय में नहीं । जीव को उन्होंने साधारण तौर से माया से बाधित माना है । जिस प्रकार बल्लभाचार्य जीव को तीन श्रेणियों मानते हैं, उस प्रकार का वैज्ञानिक विवेचन सूरदास जी ने नहीं किया । फिर भी उनके काव्य में तीनों प्रकार के जीवों का संकेत अवश्य मिल जाता है । शुद्ध अवस्था वाले जीवों का वर्णन विनय के पदों में किया है । यदि माया न हो तो प्रेम और जीव में कोई अन्त नहीं ।^१ माया के कारण जीव अपने स्वयं को भूल जाता है । संसारी जीवों की दुर्गति, प्रेम और अनेक प्रकार की बाधाओं का वर्णन सूर ने बड़े विस्तार के साथ किया है । भगवान की कृपा से जब यह संसारी जीव माया से छुटकारा पा जाता है और उसमें जानन्ददाश का भी आविर्भाव हो जाता है, तब वह मुक्त हो जाता है यह जानन्द उसका अपना है । प्रान्ति और माया के कारण वह उससे दूर पड़ा था । प्रेम दूर होने पर जीव को अपना जान हो जाता है ।

असुन्याँ जापुन हो मैं पाव्याँ ।

सुदहि सुद मयाँ उजियारौ

सतगुरु मेव बतायौ ।

ज्याँ सुरंग नाभी कस्तूरी, डूँढत फिरत सुजायौ,

फिरि चित्याँ जब चेतन ऐ करि अपने हो तन लायौ,

रा गुमारि कण्ठ मनि मुषन, प्रेम मयाँ करे गवायौ ।

दियाँ बताई और सलियनि तब तनु की लाप नसायौ

अपने नाहि नारि को प्रेम मयाँ बाँझ कहूँ हिरायौ ।

जागि लखा, ज्याँ को तयाँ हो है, ना कहूँ गयाँ न जायौ ।

सूरदास समुझे की यह गति, मनहि मन मुसकायौ ।

कहि न जाइ या सुख की महिमा ज्याँ गुरी गुर लायौ ।^२

१- सूरसागर (ना० प्र० सप्तम) पद ३८३

२- सूरसागर (ना० प्र० सप्तम) पद ४०७

ऐसे पदों को जावार मानकर सुर पर शंकर के मायावाद का प्रभाव भी बताया जाता है । डा० दीनदयालु गुप्त^१ इस विषय में लिखते हैं :— सुरदास के अन्य पद और कथनों के मिलान करने पर तथा बल्लभ सिद्धान्त को ध्यान में रखने पर हमें शक होगा कि वास्तव में सुर पर शंकर के मायावाद का प्रभाव नहीं था । ऐसे पदों का अर्थ बल्लभ सिद्धान्तानुसार ही है ।^२ परन्तु डा० हरवश लाठ जी जैसे विद्वान डा० गुप्त के उपरोक्त विचार से इस जावार पर सहमत नहीं हैं :—^३

सुरदास ने निश्चित सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही किया । उनका उद्देश्य मायान का गुणगान करना था । वैष्णव सम्प्रदायों के दार्शनिक सिद्धान्तों का सूक्ष्म भेद करने का न तो उन्हें अवसर ही था और न आवश्यकता ही थी ।

माया, अविद्या, जीव, जगत आदि से सम्बन्ध रखने वाले पद सुर ने उस समय रचे थे जबकि किसी सम्प्रदाय के दायित्व नहीं थे । साधारण जनता में शंकर के मायावाद का जितना प्रभाव रहा है, उतना किसी अन्य वैष्णव सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का नहीं । गोरखाजी तुलसीदास जी की मुंति सुरदास जी की संसार के क्रियाकलापों का नियन्ता गोपाळ को ही मानते हैं ।

सही गोपाळ को सब छोड़ें

जो अपना कुषारथ मानत, जति कुंठी है सोई ।^४

जीव के सम्बन्ध में सुरदास जी ने माया की प्रवृत्ति स्वीकार की है और माया को ही कर्मजाति माना है । तीनों लोक उसी के वश में हैं । और उसी के अधीन होकर सुर और नर देह धारण करते हैं ।^५ उन्होंने स्पष्ट लिखा है :

सुरदास मायन्त मजन विनु

मियया जन्म नदीये ।

१- अष्टाध्याय और बल्लभसम्प्रदाय, द्वितीय भाग, पृ० ४२६ ।

२- सुर और उनका साहित्य, डा० हरवश लाठ शर्मा पृष्ठ २६३

३- सुर सागर (भा० प्र० समा) पद २६२

४- वही पद २६४

जात और संसार :

बल्लभ सम्प्रदाय में जात व संसार अलग अलग हैं । सूरदास जो नै जहाँ जात की गोपाल का अंश बताया है वहाँ संसार का नाम नहीं लिया है । और उसकी उत्पत्ति भी ब्रह्म से ही मानी है । वे जात की मिथ्या मानने की प्रवृत्ति नहीं जिस जात में जीव मावान का गुणान करके तरता है वह मिथ्या कैसे हो सकता है । सूरदास संसार की हरि की श्रद्धा का फल मानते हैं । उनकी श्रद्धा से प्रकट हुआ यह संसार स्वयं भी हारण ही है । सूरदास के पदों से स्पष्ट है कि उन्होंने बल्लभाचार्य के अविकृत पारणामवाद को माना है, क्योंकि जात की उपमा उन्होंने पानी के बुलबुले से की है । और आचार्य बल्लभ के समान ही ईश्वर की ही जात का निमित्त और उपादान कारण माना है । बल्लभाचार्य के सिद्धान्तों के अनुसार सूर शरावली में २८ तत्त्व माने गये हैं जिनका विवेचन सूरसागर में किया गया है :-

आदि निर्जन, निराकार, कोउ हुताँ न दूसर ।

रचौ सृष्टि विलतार, मई श्रद्धा एक आँसर ।

झिगुन प्रकृति तै परतत्व महत्तत्व तै अंकार ।

मन हन्क्री स्रवादि पंच ताते कियौ विस्तार ।

स्रवादि तै पंचमल सुन्दर प्रकटायै ।

पुनि सबको रचि अउ जापु में जापु समाये ।^१

तीसरे स्कन्ध में भी सृष्टि का ब्रह्म बताया गया है । इस वर्णन में सूर बल्लभ से कुछ अलग प्रतीत होते हैं । क्योंकि उसने उन्होंने माया को त्रिगुणात्मक मानकर सत्य, रज और तम उसके गुण माने हैं और आगे चलकर माया का मिथ्यात्व सिद्ध किया है ।^२ संसार का मिथ्यात्व उन्होंने स्थान स्थान पर प्रतिपादित किया है और जीव की अविद्या की उसके ब्रह्म का कारण बताकर बार बार उसे बतावनी दी है ।

१- सूरसागर (ना० प्र० ६०) पद ३७६

२- वही पद ३६४

माया :-

माया का वर्णन सूर के पदों में बड़े विस्तार से मिलता है । बल्लभाचार्य ने अपने मत का स्वरूप के मत से निरचित रूप से जला रखा है । और माया को सत्य तथा प्रेम दोनों ही प्रकार का बताया है । सूरदास माया को ईश्वर की शक्ति ही मानते हैं । और उन्होंने इस माया का अनेक प्रकार से वर्णन भी किया है । यह माया नहा हाथ में लपुटी लेकर जीव को अनेक नाच नचाती है । और उसकी बुद्धि का प्रेम में डालती है । विन्ध्य के पदों में सूरदास जी ने माया का अनेक प्रकार से वर्णन किया है । माया के वक्र में मछा हुआ मन्त हरि को भी विद्वृत कर देता है । केवल भक्ति द्वारा ही माया से छुटकारा सम्भव है । सूर इस माया को हरि की माया ही मानते हैं ।^१ इस प्रकार विन्ध्य के पदों में उन्होंने माया का खनिष्ठभारो रूप प्रदर्शित किया है । और माया का प्रभाव बलवत् व्यापक बताया है । उनके पदों में माया का विष्णुत्व भी प्रतिपादित हुआ है ।

सूर ने माया को अविद्या व तृष्णा बताकर अनेक रूपों की योजना की है । अविद्या को गाय मानकर वे अपनी इस गाय को गोकुलपति के गोविन में मिलाना चाहते हैं ।^२ तृष्णा भी माया का रूप है जिसका वर्णन सूर ने एक-बड़े सुन्दर रूप में किया है :-

मायाँ, नैक हटकी गाढ़ ।

प्रमत्त निषि वासर, अपय पय, अगह गहि नहि जाह ।

धुवित अति न अवाति कयहुं निम हुमदलि लार्ह ।

अष्ट दस पट नीर अववति तृषा तऊ न तुफाह ।^३

सारे सांसारिक सम्बन्ध माया से उत्पन्न हैं और माया अनुष्य को उन सम्बन्धों के जन्म में डालती है । सूर के लिये माया व ज्ञान एक ही है ।^४ इसी ज्ञान

१- सूरसागर (ना० प्र० सं०) पद ४२ तथा ४४

२- वली पद ५

३- वली पद ५३

४- वली पद ४७

तिमिर में पड़ कर मनुष्य अपने उद्देश्य को मूल जाता है और निकट रहने पर भी कस्तूरी वाले हथ के समान जान नहीं पाता ।^१

मोक्षः

सूर ने पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार ही जादों की कौटियां मानी है । सूर ने कई स्थानों पर मन्त्र का फल बताया है और कई मन्त्रों को वैकुण्ठ नाम की प्राप्ति कराई है । जिसमें मन्त्र बल में कमल के समान हर्ष शोक से दूर रह कर जीवनमुक्त हो जाते हैं ।^२ जीवनमुक्त अवस्था करने का और सूर ने अनेक उपाय किये हैं । सारा प्रमरणीय इसी प्रकार के उपायों से भरा पड़ा है । सारलोक, सामीप्य, साक्ष्य, और साक्ष्य सुवित्तों का विद्वान्त सूरसागर में नहीं है परन्तु इन चारों सुवित्तों की अनुपमि सूर ने पूर्ण रूप से की है, इससे कोई सन्देह नहीं है । पूर्ण कृपाचम श्रीकृष्ण के लीलावाम में पहुँचने की उच्छा सूर ने कई पदों से प्रकट होती है । और उस भगवत वाम का स्वरूप भी सूरदास ने बताया है ।^३ भगवाना के लीलावाम में पहुँचना ही सारलोक सुवित्त है । उनमें चार चरणार बिन्दु का सान्निध्य सामीप्य सुवित्त कहलाता है । कृष्ण के साथ उनका के समान वावरण करना साक्ष्य सुवित्त है और ईश्वर के साथ स्त्रीवाम का प्राप्त हो जाना साक्ष्य सुवित्त है । मजनान्द से मन होने का सम्प्रदाय में स्वरूपानन्द सुवित्त कहा गया है । इसी के सम्बन्ध में बल्लामाचार्य ने लिखा है :-

प्रकृतिकालांतीते वैकुण्ठादप्युत्कृष्टे

श्रीगोपाल स्व प्रतीति शेषः^४

लयात्मक साक्ष्य सुवित्त के दोनों रूप हमें सूर में दृष्टिगोचर होते हैं । सूर उच्च कोटि के भासुक कवि थे । ईश्वर का लीला वाम, व्रयण, सेवा आदि

१- सूरसागर (ना० १०९०) पद ४६

२- वही पद ३६४

३- वही पद ३३७, ३३८, ३३९, ३४०

४- अणुमाक्य, अध्याय ४, पाद २, सूत्र ६

अवस्थाओं में सुर जिस आनन्द का अनुभव करते हैं, वह किसी की मुक्ति में दुर्लभ है । उस आनन्द को सुर ने बड़े बड़े मुनियों के लिये भी स्पृहणीय माना है । वेद, उपनिषद् आदि धर्मग्रन्थों में जिस परमवाम का वर्णन है, वह सुरदास जी का जीलावाम है, उनका मजनानन्द ब्रह्मानन्द से बड़का है । १ बल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार सुर ने ब्रज, वृन्दावन गोकुल को नित्य जीला वाम गोलों के अवतारित रूप माना है और स्थान स्थान पर ब्रजवाम की मुकुट कण्ठ से प्रशंसा की है । २ सुर ने ब्रजवाम व वृन्दावन को लौकिक और अलौकिक दोनों का रूप दिये हैं और पूर्णतया बल्लभ सम्प्रदाय का अनुसरण किया है ।

रास:-

वृन्दावन की मोति सुर ने रास को भी आध्यात्मिक पद प्रदान किया है और रास का निम्न वर्णन किया है । ब्रह्मा वैवर्त पुराण, मत्स्यविष्णुपुराण्य हरिवंश आदि पुराणों में तो रास का वर्णन हुआ ही है, वैष्णव सम्प्रदाय के गौडियों ने भी उसका आध्यात्मिक रूप बड़े विस्तार से वर्णन किया है । वंगीय वैष्णव शाखा में परकीया भाव को प्राधान्य दिया गया है जबकि बल्लभ सम्प्रदाय वालों ने स्वकीया भाव को अपनाया है । किन्तु इस जीला पर वंगीय प्रभाव अवश्य स्वीकार करना होगा । रास रास का वर्णन सुर अपनी शक्ति के बाहर की वस्तु समझते हैं ।

सुरजी का भी सुर ने लौकिक व अलौकिक दोनों रूपों में वर्णन किया है । जहाँ एक ओर उन्होंने बल्लभाचार्य के अनुसार सुरजी को आध्यात्मिक रूप दिया है वहाँ दूसरी ओर लौकिक दृष्टि से भी सुरजी को लेकर बड़ी लिखावट का है । रासों को तो उन्होंने प्रकृति माना है और कृष्ण को कुरुष । फिर प्रकृति कुरुष

१- सुर सागर (प्रमरगीत) मजनानन्द अलि सम्प्यारों

२- सुरसागर (ना० प्र० १०) पद ६६६०, वृन्दावन ब्रज की महर कार्य करने जाय ।

की रक्षता प्रति पादित की है । कहाँ कहाँ उन्होंने राधा की कृष्ण की शक्ति कहा है और उसी रूप में उसकी उपासना भी की है ।

श्री मद्भागवत बल्लभ सम्प्रदाय तथा अन्वय सम्प्रदायों को आधार मानते हुए भी हमें श्री के सिद्धान्तों में पर्याप्त मौलिकता मिलती है । जोष, जात, मोक्ष, आदि के विषय में भी श्री ने केवल मौलिकता ही नहीं निमित्तता भी दिखाई है । जात और संसार के सुदृढ मेद को और श्री का ध्यान उतना नहीं गया है और न ही जीवों की कर्तव्यों गिनाने में उनका मन रमा है । माया और अविद्या को वे आवरण समझते हैं । वे ही उपरान्त आधार पर हम कह सकते हैं कि श्रीसागर में दार्शनिक सिद्धान्तों की खोज करना असंभव था प्रतीत होता है ।

इस प्रकार उपरान्त अध्याय में महाकवि श्रीदास व महाकवि नन्ददास के काव्य का संक्षिप्त सम्प्रदायिक विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

नवम अध्याय

सुर और नन्ददास के काव्य की पृष्ठ भूमि

कवि तब उसका युग एक दुपरे से अवश्य प्रभावित होते हैं। मैत्र-पार के समान कवि तत्कालीन जीवनसागर से ही मायो रसों के कणों को अपने में भरता है और, उनका मध्य एवं परिष्कृत रूप प्रदान कर बहुचरा को ही उर्वर बनाने के लिये बरस पहला है। कवि के मोलर जो कुछ संचित होता है, जो संस्कार भावनाएं विचार वह ग्रहण करता है, ये सब समाज, आतावरण और परिस्थितियों की ही देन होते हैं। अपने युग के प्रभावों को ही कवि किसी न किसी ढंग में ग्रहण करता है और साथ ही अपनी रचनाओं से अपने ही युग अथवा आनामी युगों को भी प्रभावित करता है। अतः किसी कवि के अध्ययन के लिये उसके पूर्व और समकालीन युग का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। ऐसी दशा में ही हम उस कवि के काव्य की सहासुप्रतिष्ठा आलोचना कर सकते हैं। अपने जीवन और युग के लिये तो हम उसकी कृति को बिना उसके युग का परिचय प्राप्त किये ही आंक सकते हैं। परन्तु कवि के दृष्टिकोण और उसके विचारों को तब पर पहुँचने के लिये उसके समय की विचार धारा का सहारा लेना परम आवश्यक है।

अतः कविवर सुरदास व कविवर नन्ददास की काव्य कला की पृष्ठ भूमि का अध्ययन करने के लिये हमें उनके पूर्ववर्ती व उनके समय की साहित्यिक राजनैतिक तथा सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का परिचय लेना समीचीन होगा।
सुर व नन्द से पूर्व हिन्दी के साहित्यिक रूप में आई हुई काव्य परम्परा व साहित्य परिस्थिति:-

सुर व नन्द दोनों ही अष्टाक्षर के प्रतिनिधि व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कवि माने जाते हैं। अतः उनके पूर्ववर्ती युग का अध्ययन करने के अर्थ में अष्टाक्षर से पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य व परिस्थितियों का अध्ययन। अष्टाक्षर के पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य का परिचय उनही साहित्यिक विचार धाराओं के आधार पर

उन्ने का प्रयत्न किया जाया जिसको हिन्दी साहित्य के लक्षण सभी इतिहासकारों ने अपनाया है ।

सन्तकाव्य: -

अष्टादश सप्तम तक की सन्त काव्य की परम्परा गुरु गोरतनाथ (वि० की तीरहवीं शताब्दी का उद्गारद) से चलकर सितपन्थ के प्रवर्तक गुरु नानक तक जाती है । इस परम्परा के मुख्य कवि हैं लखनौ गुरु गोरतनाथ स्वामी रामानन्द जी के शिष्य पापा, सेना, बना, रैदास तथा कबीर, नानक महाराष्ट्र कवि झिठावन और नामदेव । इन सन्तों ने लक्षण सभी ने अपने दार्मिक (स्वतन्त्र) पन्थ बजाये थे । सन्त काव्य के विषय, वैराग्य, संसार की असंगति, गुरुमहिमा, नाममहिमा, मानसिक परिष्कार के उपाय, सवाचार, मन के प्रति प्रबोध ज्ञान और योग की व्यवस्थित वस्तुतियों आदि हैं । इस काव्य का मुख्य रस शान्त है । यह मुख्यतः शैली और शब्द तथा पद दोनों साहित्यिक रूपों में लिखा गया है ।

सन्त काव्य द्वारा के अन्तर्गत कहे हुए कवियों में हैं सन्त नामदेव (वि० की चौदहवीं शताब्दी) का प्रभाव अष्टादश पर अवश्य पड़ा होगा । महाराष्ट्र तथा हिन्दी के वि० और झिठावा के परममज्ज, नामदेव की बातों का प्रचार उनके जीवन का० में ही दूर दूर तक फैल गया था । पण्डरपुर में श्री विठ्ठल मठान जी की मूर्ति के समक्ष ही जिसके उपासक नामदेव जी मा थे, श्री बल्लभाचार्य ने मन्त्र की प्रेरणा ली थी । नामदेव जी ने स्वयं मारतन्त्र के तीर्थ स्थानों की यात्रा की थी । उन्होंने ब्रजवासी में अपना मधुर वाणी का प्रभाव भी छोड़ा होगा । ब्रज में अष्टादश के प्रथम बार मन्त्रों ने नामदेव जी का कृष्ण मन्त्र और उनके ज्ञानोपदेशों के विषय में अपने गुरु जी बल्लभाचार्य के मुख से अवश्य सुना होगा ।

अष्टादश काव्य की भाषा पर सन्त काव्य की मिश्रित भाषा का हमें कोई उल्लेखनीय प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता । हाँ, यदि नामदेव जी के नाम से

हिन्दी साहित्य के ग्रन्थों में उद्धृत की जाने वाली भाषा का ब्रजभाषा रूप नामदेव जी द्वारा लिखित है तब तो उनकी भाषा में ब्रजभाषा के एक ऐसे साहित्यिक रूप का तरना मिल जाता है जिसका सूर जादि कुछ अष्टदाय के कवियों की परिष्कृत साहित्यिक ब्रजभाषा का पृष्ठभूमि कहा जा सकता है। पारन्तु उस भाषा के नामदेव कृत होने में संदेह है।

सुफिया प्रेमकाव्य:

सुफियों की प्रेम कहा नियों का प्रभाव भी अष्टदाय के कवियों पर पाया जाता है। नन्ददास के काव्य पर उस बारा का अष्टदाय के अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक प्रभाव है। सुफियों के लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति का प्रभाव नन्ददास की रूपमञ्जरी आदि रचनाओं में स्पष्ट दिखाई देता है। प्रेम और विरहानुभूति की मार्मिकता में बहुत कुछ समानता पाई जाती है। यद्यपि नन्ददास जी ने अन्य अष्टदाय के कवियों की मोति भारतीय प्रेम मन्त्रित परम्परा को ही अपनाया, जो तारकीय मन्त्रित सूत्र, भागवत पुराण, साहित्य मन्त्रित सूत्र आदि ग्रन्थों में मिलती है और जिसे हम ग्रन्थों के साथ साथ अपने गुरुओं से प्राप्त किया तथापि सुफियों की प्रेम पद्धति और काव्य परम्परा से नन्ददास अवश्य परिवर्तित व प्रभावित रहे हैं, इसमें संदेह नहीं किया जा सकता। सुफियों की प्रणायामों की दोहा धाँपाई की छन्द शैली का नक़्क़ा भी नन्ददास के समकालीन अवश्य था। उनकी रूपमञ्जरी और दशमस्कन्ध भाषा आदि रचनाओं की छन्दशैली इसका प्रमाण है। यह भी सम्भव है कि नन्ददास जी ने जैन चरित काव्यों अथवा सुफियों की कहा नियों से उस छन्द शैली को सीधी प्रेरणा न ली हो और तुलसीदास जी की राम चरित मानस से ही प्रेरणा लेने के बाद लिखा हो। पारन्तु सुफियों की प्रेम कहा नियों की मो अवहेलना इस दृष्टि से नहीं की जा सकती।

वेही मलिक मुहम्मद जायसी जिन्होंने संवत् १५६७ में पद्मावत नामक प्रेम कहानी का रचना की थी, अष्टदाय के कई कवियों के समकालीन थे। जायसी से

कुछ ही पहिले मृगावली व मधुमाञ्जी की सुर के जीवन काल की ही रचनाये हैं ।
 भुक्ता प्रेमाथाओं की माया अवका है । अष्टशाय के काव्य में जो अवका भाषा
 के शब्दों का कही कही प्रयोग मिलता है वह इन प्रेम साथाओं के अध्ययन का प्रभाव
 प्रतीत नहीं होता वरन ब्रजप्रान्त में सन्त साहित्य द्वारा प्रचलित किये गये अवका
 भाषा के गीत और ब्रज प्रान्त में ब्रजवास अथवा यात्रा की कामना से रहने और
 जाने वाले पूर्व देशों के कृष्णमयता के विचार विनिमय के प्रभाव रूप जान पड़ता है ।

रामकाव्य परम्परा:

भक्ति का० की इस आध्यात्मिक धारा का ही आश्रित सभाव है । अष्टशाय
 के प्रथम चार कवियों से पहिले रामकाव्य परम्परा में जाने वाला कोई ग्रन्थ अभी तक
 नहीं मिला । सूरदास से सम्बन्ध में सूरदास द्वारा वर्णित राम चरित्र, मागवत
 नवम स्कन्ध का अनुकरण है, राम भक्ति परम्परा के किसी कवि का प्रभाव नहीं है ।
 नन्ददास आदि दूसरे वर्ग के चार अष्टशाय के कवि मयता के समान अवश्य उनके जीवन
 काल में ही तुलसीदास का रामचरित मानस आ गया था । जैसा कि कहा जा चुका
 है नन्ददास जी के ऊपर अवश्य ही तुलसीदास जी की राम चरित मानस की शैली
 का प्रभाव पड़ा था । तुलसीदास की आध्यात्मिक भावना का भी प्रभाव नन्ददास
 जी पर दृष्टिगत किया जा सकता है ।

अष्टशाय से पहिले हिन्दी के कृष्णभक्ति काव्य की परम्परा :

पीयूषवर्षी जयदेव की सरस पदावली तथा कृष्ण की विलास लीलाओं वर्णन
 का प्रभाव हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों पर सामान्य रूप से पाया जाता है । इस
 सम्बन्ध में डा० दीनदयाल गुप्त का कथन है कि गीत गोविन्द की अनेक प्रतिलिपियाँ,
 हिन्दी की प्राचीन पुस्तकों के साथ बंसी ब्रज के वेष्णव घर तथा मन्दिरों में मिलती
 हैं । सबसे ज्ञात होता है कि गीत गोविन्द का चाहे सीत का दृष्टि से ही, चाहे
 उसने निहित भावों की दृष्टि से, ब्रज में बहुत प्रचार था । अष्ट शाय की मधुर
 पदावली को देखने से पता चलता है कि उस पर गीत गोविन्द की भावमयी भाषा
 तथा सीतमयी शब्दावली का अवश्य सभाव पड़ा था ।

जयदेव के गीत गोविन्द के अतिरिक्त विद्यापति का कृष्ण काव्य नन्ददास जी के समय में बड़ा प्रसिद्ध था । वैष्णव महाप्रभु और उनके ब्रज में रहने वाले अनुयायी विद्यापति के राधा कृष्ण प्रेम के पदों की बड़ी तत्प्रेमता से गाते थे । वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार अष्टाक्षय के समय में जो रूप गोस्वामी जी के प्रभाव से बहुत हुआ था । उसके साथ ब्रज में विद्यापति का भी सम्मान बढ़ा । इस प्रकार विद्यापति का काव्यशैली ने भी जयदेव की तरह अष्टाक्षय काव्य शैली को अवश्य प्रभावित किया होगा ।^६

अपि नन्ददास की सीधी साहित्यिक प्रेरण अपने अग्रज अष्टाक्षय के सखाओं सुरदास, परमानन्ददास, कुम्भदास तथा कृष्णदास और इनमें से विशेष रूप से सुरदास से मिली, जिसका काव्य उदियों तक अनेक हिन्दी कवियों के लिये आवशी बना रहा, तो भी नन्ददास जी की काव्य चेतना के निर्माण में विद्यापति और जयदेव का भी महत्वपूर्ण योगदान है ।

इस प्रकार नन्ददास के युग में मशहूर काव्य की ही रचना हो रही थी । सुरदास, परमानन्ददास आदि अनेक कवियों ने नन्ददास के देवते देवते अपनी काव्य प्रतिमा दिखाई थी । जिस वातावरण में नन्ददास रह रहे थे उस वातावरण में कृष्ण लीला सम्बन्धी काव्य ही रचना जा रहा था । कृष्ण लीला गान ही जल्लम सम्प्रदाय की साहित्यिक परम्परा बन चुकी थी ।

अष्टाक्षय से पहिले प्रकीर्णक काव्य की परम्परा :

ऊपर कही हुई काव्य की विचारधाराओं के अतिरिक्त प्रकीर्णक काव्य परम्परा के अन्तर्गत अष्टाक्षय से पहिले के कवियों में अमीरखुसरो (बलाउद्दीन का समकालीन) ही केवल एक प्रमुख कवि है । उन्होंने विविध प्रकार के लौकिक ज्ञान, अनुभव

तथा मनोवृत्तियों से सम्बन्ध रखने वाले शब्द को हिन्दी से रचना की थी। अमीर तुसरी की भाषा ब्रजभाषा की भावुरी से मिश्रित लड़ी बोलों हैं। जिसमें बरवी फारसी के शब्दों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। तुसरी की सुमारियों और पहलियों की भाषा, लड़ी और ब्रज, दोनों बोलियों की आगे प्रस्तुति होने वाली साहित्यिक कामता का संकेत अवश्य करती है। अमीर तुसरी की रचना और सम्पूर्ण अष्टशाय काव्य में कृत फल को छोड़कर अन्य कोई मारी साम्य नहीं प्रतीत होता। मानसिक स्वाग्रता का अम्यास तथा अमिमानी पंक्तियों की बुद्धि परीक्षा की चुनौती देने वाले दृष्टिकोणों की चिह्नित कल्पना की प्रेरणा सूर ने सम्पन्न है, तुसरी के पहिले आदि साहित्य से ही है।

उपरोक्त सभी के आधार पर कहा जा सकता है कि विषय और मन्त्रिभाव की दृष्टि से अष्टशाय के काव्य का मूल आधार श्री मन्त्रिभाव तथा बरलभाचार्य जी के प्रवचन है। काव्य की दृष्टि से अपने पूर्व स्थित राख्यान, अवधी और पंथिली काव्य से उन्होंने प्रेरणा मात्र ली थी आदर्श रूप मानने योग्य उनके सम्पूर्ण कोई कवि न था। पदशैली का आदर्श उनके सम्पूर्ण जयदेव, विद्यापति, नामदेव और कवि कबीर के पदों ने रहा। नामदेव की ब्रजभाषा में हमारे सम्पूर्ण परिवर्तित रूप में ही आती है। उस प्रकार अष्टशाय का प्रथम वर्ग ही ब्रजभाषा का आदि कवि वर्ग है और उसमें भी सबसे प्रमुख केन अथ सूरदास की है। सूर की प्रतिमा तो वास्तव में आश्चर्यवर्कित करने वाली है। अष्टशाय के रामकालीन कवियों में सूर की समता करने वाले तथा कही कहा सूर से भी आगे बढ़ने वाले कवि केवल तुषीदास जी हैं।

अष्टशाय के समय राजनैतिक व सामाजिक व्यवस्था :

उत्तरी भारत के माध्यमिक काल में उत्तर भारत की राजनीतिक सत्ता का केंद्र दिल्ली रहा था। दिल्ली का राजा ही उत्तरी भारत का प्रमुख राजा समझा जाता था। अष्टशाय के समय (लगभग सन् १४६८ से १५८५ ई० तक) का ब्रजमंडल दिल्ली सत्ता के ही अधीन था। मुहम्मद गौरी ने जब अन्तिम बार पृथ्वीराज की हराकर हिन्दु राज्य का अन्त किया था तब से विदेशियों के हृदय में दिल्ली साम्राज्य में अनेक राजनैतिक

परिवर्तन हुए । दिल्ली के कई सुल्तान बादशाह समस्त भारत के शासक भी हुए परन्तु ब्रज प्रदेश प्रदेश दिल्ली व आगरा की सल्तनत के अधीन ही रहा ।

अंग्रेज भारतीय इतिहासकारों ने दिल्ली से माध्यमिक काल में राज्य करने वाले अनेक बलों और बरानों के सुल्तानों की राजनीति, उनके प्रबन्ध, उनके युद्ध तथा सार जीत, राज्य विस्तार, फौज, तथा पारिवारिक जीवन का विवरण विस्तार के साथ दिया है । परन्तु उस समय के देश की आर्थिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का परिचय उन्ने विस्तार के साथ नहीं दिया । कुछ भारतीय इतिहासकारों ने भी पुराने इस्तेमाल इतिहासों के आधार पर ग्रन्थ लिखे हैं । देश की भिन्नभिन्न परिस्थितियों के अध्ययन से कवियों की विचारधारा की स्पष्टपुति का ज्ञान होता है । दूसरे इन कवियों तथा आचार्यों द्वारा अपने ग्रन्थों में प्रकट किये गये तत्कालीन परिस्थिति सम्बन्धी उल्लेखों की वास्तविकता पर भी प्रकाश पड़ जाता है ।

इतिहास साधना है कि बकबर से पहिले के सिक्खों वंश, लुठक, सैयद लोदी तथा मुगल वंशों के दो तान बादशाहों को छोड़कर सभी बादशाहों की शासन नीति क्रूरता, यमान्यता तथा पक्षपातपूर्ण थी । भारतवर्ष में उल्लाम वर्ग का प्रचार उसके सरल सिद्धान्तों के कारण नहीं हुआ, किन्तु उस स्थिति हुआ कि वह एक राजशक्ति का वर्ग था जो कभी कभी विजित प्रजा में तज्जार तथा बण्ड के बल पर प्रसारित किया जाता है । स्वार्थलाप तथा दरबार में उच्चपद प्राप्ति के लोभ में भी लोग अपने वर्ग को छोड़कर उल्लाम को अंगीकार कर लेते थे । परन्तु पद प्राप्ति का लोभ तथा राज्य की ओर से आर्थिक पुरस्कार उस वर्ग के प्रति हिन्दुओं के धृष्ट की कसूरमरी शत्रुभावना को दवाने में कभी सफल नहीं हुए, जिसने उनकी स्थित-व्रता हीनी थी और जो उनके वर्ग को धृष्टा मरी दृष्टि से देखता है ।^१ आर्थिक तथा राजनैतिक दोनों दृष्टि से हिन्दु सताये जाते थे । उषा हिन्दुओं की ओर से भी प्रतिज्ञापूर्ण विरोध था ।^२

१- लिट्टी आफ मेडियरल इण्डिया, डा० ईश्वरी प्रसाद (पृष्ठ ४६५)

२- वही

(पृष्ठ ४६६)

सूतियों का लपटन करना, सब प्रकार के विपरीत विश्वासों का हनन करना तथा पाकिरों (हिन्दुओं) को सुसलमान बनाना, ये कृत्य एक आदर्श सुसलमान राज्य के आदर्श समझे जाते थे ।^१ बिकन्दर लोदी के जमाने में तो हिन्दुओं पर कत्याचार करने को एक आन्दोलन छा चल गया था । बलपूर्वक उसे सुसलमान बनाना तो एक साधारण ही बात थी, उसे एक प्रकार का कर जोजजिया कहलाता था, राज्य को देना होता था ।^२ यद्यपि कुरान में इस प्रकार के बलात्कार का कहीं विधान नहीं है ।^३

हिन्दु लोग हीनता तथा कठिन्ता का जीवन व्यतीत करते थे । उनकी आय उनके परिवार के लिये कठिन्ता से ही पर्याप्त होती थी । विजित प्रजा में रहने रहने की दशा बहुत ही निम्न श्रेणी की थी और राजकीय कर का भार उसी पर विशेष रूप से था । ऐसी दृष्टि में उन्हें अपनी राजनैतिक बल सम्बन्धी प्रतिमा को प्रसार करने का कभी अवसर नहीं मिल सका ।^४

श्री बल्लभाचार्य ने अपने समय के देश की परिस्थिति के विषय में कृष्णाश्रय ग्रन्थ में स्पष्ट शब्दों में लिखा है देश मलेच्छा (सुसलमानों) से आक्रान्त है, मलेच्छा से दबा हुआ देश पाप का स्थान बन गया है । सत्पुरुषों को पीछा दी जाता है । सम्पूर्ण लोक उस पीछा से पीड़ित है, ऐसे देश में भगवान् कृष्ण ही हमारे रक्षक हैं । गंगा आदि उच्च तीर्थों का दुष्टों से आक्रान्त हो रहे हैं । ऐसे समय में केवल कृष्ण ही मेरी गति है । अविद्या तथा अज्ञान के कारण वैदिक तथा अन्य मन्त्र नष्ट हो रहे हैं, ब्रह्मचर्य आदि व्रत से लोग रहित हैं । ऐसे लोगों के पास रहने से वेदमन्त्र हान हो गये । उनके अर्थ और ज्ञान भी विरुद्ध हो गये । ऐसी वशा से

१- हिन्दू याफ मेहिवियल इण्डिया, डा० ईश्वरी प्रसाद, पृ० ४६७

२- वही पृ० ४६८

३- वही पृ० ४६६

४- वही पृ० ४७२

केवल कृष्ण ही मेरी गति है ।^१

अकबर के समय में राजनैतिक व्यवस्था १५५६-१६०५ ई०

सुलतान वादशाहों में अकबर एक पराक्रमी, बुद्धिमान, प्रजापालक, कलाप्रेमी तथा उदार शासक हुआ था । उसके समय में यद्यपि हिन्दुओं ने पूर्ण रूप से अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता खो दी थी, परन्तु उनके हृदय में पिछली राजकीय सेवा की और की कदमावना था उसके व्यवहार से जाता रहा । और हिन्दु राजाई मुगल सम्राट अकबर की ही राज शक्ति बढ़ाने में लगे गये । अकबर ने भी पिछले वादशाहों की फट्टीर दमन व पञ्चापात की नीति को छोड़ दिया और सम्पूर्ण प्रजा की उदार दृष्टि से देखना शुरू कर दिया । प्रजाहित में उसने अनेक सुधार किये । अकबर के शासन की व्यवस्था तथा अनेक सुधारों का त्रये उसके हिन्दु मन्त्रि मंडल की ही है । मुस्तान्त्व काठ के हिन्दु जनता पर जितने प्रजापीडक तथा अनुचित कर और प्रतियन्त्र लगे थे वे सब उसने उठा लिये ।

उस समय स्वयम् की शांति विदेशों से आने वाले वार्षिक आन्दोलनों से ही नहीं हो रही थी वरन् यही धरा में ही वार्षिक सुड, मायाबुद्ध, शून्यवाद, नास्तिक, अनेकवाद विवादों के रूप में मोक्षार्ण अग्नि की तरह चल रहा था और वैराग्य प्रधान वादों के प्रभाव में आकर जनता धर छोड़ छोड़ कर उदासीन होती चली जा रही थी । स्वदेश और स्वयम् के ऊपर आई हुई संकट की आँखों में कुछ धर्माचार्यों ने स्तम्भ बनकर समाज के धर्म को नष्ट होने से बचाया और पराधीन होकर, प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच में ही भारतीय धर्म और सभ्यता की बुकती ज्योति को उलाने समाला था । अकबर की उदार वार्षिक नीति से प्रभावित हो, ये वार्षिक आन्दोलन वेग के साथ चल पड़े । उस समय सभी भारतीय धर्मों की बुद्धि हुई । अकबर सुलतान धर्म की मानते हुए भी कट्टर वादी नहीं था । उसके जीवनकाठ में

१- कृष्णाश्रय कोटश्रय, मट्ट रसानाथ शर्मा, श्लोक नं० २, ३ व ५

एक ऐसा भी समय आया था जब वह सभी वर्गों की बातों को जानने के लिये वर्माचार्यों को बुलाकर उनसे वर्णोपदेश लेता था। फतहपुर सीकरी में उसने एक हवादार खाना बनवाया जहाँ सभी वर्गों को लगे जा जा सकते थे। यद्यपि वह स्वयं पठा लिया नहीं था परन्तु उसने जैन, पारसी, ईसाई, हिन्दु आदि अनेक वर्गों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। हिन्दु धार्मिक आचार्यों तथा महात्माओं का वह केवल सम्मान ही नहीं करता था बल्कि उनकी आर्थिक सहायता भी करता था। बुरादस, कुम्भनदास आदि महत्ता से मिलने की बातों पर वल्लभ सम्प्रदायी बातों की भी की हुई है। अकबर की उदारता का यहाँ तक प्रसिद्ध है कि उसने ब्रज भूमि में मौर और गोलियाँ तक का निषेध कर दिया था।

सामाजिक दशा:

पठान शासन का० में चारों ओर अशान्ति और कष्ट फैल रहे थे। हिन्दु जनता में कोई संगठन न था। शिक्षा का अभाव था। राज्य की ओर से शिक्षा प्रसार का हिन्दुओं के लिये कोई प्रयत्न न था। ब्राह्मणों की कुछ पाठशालाएँ धनिक व्यापारियों की सहायता पर चलती थी। मुसलमानों के मकतब बहुत थे जिन्हें राजनीतिक सहायता मिलती थी। हिन्दुओं में जाति पंक्ति का संस्कार बहुत था जो मुसलमान का० के पहिले से बला जाता था। भारत वर्ष में अनेक जातियाँ बाहर से समय समय पर आती रही हैं। यद्यपि वर्ष की दृष्टि से वे एक अवश्य ही गेले परन्तु उनके रहन सहन और प्राचीन संस्कारों ने उन्हें भिन्न भिन्न वर्गों में हो बनाये रखा। धार्मिक स्वतन्त्रता तथा मतभेद के कारण भी भारत में फिरके बन्दी और साम्प्रदायिकता बनी रही है।

मुसलमानों का धार्मिक अत्याचार से बचने के लिये हिन्दुओं को खान पान, व्याह शादी आदि के कई बंधन बढाने पड़े, जिसके अपने अपने वर्गों को प्रत्येक जाति बाहरी में प्रभावों से बचाती रही। जो कार्य वर्माचार्य और उन्नति के लिये किया गया था उसके फलस्वरूप दिनों के फेर से, हिन्दु जनता में प्रगतिशीलता के स्थान पर स्थित रुढ़िवाद तथा कठोरता ने पैर जमा लिया। यह माना जा सकता है कि अन्धविश्वास

अन्धकार के समय में भारतीय सभ्यता को बचाने में बहुत कार्य किया था परन्तु यह भी स्वीकार करना होगा कि मुसलमान वर्ग के अविश्वास ने उनको स्थापित शक्ति का बल दिया और हिन्दु अविश्वास ने हिन्दुओं की शक्ति को कमो स्थापित नहीं होने दिया ।

समय समय पर देश की सामाजिक दशा सुधारने के लिये अर्माचार्य भी हुए । स्वामी रामानन्द तथा उनके बादकवीर जो साम्प्रदायिक कटारता तथा जाति पाति के पन्थों के विरोधी थे । कृष्ण मठ के आचार्यों में बलरामाचार्य तथा बिठलनाथ जैसे उदार आचार्य हुए । अष्टाचार्य के मज्जिमविया ने ही उनके स्थानों पर जाति पाति के प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया है । महात्मा तुलसीदास ने राम चरित्र मानस के उत्तरकाण्ड में जो कलियुग के वर्णन और समाज का वर्णन किया है, उसमें उन्होंने वस्तुतः अपने समय के हिन्दु समाज का ही चित्र अंकित किया है ।

वार्षिक पृष्ठभूमि:

मुगल बादशाहों ने अपना राज्य खाली तलवार की शक्ति और वार्षिक जाशानों के बल पर ही किया । उनका ध्येय राज्य प्रसार के साथ मुसलमान वर्ग का प्रसार करना भी था । उन्हीं हिन्दु समाज ने भी अपना राजनैतिक स्वतन्त्रता छोड़ कर अपने वर्ग और सभ्यता को रक्षा करने के लिये कुछ आन्दोलनों के प्रतिपादित जितने भी ग्रन्थ हमें उपलब्ध होते हैं उनमें देश में प्रचलित अनेक वार्षिक मतों व पन्थों का स्पष्टन स्पष्टन तो प्राप्त होता है परन्तु मुसलमानों के वर्ग के विरुद्ध एक स्पष्ट भी नहीं मिलता । ही सुफ़ी मुसलमान ऐसे अवश्य हुए हैं जिन्होंने हिन्दु वर्ग को भी उदारता से देखा तथा हिन्दु व मुसलमान दोनों मतों की आलोचना भी की थी । परन्तु हिन्दी के हिन्दु लेखकों में से किसी ने भी यह साक्ष्य नहीं दिया । सम्भव है आचार्यों व पण्डितों को राजदण्ड का भय रहा हो । इस प्रकार देश में एक ओर मुसलमान वर्ग का प्रचार था तथा दूसरी ओर हिन्दु वर्ग में भिन्न भिन्न प्रकार के वार्षिक आन्दोलन हो रहे थे । अष्टाचार्य काठ के पूर्व कुछ ऐसे भी महात्मा हुए जिन्होंने यह अनुभव लिया कि मुसलमान भारत से जा नही सकते और हिन्दु जाति

का नाश अवश्यम है । उन्होंने इन दोनों ही वर्गों को मिलाने का भी प्रयास किया और इन दोनों वर्गों को कड़ा जालीबना भी की । पारतीय सुखमान वर्ग के अन्तर्गत ऐसे महात्मा सुफी फकीर कहलाते थे और हिन्दु वर्ग में सन्त । इन सुफी सन्त महत्ता ने एक बार वेद, उपनिषद् आदि श्रुति तथा अनेक स्मृति ग्रन्थों की अवहेलना कर दी तो दूसरी बार उन्होंने कुरान की शरियत की अपेक्षा भी की ।

पारतीय धार्मिक आन्दोलन सुखमान वर्ग प्रचार की, प्रतिक्रिया के रूप में होने के अतिरिक्त, जैन, मायावाद, कृयावाद, शैव, शाक्त, वैष्णव, शान्ति, योग, अतः अनेक रूपों में एक दूसरे की प्रतिद्वन्द्विता में भी फँस रहा था । अष्टाशाय के समय में आकर इन भिन्न भिन्न मतों में धार्मिक क्षेत्र में पश्चित के आन्दोलन ने बहुत प्रभुता पाई थी । और अकबर के राज्य काल में तो यह पश्चित का आन्दोलन देशव्यापी हो गया था । ईसा की दसवीं शताब्दी तथा उसके आगे बौद्ध धर्म के पूर्ण निर्वासन के बाद शैव के मायावाद कथास, ज्ञान तथा योग मार्गों का देश के धार्मिक क्षेत्र में इतना प्रचार हुआ कि जनता लोकधर्म से उदासीन होने लगी । वर्ग ने लोक धर्म का रूप ढोड़कर व्यक्तित्व साधन का रूप ले लिया । उस प्रवृत्ति ने एक ओर तो समाज में दम्प को जन्म दिया और देश में उसके कारण अकर्मस्यता फैली । उस समय कुछ ऐसे मत पन्थ भी बने पड़े जिनके समर्थकारों का वेदशास्त्र का ऐशमात्र भी ज्ञान नहीं था । जोर स्वर उथर से वर्ग की दस पाँच बातें सुन सुनाकर अपढ़ जनता में एक पन्थ या मत खड़ा करके सिद्ध गुरु बनने का दावा करते थे । श्री बल्लभाचार्य जी ने अपने कृष्णाग्रय में अनेक जादों के रूप में प्रचलित पातण्ड पन्थ का उल्लेख किया है । परमानन्ददास जी ने भी उस समय की अवस्था पर हस्त प्रकट किया है । उनके अनुसार वेदवादी ब्राह्मण जो अपने को वेद का ज्ञानी कहते थे, वे भी विगड़ गये थे ।

भारत वर्ष एक वर्ष प्रमान देश रहा है । बहुत प्राचीन काल से वर्ग साधना के तीन मार्ग ज्ञान, योग, कर्मयोग और पश्चित योग यहाँ प्रचलित रहे हैं । ईसा के

सैकड़ों वर्ष पहिले से भारतीय धर्म वादना में मज्जित की विशेष स्थान प्राप्त रहा है । श्री महाभारत गीता में मज्जित की पूर्ण प्रतिष्ठा यह सिद्ध करता है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में वैष्णव धर्म व बौद्ध धर्म में बहुत संघर्ष रहा है । कुशन वंशी, राजाओं को बौद्धमतवलम्बी होने के कारण ईसा की पहिली शताब्दी में उत्तर में भागवत धर्म कुछ शिथिल होने लगा था । कनिष्क ने बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन दिया था किन्तु यह हेतिल सिद्ध तथ्य है कि गुप्तवंश के राजाओं के समय में (ई० ४००-६००) भागवत धर्म व वैष्णव मतों का सुव प्रचार हुआ । उत्तरी भारत से ही यह भागवत धर्म और वैष्णव भावना दक्षिणी भारत में गई थी । और वहाँ भी बड़ी तीव्रता से यह विकसित हुई यह हम उत्तर में यह सुके है । गुप्तवंशीय राजाओं ने वैष्णवधर्म भावना के प्रचार में विशेष उद्योग किया था । गुप्त साम्राज्य समाप्त होते ही उत्तरी भारत में बौद्ध व शैव धर्मों का प्रभाव बढ़ने लगा । हर्षवर्धन जैसे कुछ शासकों ने बौद्ध धर्म को अपना कर उसके प्रचार का द्वार खोल दिया । तथ्य तो यह है कि ईसा की सातवीं शताब्दी के परभाव बौद्ध, शैव, सिद्ध, नागमन्थी, सुफी आदि अनेक धर्मों ने होरा जमा लिया और वैष्णव धर्म एक प्रकार से चिखुल दब सा गया । आठवीं शताब्दी में शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट के बोरदार बने से बौद्ध धर्म के फिले तो डूब गये, परन्तु कुछ शैव तत्वों और कुछ वैदिक धार्मिकों को अपनाकर बलने जाते कई सम्प्रदाय बने पर वैष्णव मज्जित भावना बकी ही पडी रही । शंकराचार्य के अद्वैतवाद और मायावाद ने मज्जित के लिये कोई स्थान ही नहीं रहने दिया ।

इस प्रकार उत्तर भारत में ईसा की सातवीं आठवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक वैष्णवी मज्जित भावना चिखुल दबी रही । उस समय में एक तो बौद्ध धर्म का परिवर्तित रूप ज्ञानमान, सहजमान आदि का प्रचार रहा । चौरासी सिद्धों का समय ई० ७६७ से १२५७ (ई० ७७० से १२०० ई० तक) तक माना जाता है । इन सिद्धों का प्रभाव जनता पर बहुत था । इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का कथन है । बौद्ध धर्म विपुल होकर ज्ञानमान सम्प्रदाय के रूप में देश के पूरबी भागों में बहुत दिनों से बला जा रहा था । इन बौद्ध तात्त्विकों के बीच वाचान्तर चरम होना को पहुँचा । ये विचार

से लेकर बासाम तक फैले हुए थे और सिद्ध कहलाते थे । चौराहा सिद्ध उनका मे हूँ है । इन तांत्रिक योगियों को लोग बलौकिक शक्ति सिद्ध समझते हैं । ये अपनी सिद्धियों और विभूतियों के लिये प्रसिद्ध थे -- जनता पर इन सिद्ध योगियों का प्रभाव विक्रम की १० वीं शताब्दी से हो पाया जाता है । और मुसलमानों के आने पर पठानों के समय तक कुछ न कुछ बना रहा ।^१

इन सिद्धों की परम्परा में ही गोरखनाथ ने सबसे अलग अपना नाथपन्थ सड़ा किया जो बारहवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के अन्त तक अपने चर्मोत्कर्ष पर था । इन नाथ पंथियों का प्रभाव उन्नीसवीं भारत की जनता पर कम नहीं था । राजपूताना उनका विशेष गढ़ था । इनकी छठयोग साधना यद्यपि ईश्वरवाद को लेकर बली थी किन्तु घट के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने की बटिल साधना सर्वसाधारण के बस की बात न थी । जनता पर ये योगी अपनी सिद्धियों का ही आत्मिक जमाते थे ।

मुसलमानों के आक्रमणों से बहुत पहिले ही कुछ मुसलमान सूफ़ी भारत में रहने लगे थे । सिंध और गुज्जान में बहुत से सूफ़ी मुसलमान ईसा की ११ वीं शताब्दी में बसे हुए थे । इन सूफ़ियों के शरीर शरीर बहुत से सम्प्रदाय भारत में स्थापित हुए । उनका धर्म प्रचार साधारण जनता में बहुत बढ़ रहा था । बिश्ती सम्प्रदाय की भारत में लाने का ज़ेय स्वाज मुहंमदीन मिश्री को है । जिन्होंने सन् १४६२ में इस भूमि पर इसका प्रचार किया । तीरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सुहारवदी सम्प्रदाय की स्थापना हुई जिसका प्रचार भारत के अनेक स्थानों में हुआ । सिन्ध, गुजरात और पंजाब में इस सम्प्रदाय के कैदर विशेष रूप से स्थापित हुए । उसी प्रकार जोग बल्लर कादरी और नक्षत्रहदी सम्प्रदायों की स्थापना १५ वीं व १६ वीं शताब्दियों में हुई । इन सम्प्रदायों का प्रभाव अपना सरल ईश्वरानुभूती भावना, उदारता और सहिष्णुता के कारण जनसमुदाय में विशेष रूप से पड़ता रहा और समाज के निम्न वर्ग के व्यक्ति, जिनकी समाज में उपेक्षा होती थी जहाँ की सूर्या में इन सम्प्रदायों में दीक्षित हुए ।

इस प्रकार इस सूफ़ी धर्म ने अपने शान्त और अहिंसा पूर्ण व्यवहार से इस्लाम की संस्कृति को जितनी दूर पहुँचा दिया, उतनी दूर सुसंयोजित शासकों की तलवार की नहीं पहुँचा सकी ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्ययुग में कोई बात अठा साँ बर्षों तक उधर भारत में धर्म का कोई एक निश्चित रूप नहीं रहा । मजिहमायना तो इस समय विलुप्त हो चुकी रहा । कार्यार्थियों, लौकिकों, धीरपणियों और काममागीयों ने अपने दीपक कृत्यों द्वारा धर्म को विलुप्त विस्तृत बनाया हुआ था । धर्म में अब विश्वास बहुत बढ़ गया था । ज्ञान, कर्म व मजिह तीनों के संश्लेषित रूप का धर्म में विलुप्त समाप्त था । आचार्य शुद्ध १ । सम्बन्ध में कहते हैं हिंदी साहित्य के आदि काल में कर्म तो अर्थ शून्य विधि विधान, तीर्थाटन और परीक्षण इत्यादि के संश्लेषित धर्म में पहिले से बहुत कुछ बढ़ चला जाता है । धर्म की मायात्मक अनुप्राप्ति या मजिह जिसका सुत्रपात महाभारत काल में और विस्तृत प्रवर्तन पुराण काल में हुआ था, कभी कहीं दबती, कभी कहीं उभरती किसी प्रकार चली जा रही थी । वास्तव में कर्म के तीर्थाटन आदि अर्थशून्य बाहरी विधि, विधानों का लपटन करके सिद्धों आदि ने ही मन्त्र, तन्त्र और उपचारों की उत्पत्ति में ही जनता को उलझाने का कार्य किया ।

जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है दक्षिणी भारत में भी वैष्णव धर्म का प्रचार शुरू चले रहा था । आठवीं शताब्दी के उपरान्त दक्षिणी भारत में इसकी दसवीं शताब्दी से १४ वीं शताब्दी तक कई आचार्य हुए जिन्होंने वैष्णवी मजिह मायना को विशेष प्रथ दिया, अपने सिद्धान्त मार्गों की स्थापना की और संन्यास के माध्यम का लपटन करके मजिह को प्रसूता की । इन्हीं आचार्यों द्वारा वैष्णवी मायना का उदर भारत में पुनस्तथान हुआ । मजिह का जो छोटा दक्षिण की ओर से धीरे धीरे उधर भारत की ओर पहिले से ही आ रहा था, उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पहिले हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिये पूरा स्थान मिला ।

चारहवीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने अपने सम्प्रदाय की स्थापना की । शास्त्रीय पद्धति से सगुण भक्ति का निरूपण करके उन्होंने अपने विशिष्टा ब्रह्माद विद्वान्त का प्रचार दिया । उन्हो की शिष्य परम्परा में स्वामी रामानन्द जी हुए हैं जिन्होंने विष्णु के राम की प्रतिष्ठा की । ये दक्षिण भारत से उत्तर भारत में रहने लगे और यहाँ अपने रामानन्दी सम्प्रदाय की स्थापना की । कबीर दास, रैदास, तुलसीदास आदि उनके शिष्य हुए । उनका व्यक्तित्व अद्भुत था । उन्होंने जाति पृथक्ता के भेद को भी भक्ति के दौरे में मिटाने का प्रयत्न किया । उनके द्विगुण व्यक्तित्व से ही राम के दो रूपों की उपासना का प्रचलन उत्तर भारत में हुआ । तुलसीदास जी ने विष्णु के राम का सगुण भक्ति का अवलम्बन बनाया और कबीर आदि सन्त भक्तों ने निर्गुण राम की उपासना का प्रवर्तन किया । इस प्रकार राम भक्ति और निर्गुण सन्त द्वारा भक्ति का दो प्रमुख धाराएँ मनुष्यों के ह्रिदी साहित्य में नन्ददास जी से पर्व प्रवाहित हुई । निर्गुण धारा के निर्माण में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ ने भी योग दिया । भक्ति के आन्दोलन की जो लहर दक्षिण में आई उसी ने उत्तर भारत में परिस्थिति के अनुरूप हिन्दु मुसलमान दोनों के लिये एक सामान्य भक्ति मार्ग की भी मागना शुरू लोगों में जागृत । ----- पञ्चराष्ट्र देश के प्रसिद्ध भक्त नामदेव । (६० १३२८-१४०८) ने हिन्दु मुसलमान दोनों के लिये सामान्य भक्ति मार्ग का भी आवास दिया । उसके पीछे कबीरदास ने विशेष तत्परता के साथ एक व्यवस्थित रूप में यह मार्ग निर्गुण पथ के नाम से चलाया ।

चारहवीं शताब्दी में दक्षिण में दूसरे प्रमुख आचार्य निम्बाकीचार्य हुए । ये तेलु प्रदेश से आकर वृन्दावन में बस गये थे । गीतार्थविन्द के रचयिता जयदेव उन्हो के शिष्य थे । उन्होंने राधाकृष्ण की उपासना का प्रवर्तन किया और अपना ब्रह्मब्रह्मादी विद्वान्त मार्ग चलाया । उन्हो से प्रभावित स्वामी हरिदास ने सोलहवीं शती में टट्टी सम्प्रदाय की स्थापना की । निम्बाकी सम्प्रदाय को सक्त सम्प्रदाय अथवा सैव सम्प्रदाय भी कहते हैं । इस सम्प्रदाय के अनुयायियों का विश्वास है कि

सनक सनन्दन आदि कृषि इस सम्प्रदाय के जादि जाचार्य हैं । निम्बाके के मत में कृष्ण की परब्रह्म है । वे दासे हीन, कल्याण गुण की राशि ब्रह्म समूह में आगे तथा पर हैं ।^१ श्री हरिव्यास देव जी दशरुकी के माध्य में ब्रह्म को अद्वैत बताते हुए कहते हैं कि कृष्ण की शक्ति व्यक्त और अव्यक्त, तथा अक्ष और अक्षी रूप से व्याप्त है । इसलिये उसमें द्वैत नहीं है । वह जीव जगत से विलक्षण है इस लिये द्वैत भी है । कृष्ण की शक्ति अचिन्त्य और अनन्त है । वे रेश्मय और मायुर्य दोनों के जाग्रत हैं । यही ब्रह्मकृष्ण ने अपनी प्रेम और मायुर्य का अविच्छादी राधा तथा अन्य आह्वाहिनी मापी स्वरूप शक्तियाँ से पारबेष्टित रखे थे, निम्बाके सम्प्रदाय के उपास्य के हैं ।^२

तीसरे जाचार्य स्वामी मन्नाचार्य (सन १२२७-१२७६) ने अपना द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय चलाया । श्री मान्नाचार्य का जा भिर्वाव काँठ श्री राधास्वामी के बाद था । इनके दूसरे नाम आनन्दतीर्थ तथा पूर्ण प्रज्ञा भी हैं । उन्होंने शंकर के मायावाद तथा अद्वैतवाद का खण्डन, विष्णु की प्रधानता का प्रचार तथा द्वैत सिद्धान्त की स्थापना की । इनकी मृत्यु का समय सन १२७६ ई० बताया जाता है । इनके मत का उत्तरी भारत में भी प्रचार हुआ ।

माध्यमत में सुखित माँग चार प्रकार का कहा गया है -- सामीप्य, सामीप्य, साहचर्य तथा सामुज्य । सामीप्य सुखितमाँग की अवस्था में सुखत जीव मायान के लोके में पहुँचता है और वहाँ रहकर उच्छानुकुल माँग करता है । सामीप्य सुखित की अवस्था में जीव मायान के समान रहकर आनन्द माँग करता है । साहचर्य सुखित अवस्था में सुखत जीव ईश्वर के समान गुण और रूप लोभ करता है । परन्तु मायान की समान रूपता की वारण करके भी वह परमानन्द माँग में कभी सफल नहीं होता । साम्राज्य सुखित अवस्था में, वह मतानुसार, मायान में प्रविष्ट होकर मायद् रहे द्वारा जो माँग साधन होता है वही सामुज्य

१- निम्बादित्य देश रुकी, हरिव्यास देव, पृ० ४।

२- वही

पृ० ३२ ।

सुदित है। वैष्णवों का सामान्य सुचित है अधिकारी है। प्रत्यक्ष में भी को भाव
 वैश्व में प्रविष्ट करना पड़ता है। वैश्व जमा रह जाती है। राधावल्लभा सम्प्रदाय
 के प्रवर्तक गोस्वामी हित हरिश्च (जन्म सन् १५०२ ई०) इन्होंने अनुयायी गोपालमठ
 के शिष्य थे।

अष्टाशय के समय में वल्लभ सम्प्रदाय के साथ ही वैष्णव सम्प्रदाय का भी
 प्रादुर्भाव हुआ। वैष्णव महाप्रभु का जन्म सन् १८८५ ई०^१ में बंगाल के तृतीय स्थान
 पर हुआ था। उस समय बंगाल में विष्णुमयित का बहुत ही कम प्रचार था। बहुत
 लोगे का तो और मनसादेवी के उपासक थे। राज्यों का उस समय बंगाल में जारी था।
 बारह वर्ष की वरुणा तक वैष्णवों की विद्वता की ख्याति स्वामी के बाहर बंगाल में
 फैल गई है। एक बार वे अपने पिता का पिन्ड दान करने गया गये। वहाँ
 उन्हें एक ईश्वरपुरी नामकी परम वैष्णव मिले। उन्होंने ही वैष्णवों की मार्ग
 मार्ग में प्रविष्ट कराया। उस समय वे गृहस्थ थे। कुछ समय बाद उन्होंने अपनी
 माता व स्त्री को छोड़कर स्थाव ले लिया और रामेश्वर, वृन्दावन आदि तीर्थ
 स्थानों की यात्रा की। वे कृष्ण का नाम संकीर्तन में करते करते प्रेम में मग्न होकर
 नाचा करते थे और उनकी आँखों में प्रेमाशु बहा करते थे। उन्होंने मयित और
 कीर्तन का जगह जगह प्रचार किया। श्री नित्यानन्द तथा अद्वैत आचार्य, ये दो
 विद्वान् मयित वैष्णव महाप्रभु के सत्कारी शिष्य थे। महाप्रभु ने उन दोनों महात्माओं
 को बंगाल में वैष्णव धर्म प्रचार के लिये नियुक्त किया था। तथा इनमें से शिष्य
 वृन्दावन में धर्मप्रचार के लिये रखा करते थे जिनमें श्री रूपगोस्वामी, श्री सनातन
 गोस्वामी और श्री जीवगोस्वामी मुख्य रूप से प्रचार कार्य करते थे। ये तीनों महात्मा
 अष्टाशय कवियों के समकालीन थे। उन तीनों मयितों की प्रशंसा, सामादाय ने अपने
 ग्रन्थ मयितमात्र में की है।^२ जिससे पता चलता है कि श्रीकृष्ण वैष्णव और उनके
 अनुयायी, राधाकृष्ण झगड़ रूप के वरणा के उपासक थे। कृष्ण वैष्णव जिस समय
 द्रव्य के गये उस समय वर्तमान वृन्दावन में दो बार पारों को छोड़कर कोई वस्ती नहीं

१- कल्वरुट्ट हरीट्टेज नाक इण्डिया सीरज, भाग २, पृ० १३१

२- मयितमात्र मयितसुधा स्वाद तिलक, रूपकला, अन्व ६३, पृष्ठ ६१६

नहीं थी । चारों ओर जमुना के कूलों के जंगल थे । श्रीकृष्ण चैतन्य ने उस स्थान को एक तीर्थ स्थान बना दिया और तब से आज तक वृन्दावन एक बड़ा तीर्थ स्थान समझा जाता है । श्री बल्लभाचार्य जी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु जी लगभग सम्भवस्क थे । अष्टादश के प्रथम चार कमियों के जीवन काल में ही श्री बल्लभाचार्य जी ने अपने सम्प्रदाय का, सिद्धान्त और साधन, दोनों दृष्टियों से एक स्वतन्त्र रूप लपटा कर दिया था ।

चैतन्य महाप्रभु ने कोई सिद्धान्त तथा साधन सम्बन्धी ग्रन्थ नहीं लिखा । वैष्णव आचार्यों की बहुधा यह प्रथा चली जाती थी कि किसी सम्प्रदाय को चलाने से पहले वे प्रस्थानत्रयी अथवा केवल ब्रह्मसूत्रों पर ही, माध्यम लिखकर अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का व्याख्यान पंडित मन्ढली में कर देते थे । इस प्रथा का श्री बल्लभाचार्य जी ने निरासा था । चैतन्य सम्प्रदाय के इतिहास तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के अवलोकन से पता चलता है कि अष्टादश के माध्यम पर चैतन्य सम्प्रदाय दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव नहीं पड़ा । चैतन्य सम्प्रदाय के दार्शनिक तथा मयित सम्बन्धी सिद्धान्तों को देखने से पता चलता है कि उसमें मयित के चारों भावों को जैसे हुए की मधुर भाव पर विशेष बल दिया गया है और बल्लभ सम्प्रदाय में चारों भावों को मानते हुए तथा मधुरभाव को सर्वोत्कृष्ट बताते हुए भी, बालेभाव पर अधिक बल दिया गया है । इसलिये यह कहना कि अमुक सम्प्रदाय का अमुक सम्प्रदाय पर निश्चितपूर्वक ऐसा प्रभाव पड़ा, कठिन है ।

अष्टादश के समाप्तीन व्रज में कृष्ण भूषा का एक सम्प्रदाय राधाचलमीय की प्रचार पा रहा था । इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री स्वामी हितहरिवंश जी थे । राधा बल्लभ की पूजा विधि चलाने से पहिले श्री हित जी का नाम हरिवंश था । वे सखारामपुर जिले के देवन गांव के रहने वाले गौड़ ब्राह्मण थे । इनके पिता का नाम श्री ठयास था । इनके वंशज आजकल देवन वृन्दावन दोनों स्थानों पर रहते हैं । इनका जन्म १५५६ वि० में हुआ था । ये पहिले माध्व सम्प्रदाय थे बाद को ये निम्बार्क स्वामी की श्रीकृष्ण मयित पद्धति का अनुसरण करने लगे । कृष्ण से राधा की मयित को उन्होंने अधिक महत्त्वशालिनी व शीघ्रफलदायिनी माना था ।

आचार्य विष्णुस्वामी को इस और बड़े महत्वपूर्ण आचार्य थे। उन्होंने अद्वैतवाद को माया से रहित मानकर ब्रह्माद्वैतवाद को नीवढाली। कहा जाता है कि वे प्रसिद्ध महाराष्ट्री मठ ज्ञानेश्वर महाराज के गुरु थे। बल्लभ सम्प्रदाय ग्रन्थों से तथा विद्वान्तिथों से यह पता चलता है कि श्री बल्लभाचार्य को विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की उच्छिन्न गद्दी पर बैठे और उन्होंने उसी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के आधार पर अपने सिद्धान्तों को निर्धारित किया। यह भी जनप्रति है कि महाराष्ट्र के ज्ञानदेव, नामदेव, केशव, जिलान, हीराजल और श्रीराम, विष्णुस्वामी मठावलम्बी थे। महाराष्ट्र में प्रचार पाने वाला मागधत धर्म को पीछे बारकरी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसके अनुयायी ज्ञानदेव और नामदेव आदि उक्त मठ थे, विष्णुस्वामी मठ का ही अपान्तर है।

इस प्रकार उपरोक्त सभी आचार्यों के प्रभाव और प्रेरणा के फलस्वरूप मन्त्रित के अनेक सम्प्रदायों रामानन्दीय सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय (गौड़ीय सम्प्रदाय) राधावल्लभीय सम्प्रदाय, हरिदासी या छत्ती सम्प्रदाय (टट्टी सम्प्रदाय) तथा श्री बल्लभाचार्य की का मुष्टिमार्ग आदि द्वारा मन्त्रित का विशेष कर कृष्ण मन्त्रित का एक जीव वातावरण संस्कृत भारत में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार के मध्य कृतिन वातावरण में प्रथम मन्त्रित नन्ददास व सुरदास जी के काव्य की सरस प्रतीतिनी प्रकाशित हुई। इन सम्प्रदायों का एक दूसरे पर प्रभाव पाया जाता है। यद्यपि हमारे दोनों कवियों का सम्बन्ध बल्लभ सम्प्रदाय से है तथापि उपर्युक्त सभी सम्प्रदायों की सामूहिक देन मन्त्रित का वातावरण निर्माण करने का महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं। नन्ददास जी व सुरदास जी के काव्य निर्माण में थोड़ा बहुत सभी का योग है। नन्ददास जी के समय में वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार श्री रूप गोस्वामी के प्रभाव से बहुत हुआ था। जसा कि हम कह चुके हैं नाथ पंथी योगियों का उत्तर भारत में विशेष प्रभाव रहा है यद्यपि यह साम्प्रदायिक विचार वारा नन्ददास के समय में आते जाते विलुप्त हो गये थे। किन्तु तब भी इस उतर कोई कोई नागपंथी योगी दिखाई दे ही जाता था। इन नागपंथियों के शून्यवाद और छयागे तथा निर्गुण ब्रह्मवाद की भावना कबीर आदि सन्तों में भी पाई जाती है। निर्गुणवादो केतु सगुण वाद

का एक विवाद सा तड़ा हो गया था । यही कारण है कि निर्गुण, योग, ज्ञान वादि मार्गों को अनुपयुक्तता तथा विरोध की अश्रित्यजित सुरदास, परमानन्द दास तथा नन्ददास वादि सभी सगुण मन्तों से पाई जाती है । नन्ददास का मूल गीत निर्गुण सगुण के इस संघर्ष को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है ।

बल्लभ दिग्विजय से पता चलता है कि आचार्य बल्लभाचार्य ने अन्ततः उत्तरी भारत का प्रमण करके अपने छुदाहेत सिद्धान्त का प्रचार किया था । अनेक स्थानों पर उनका शिरो तथा अन्य मतावलम्बियों से शास्त्रार्थ हुआ था । उस समय बल्लभाचार्य के वैष्णव प्रभाव से पूर्व अन्ततः ब्रज में शिरोमासकों का प्रभाव था । शिरो के ही मन्दिर मथुरा आदि सभी स्थानों पर अधिक पाये जाते थे । और उनकी शक्ति की उपासना ब्रज होती थी । बल्लभाचार्य ने अपने छुदाहेत सिद्धान्त तथा पुष्टि मन्त का ब्रज प्रचार किया और ब्रज बन्दल को तो उन्होंने अपने सम्प्रदाय का केंद्र बना लिया । ब्रज बन्दल के अतिरिक्त राजपूताना और गुजरात में उनका विशेष प्रचार हुआ । इस पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय ने जोपात होकर ही नन्ददास ने भी अन्य कवियों की भाँति तत्कालीन कृष्ण लीला गान से गुंजारित वातावरण में अपनी पुरा काव्य ध्वनि मिलाई ।

नन्ददास जो के अन्ततः हम सुरदासित्य पर एक दृष्टि डालकर यह जान सकते हैं कि सुरदास जो के साहित्य पर इन प्रचलित परम्पराओं का कितना, प्रभाव पड़ा । सुर एक उच्चकोटि के मन्त थे और एक परिनिष्ठित सम्प्रदाय में जोपात थे । सम्प्रदाय में जोपात होने से पहले के पदों पर उन परम्पराओं का बितना प्रभाव परिलक्षित होता है उतना उनका साम्प्रदायिक साहित्य पर नहीं । उनके विनय के पदों में भी केवल सामाजिक परिस्थितियों की ही कानूनी मिलती है, राजनीतिक उल्लङ्घनों से सुर का कोई सरोकार प्रतीत नहीं होता । उनके विनय के पदों में समाज का जो चित्रण हुआ है, उसमें परम्परागत विचारों का ही बाहुल्य है । जो प्रायः सभी अन्ततः एक मन्त कवियों की रचनाओं में समान रूप से उपलब्ध होते हैं । प्रेममार्गीय कवियों के अतिरिक्त इस युग के सभी कवियों ने सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों से अन्ततः ही प्रकट किया है । जायसी ने अवश्य

शेरशाह के राज्य का लक्षिक वर्णन अवश्य छोड़ दे दिया है । शूरदास के साहित्य में धार्मिक अराजकता तथा अत्याचार का कोई संकेत नहीं मिलता । केवल सामाजिक दुर्यवस्था का ही वर्णन मिलता है । कुछ बालीक्यों ने उनके पदों से विशेष परिस्थितियों के चित्रण के अनुमान लाये हैं, परन्तु वे सब दूर की सुभा ही जान सकती है ।

सम्प्रदाय में दीक्षित होने के परदास का जो शूर साहित्य है उसमें सामाजिक अथवा राजनीतिक चित्रण लीजना आकाश पुष्पा के प्रति लाजयित होना ही कहा जा सकता है । उस साहित्य में ब्रज वासियों के आनन्द, उत्सव आदि का जो चित्रण उन्होंने किया है, उसे सामाजिक परिस्थितियों का प्रतीक माना जाय तो वह कुछ सतक्या से भी उत्कृष्ट ठहरेंगा परन्तु इस प्रकार की अटकल लगाने से पूर्व यदि पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों पर प्रक्षेप कर लिया जाय जिसके अनुसार गरीब, राधा, कृष्ण, वृन्दावन आदि सब इस लोक से नहीं बोलोंक से सम्बन्ध रखने वाली बातें हैं तो ज्ञात होगा कि शूर के ये वर्णन इस मौलिक जगत् से सम्बन्ध ही नहीं रखते । विषय की दृष्टि से जहाँ शूरदास में एक ओर पूर्ण मौलिकता है वहाँ दूसरी ओर वे परम्परा व सम्प्रदाय दोनों से प्रभावित भी हैं । उत्सवों, पर्वों आदि का वर्णन भी परम्पराओं और लोकगीतों पर आधारित कहा जा सकता है । शूर ने कवि होने के नाते पुराणों की कथाओं को आवश्यक परिवर्तन और परिवर्धन के साथ ग्रहण किया है । फिर भी उन पर परम्पराओं व सम्प्रदायिक प्रथाओं का विशेष प्रभाव कहा जा सकता है ।

शूरदास जी के सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि यद्यपि वे पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित थे और जीवन पर्यन्त सम्प्रदाय की सेवा में लगे रहे फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनके ऊपर समसामयिक अन्य वैष्णव सम्प्रदायों का प्रभाव विलुप्त नहीं पड़ा था । जहाँ एक ओर उनके साहित्य में हमें नाथ सिद्ध आदि सम्प्रदायों के संकेतों के साथ साथ सन्तों की वाणियों से प्रचलित पारिभाषिक शब्दावली व दार्शनिक सिद्धान्तों के उल्लेख मिलते हैं वहाँ दूसरी ओर अन्य वैष्णव सम्प्रदायों का प्रभाव भी स्पष्ट उद्घात होता है । वैष्णव आचार्यों के आगमन से पूर्व ब्रजभूमि में

शिव मणित का प्रचार था और स्वयं सुरदास जी अपने सम्प्रदाय से दीक्षित होने से पछिछे रस नहीं थे तो शिवमणित के प्रभाव से स्वयं भी नहीं थे ।

वास्तविकता तो ये है कि ममत प्रवर सुरदास जी मणित बान्दोलन के अपार पारावर थे । छवती उतराती जन साधारण को नाँका के कर्णधार कहे जा सकते हैं । जिन्होंने मत्स्यतन्त्रों से काफिर बात से ढगमगाती हुई उस साधना तरणि को प्रेम मणित के पत्तवारों से ब्रजोंके सुरम्य तट पर लाकर रोड़ा कर दिया । जनता की बुद्धिक मनायुक्तियों का परिष्कार कर उन्हें ब्रह्म कृष्ण की और उन्मुख करके सुर ने लोके कर्याण का बड़ा मारी कार्य किया ।

उस प्रकार हमने देखा कि सुर व नन्ददास की काव्य कला पर उस समय की सामाजिक, राजनैतिक, वार्मिक तथा अन्य परिस्थितियों का कितना व किस सीमा तक प्रभाव पड़ा ।

उपसंहार

सूरदास और नन्ददास का तुलनात्मक अध्ययन एक प्रकार का बौद्धिक व्यायाम माने है, फिर भी शोध की दृष्टि से प्रस्तुत विषय का महत्व नकारा नहीं जा सकता। सूरदास जी अपने समय के विख्यात महात्मा एवं कवि थे। तुलसीदास जैसे प्राग्जि कवि भी उनके प्रभाव से नहीं बच सके। तुलसी के अनेक पदों में सूर की शायी स्पष्ट होती जा सकती है। कर्मपद लो ज्यों के त्यों ही मिलते हैं। फिर मजा सूरदास के प्रभाव से नन्ददास कैसे बच सकते थे। वे तो उसी सम्प्रदाय में दीक्षित थे जिसमें सूरदास जी परममहत्, उत्कृष्ट कवि और सम्प्रदाय के स्वामी के रूप में पहिले ही प्रसिद्ध थे। यही नहीं विच्छल दास जी ने नन्ददास की दीक्षा देकर कीर्तन, सेवा चिन्तन के लिये सूरदास जी के पास छोड़ दिया था। इसी महीने सूरदास जी के सम्पर्क में रहकर नन्ददास ने सम्प्रदाय का ज्ञान ही प्राप्तही किया परिक काव्य परिपाटी की सूरदास से सीली।^१ नन्द नन्ददास हित साहित्य उलरी कीन के अनुसार सूरदास ने साहित्य उलरी का रचना नन्ददास के ही लिये की थी। जो भी हो नन्ददास के काव्य अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन पर सूरदास का प्रभाव विचार, भाव और शैली सभी रूपों में पड़ा है।

नन्ददास ने अपने पद्यगीत का उद्देश्य सूरदास के अनुकरण पर अगुणा मन्त्रित की निर्गुण मन्त्रित और ज्ञान तथा कर्म पर विजय विज्ञान का रसा है। मागवत में न तर्क मिले हैं और न यह उद्देश्य। अवश्य ही यह प्रेरणा नन्ददास जी को सूरदास की मिली होगी। यह निर्विवाद है कि अष्टशाय के कवियों में सूरदास जी अग्रगण्य हैं, उनके बाद रत्ना परिमाण, पद साहित्य तथा माया मायुर्य की दृष्टि से नन्ददास का ही स्थान है। सूर के नन्ददास पर प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता परन्तु उसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि नन्ददास जी ने सूरदास जी का अनुकरण किया है। नन्ददास जी के प्रत्येक ग्रन्थ पर उनकी अपना मौलिकता की छाप है। डा० मनमोहन गौतम ने अपने शोध प्रबन्ध सूर की काव्य कला में रक्षा विज्ञान का प्रयत्न करते हुए लिखा

हैं -- सुरदास जी ने मागवत को आवार बनाकर द्वादश स्कन्धों में सुरदासर की रचना की है । नन्ददास जी मागवत का ही अनुवाद करना चाहते थे । मागवत के दशम स्कन्ध के १ से २६ अध्यायों का मागवत दशम स्कन्ध के नाम से उन्होंने दोहा और चौपाइयों का अनुवाद भी किया । सम्भवतः अनुवाद कार्य को सुभाष्य मानकर उन्होंने कद कर दिया । नन्ददास जी जानते थे कि सुर दासर मागवत का पूर्ण अनुवाद नहीं है, पूर्ण अनुवाद की लोकप्रियता के लीम में उन्होंने दशमस्कन्ध का पूर्ण अनुवाद करना चाहा । किन्तु अपनी मूर्त तब जात हुई जब वे २६ अध्याय लिख चुके^१ किन्तु वास्तविकता यह नहीं है, उनके मागवतदशमस्कन्ध पर मागवत का जीया ही प्रभाव है यह कथ्य है कि उन्होंने प्रेरणा सुरदास जी से ही ग्रहण की और उनका प्रमानीत सुर दासों में मागवत का मागवतनुवाद है तथापि उसे मालुमता से रहित भी नहीं कहा जा सकता ।

वष्टथाय के कवियों में लोकप्रियता की दृष्टि से सुरदास के पश्चात नन्ददास का स्थान है । इस पर लम्बा सभी विद्वान् एकमत है । नन्ददास के काव्य में जितना साहित्यिक सौष्ठव है उतना ही उसमें पृष्टि सम्प्रदाय के विद्वान्त और मदित का समावेश मिलता है । मदितरस तो उनके काव्य में तबालब परा है । नन्ददास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अध्ययन से यह भी पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि नन्ददास एक अवधारणा सख्य प्रतिमा से सम्पन्न कवि है । दार्शनिक चिन्तन से अनुर-मूल और मदितमायना से वीतप्रति कवि की रचनाये शयश और उद्वता दोनों दृष्टियों से समृद्ध होनेके कारण मध्यकालीन कृष्णामदित साहित्य की अमूल्य निधि बन गई है ।^२ कवि की रचनाओं के अन्तःशब्द और साम्प्रदायिक साहित्य के बाह्य शब्द से स्पष्ट है कि वे मायुक प्रकृत के व्यक्तित्व थे, परन्तु मावपना के साथ साथ उनमें हुडि फा की हुडि नहीं था । माय और हुडि का अन्तर्लन रखने वाले कवियों की संख्या मध्यकाल में बहुत कम है । परन्तु नन्ददास के व्यक्तित्व का यही वैशिष्ट्य है, जिसका प्रतिफल न उनकी सभी रचनाओं में हुआ है । यह भी स्मरणीय है कि नन्ददास अपने प्रारम्भिक जीवन में एतन विषयासक्त और मृगार प्रि. थे कि सम्प्रदाय से दौड़ित होने पर लिख

१- सुर की काव्य कला डॉ० मनमोहन गौतम पृष्ठ ३४० एवं ३६६ द्वितीय सुसंविित संस्करण
२- नन्ददास, रमेश कुमार तट्टर, पृ० ३६९

यह रचनाओं में भी उनके मन का शृंगारिक संस्कार नहीं छूटा है। फलतः उनकी मन्त्रित परक रचनाओं में पाठक का प्रायः लौकिक शृंगार की प्राप्ति ही जाती है।

नन्ददास जी पर संस्कृत काव्य शास्त्र की परम्परा का गम्भीर प्रभाव पड़ा है। वस्तुतः नन्ददास व्युत्पन्न कवि थे। अतः उनका शास्त्रज्ञान अत्यन्त प्राप्ति एवं परिपक्व है। उपमंजरी व रासपञ्चाध्यायी के कई अंश शास्त्र के अध्यायों का ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। रसमंजरी में तो आचार्य प्रवृत्ति स्पष्ट ही हैं। विरह मंजरी के आरम्भ में पाण्डित्य प्रदर्शन का चेषटा की गई है। कहने का आशय यह है कि नन्ददास आचार्य पहले हैं और कवि बाद में। नन्ददास जी की व्युत्पत्ति जयदास उनके शास्त्रज्ञान को प्रकट करने वाली उपर्युक्त कृतियों को दृष्टि में रखते हुए हम उन्हें रीतिग्रन्थकारों में अग्रणी कह सकते हैं। रीति की परम्परा हिन्दी साहित्य में अनसूती ही नहीं आई। नन्ददास के समय से ही रस प्रवृत्ति का विकास ही चला था।

नन्ददास के काव्य का अनुभूति का तो हृदयवर्जक है ही, विचार का भी अपने पूर्णवैभव के साथ उनकी रचनाओं में प्रस्तुत है। श्रीकृष्ण सिद्धान्त पञ्चाध्यायी और भाषा दशमस्कन्ध के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की तत्त्वामिनि-वेशिनी बुद्धि और प्रसार में साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के शास्त्र का ग्रहण करने में अत्यन्त सफल रही है। नन्ददास के काव्य में अभिव्यक्त दार्शनिक सिद्धान्तों के विषय में यह स्वरणीय है कि वे उनके काव्य के अनुभूति का पर बलात् आरोपित नहीं किये गये हैं। प्रतिपाद के साथ संयुक्त होकर वे अत्यन्त सरलभाव से पाठकों तक प्रेषित हुए हैं। मीरगीत इसका अपवाद है।

भाव और विचार के साथ साथ कला का स्वरूप भी नन्ददास के काव्य में परमोत्कर्ष है। काव्य के शिल्प का ही प्रति जासक होने के कारण उन्हें जहिया की उपाधि से विभूषित किया गया है। नन्ददास की भाषा में रसातुरित वर्ण योजना, लीलात्मक रुचि विधान, विज्ञात्मक विशेषणों की निबन्धना, रीति, वृत्ति और गुणों का भावोत्कर्षकारी समावेश आदि कतिपय विशेषताये ऐसी हैं जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि कवि अपनी रचनाओं में शिल्प का ही विषय में सावधान हैं। पूर्वमध्यकाव्य और किसी कवि ने शब्दों के ऐसे गठन की ऐसी अपूर्व क्षमता नहीं है।

यदि देखा जाय तो नन्ददास का काव्य उस मनोरम चित्र के समान है जिसे बाल्य काल में समझ अंगों का चित्रावली कड़ी सुन्दरता के साथ दिया रहता है । उनके काव्य में अप्रस्तुत का विधान तथा जटिलारों का समावेश, अनुप्रासों में तीव्रता लाने के लिये तथा उन्हें सरलता पूर्वक पाकर के हृदय तक पहुँचा देने के लिये निमित्त कवि की वाणी के अन्तरंग मधुमय मीमंसा वाचनों के अन्यतम रूप में स्मृत हो चुका है । नन्ददास जो स्वयं माया के बनी थे । उपसृक्त शब्दों को चुन चुन कर कलात्मक ढंग से काव्य में यथास्थान रखने में वे निराला पारंगत थे । उनका रासपवाध्यायी तो अपनी कृति मधुर माया, शीत एवं कर्मलान्त पदावली के कारण हिन्दी का गीत गीतिका की कही जा सकती है । अपनी अधिकांश कृतियों में कवि ने गम्भीर अविद्यमान- तथा क्षम माया के मनोरम पदावली के द्वारा अविद्यमान करने में अद्भुत सामर्थ्य का परिचय दिया है । उनके चुने हुए ग्रन्थों में प्रसादमयी भावना और अद्भुत प्रतिभा विलास के साथ साथ सरस कर्मलान्त पदावली एवं माया मायुयें देखने को मिलता है । जो अन्य कवियों की तो बात ही क्या सुरदास व तुलसीदास में जो कदाचित कुछ ही स्थानों पर ही दृष्टिगत हो सके । नन्ददास जो कौशल प्रकार की विशेषता उनकी अन्तःप्रेरणा तथा प्रसन्न प्रतिभा का मधुमय फल है । उनमें अन्तर्गत उन्नत युक्त कमनीय रचना वाचनी, प्रतिभा के साथ वाचनिक का ऊँचा पैर और मधुर भावना का मध्य समावेश हुआ है । जिससे कवि के तर्ज एवं भावपूर्ण मानस का सहज परिचय मिलता है ।

वस्तुतः नन्ददास का काव्य बाहर कीतर एक ही रस से ओत प्रोत है और वह है मधुमय प्रेम रस । इसमें जहाँ जैसे आनन्दमन्द ब्रजवन्द के यश का उल्लास वर्णन हो अवलोकित होता है । परन्तु उन्नत विवेक से यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिये । कि नन्ददास के काव्य में अनुप्रास का शैलित्व है । उनके काव्य में मात्र व कज दोनों का ही उद्दिष्ट है । हम समझते हैं कि और कवि गड़िया वाली उन्नत नन्ददास की मधुरा में इतना जाँटा नहीं जितना पटाया है । आलोचकों के मस्तिष्क पर उस उन्नत का पूरा उल्लास छावी रहा है कि किसी ने उनके काव्य की भाव सम्पत्ति को देखा ही नहीं है । सभी ने उनके अविद्यमान काँशल का हास्यगान किया है ।

कृत्य तो यह है कि नन्ददास के काव्य का मात्र वैभव, कला के ऐश्वर्य से किसी की दृष्टि में कम नहीं है । अन्तर्लोकगत्वा निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि नन्ददास अत्यन्त मासुक मन्त्र कवि हैं और अष्टदाय काव्य में वे सुर के उपरान्त द्वितीय स्थान के अधिकारी हैं ।

मध्यकालीन वैष्णवमन्त्र कवियों में सुरदास का स्थान शीर्ष पर है । नन्ददास के अतिरिक्त कनिगण को उनकी बराबरी नहीं कर सके हैं । जयदेव, चण्डीदास, धियापति और नामदेव की सरस वाण्यारा के रूप में मन्त्रित कृणार की जो कदा किनी एक पिरिष्ट लीमा कूँ में प्रगाथित होती चली जा रही थी उसे सुरदास ने जनमाया के व्यापक वरातल पर अवतरित करके सीत और मासुर्य से मण्डित कर दिया । सामयिक परिस्थितियों की विषमता और मानसिक परिवेश की रकागिता सुरदास को संकीर्ण परिधि में नहीं बाँध सकी । सुरसाहित्य में मन्त्रित और काव्य का जैसा अपूर्व सम्मिश्रण हुआ है वैसा विश्व साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है । सुर ने अपनी द्रिय दृष्टि से देस लिया था कि ज्ञान की सार्थकता मन्त्रित में है और मन्त्रित को रसमय बनाने के लिये काव्य का वाध्य अनिवार्य है ।

उपरान्त ज्यार्यों का अध्ययन करने के पश्चात सुरसाहित्य के सम्बन्ध में यह निष्कर्ष निकालना अशुभ नही कि सुरसाहित्य प्रतिक्रिया या परम्परा का साहित्य न होकर दुर्द्वर्ष व्यक्तित्व से प्रसृत हृदय के बावेश का रससिन्धु साहित्य है । सुर ने उस दुःख में मन्त्रित की नूतन पर्यादा बनाकर जन मानस को उसमें निमज्जित कर दिया । सुर ने जो कुछ लिखा है वह धारे का सा ही मीलित है । यद्यपि उन पर भागवत का प्रभाव है और आचार्यों के सिद्धान्तों से भी वे असम्पृक्त नहीं रह पाये हैं पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि भागवत के कथा प्रसंगों अथवा आचार्यों के सिद्धान्तों के किसी भी कोण से जागे नहीं बढ़े हैं उन्होंने जो कुछ रचा है वह एक दम अनादु अलु और स्वाभा विरता के प्रभाव में नितान्त प्रभावक है । सुर जैसी प्रतिमा का

कलाकार जनमानस के रसादिदियों के चिन्तन का परिणाम होता है । और उस चिन्तन का परिणाम-संकेत-है-+अर्थात् बुद्धि का जो आलोक विकीर्ण होता है, उसी आलोक का कितना ही रसादिदियों का आलोकित हो उठता है ।

सूर व नन्ददास की काव्य कला का विभिन्न दृष्टिकोणों से तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन दो कवियों की बहुश्री समानता के साथ उनकी भाषा का कुछ व्यक्तित्व और शिष्टता प्रकाशित होती भी है । सूर की भाषा बहुपिणी है । उका मुख्य रूप ब्रजभाषा होती है मगर उसमें अनेक और फारसी शब्दों का नेत्र-अष्टदाय कवियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में है । बाल लीला, नाचरण तथा विरह के अधिक रसों में लिखे गये पदों का छोड़कर उनकी भाषा में संस्कृत शब्दावली का प्रयोग है । उनके शब्दों में लिखी भाषा में शिष्टता है तथा भाषात्मकता प्रभाव और काव्यमय चित्रमयता की कमी है, परन्तु यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भाषा का कितना शब्द कोष अनेक सूर के पास है उतना नन्ददास तो क्या किसी की अष्टदाय कवि के पास नहीं है ।

नन्ददास की भाषा का आदर्श रूप केवल रामसुखाचार्यी में ही है । उनकी भाषा में लय, प्रभाव, सब कवियों से अधिक है । उनकी मन्दरी नायक रचनाओं में वेश-सुसुह्र और काव्यांगपूर्ण भाषा का रूप नहीं है । नन्ददास के पदों की भाषा में भी सजीवता, भाषात्मकता, अलंकारिता तथा चित्रमयता के गुण विद्यमान हैं परन्तु उनमें ये गुण उतनी मात्रा में नहीं हैं जितने सूरदास और परमानन्ददास के पदों में । यदि हम मादित भाषा की गहनता और सौन्दर्यपूर्ण प्रभाव, इन दो दृष्टिकोणों का ध्यान में रखकर सूरदास तथा नन्ददास का तुलनात्मक अध्ययन करें तो हम प्रथम स्थान सूरदास को ही देंगे तथा द्वितीय स्थान पर कविवर नन्ददास प्रतिष्ठित हो सकेंगे

उपरोक्त पक्षितियों के आधार पर हम कह सकते हैं कि दो महान कवियों की तुलना यद्यपि आसान कार्य नहीं होता है तो भी काव्य के सर्वांगों को सम्यक् समझते हुए सूर की सर्वश्रेष्ठता स्वीकार करनी ही होगी परन्तु यह भी हमें स्वीकार करना ही होगा कि अष्टदाय की कवियों में तो नन्ददास प्रमुख कवियों में हैं ही अन्य महान कवियों की श्रेणी में भी वे निसर्काव रखे जा सकते हैं । सूर तथा नन्द के उपर्युक्त विभिन्न कोणों से तुलनात्मक अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं ।

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ सूची

- १- अष्टमाष्य, चौखंबा संस्कृत शीरीज, सं० २००४ वि०
- २- अमरकोष, नलकिशोर प्रेस, लखनऊ (१८८४ ई०)
- ३- अष्टाक्षर और बल्लभ सम्प्रदाय, भाग २, डा० दीनदयालुमुस्त (सं० २००४ वि०)
- ४- अष्टाक्षर (प्राचीन वार्ता रहस्य द्वितीय भाग) विद्यामन्त्र, कांकराँली (२००६ वि०)
- ५- अष्टाक्षर परिचय - प्रमुवायल पीतल, अग्रवाल प्रेस मथुरा, (२००६ वि०)
- ६- अष्टाक्षर के कवि नन्ददास, प्रा० कृष्णदेव, राज पब्लिशर्स (रजि०) जालंधर (१९५८ ई०)
- ७- अष्ट सत्तान की वाता, सम्पादक द्वारिका दास पारीस अग्रवाल प्रेस, मथुरा (२००७ वि०)
- ८- अस्तु का काव्य शास्त्र, डा० नगेन्द्र, भारती मंदार (सं० २०१४)
- ९- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विचार, डा० निर्मल जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
- १०- कांकराँली का इतिहास, कण्ठमणि शास्त्री, विद्या विभाग कांकराँली (२००६ वि०)
- ११- काव्यलंकार, आचार्य मामह, चौखंबा संस्कृत शीरीज, (सम्बत् १९५५ वि०)
- १२- काव्य प्रकाश, मम्मटाचार्य, अनुवादक हरि मोल मिश्र, प्रयाग (सं० २००० वि०)
- १३- काव्यादर्श - आचार्य कण्ठी, कुमुद रत्नराय द्वारा प्रकाशित (सन् १९६१ ई०)
- १४- कवि प्रिया- आचार्य कैशदास कृत
- १५- कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग ४
- १६- कृष्णाक्षर - पाठ्य ग्रन्थ, सम्पादक मट्ट रमानाथ शर्मा निर्णय सागर प्रेस, बम्बई (सं० १९७६ वि०)
- १७- कल्वरल हेरीटज आफ इण्डिया - शीरीज भाग २
- १८- सोजे रिपोर्ट (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)
- १९- गीतारहस्य, बा०गं० तिलह, कैशरी आफिस, पुना (१९६२ ई०)
- २०- गौस्वामी सुशीदास, डा० रामचन्द्र भारद्वाज, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली (सन् १९६१ ई०)
- २१- दो सौ बावन वैष्णवों की बातें, हरिराम जी प्रणीत, तृतीय संस्करण, सम्पादक गौस्वामी ब्रजसुषमा शर्मा, द्वारिका दास पारीस, शुद्धादित एकदमी, कांकराँली (२०१० वि०)
- २२- नन्ददास ग्रन्थावली, सम्पादक बा० ब्रजरत्न दास (ना०प्र०सभा, काशी २००६ वि०)
- २३- नन्ददास, जीवन और काव्य, डा० मवानिदर उर्वती प्रथम संस्करण (१९६७ ई०)
- २४- नन्ददास, रमेश कुमार सट्टर, सामयिक प्रकाशन दिल्ली (सन् १९६७)
- २५- नन्ददास का परिवर्णन, विवेचन और विश्लेषण डॉ० स्नेहलता श्रीवास्तव, चैतन्य प्रकाशन कानपुर (सन् १९६२)

- २६- नन्ददास, पं० उमाशंकर शुक्ल, प्रयाग वि० वि०
- २७- नन्ददास, डा० रामरत्न मटनागर, किलान मंडल उलाहाबाद (सन् १९४६)
- २८- नन्ददास, जीवन और काव्य, डा० सावित्री अग्रवाणी, शोध प्रबन्ध प्रकाशन, नई दिल्ली (सन् १९६६)
- २९- नाट्य शास्त्र, भारत मुनि, चौसवां संस्कृत शीरिष (१९८६ वि०)
- ३०- नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४३, (सं० १९६५ वि०)
- ३१- मित्रादित्य बख्शजी, हरिदास देव
- ३२- लुत्तीदास, डा० नाताप्रसाद, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय (१९५३ ई०)
- ३३- किलासि, पहला भाग, पं० रामचन्द्र शुक्ल, सन् १९४६ प्रकाशक वण्डिन प्रेस, उलाहाबाद
- ३४- ध्वन्यालोक, आनन्दकर्मन, निर्णय भाग प्रेस कम्पनी (१९६८ वि०)
- ३५- पारयात्य साहित्य जीवन के विज्ञान- लीलाचर गुप्त
- ३६- प्राचीन वार्ता रस्य, द्वितीय भाग
- ३७- पृथ्वीपुत्र, डा० बाबुदेव शरण ब्रह्मा
- ३८- प्रसंगीत शार, सम्पादक पं० रामचन्द्र शुक्ल, के० सदन काशी (१९८२ विक्रमी)
- ३९- मस्तमाल की प्रियादास रचित मन्त्रिण चौविनी नाम टीका पर धृन्दावन निवासी लोदास की टीका ।
- ४०- प्रसंगीत (नन्ददासकृत) सम्पादक विशम्भरनाथ मेहराणा प्रयाग (सन् १९५६ ई०)
- ४१- मस्तमाल, नामादासकृत, मन्त्रिण चौविनी प्रेस लखनऊ (१९२६ ई०)
- ४२- भारतीय भाषा और श्रुति भाषा, डा० लुत्ती राम शर्मा, कानपुर (सं० २०१० वि०)
- ४३- मर्दी उर्दू, यामर कैम्पस आदि ।
- ४४- मित्रधु विनायक, मित्रधु, प्रकाशक गंगा पुस्तक माला लखनऊ (१९६४ वि०)
- ४५- माहर्षि हिन्दुजन्म रण्ड हट्टुकेट टू की हिस्टोरिकल (डा० ग्रियसन)
- ४६- मूठ गुहारें वरित, वैष्णवभाष्य दास कृत, प्रकाशक गीताप्रेस, गोरखपुर ।
- ४७- डिक्शनरी, एलसी० सेंट्सवरी, संस्करण १९३९ ई०
- ४८- रसमंगरी, मानुचर मि, बाबूजी निबन्ध मन्त्र बाबाणसी (२००६ वि०)
- ४९- रासपञ्चाव्यायी - प्रेमनारायण टंडन, हिन्दी साहित्य मन्डार, लखनऊ (सन् १९६०)
- ५०- रासपञ्चाव्यायी - डा० उदयनारायण तिवारी ।

- ५१- बल्म दिग्विजय, बाली साहित्य, डा० हरिहरनाथ टण्डन, भारत प्रकाशन मविदर
अलीगढ़ (१९६० ई०)
- ५२- विद्रोहित जो वित, कुतक, आत्मराम रण्ड संघ (१९५५ ई०)
- ५३- शिवसिंह सराज, शिवसिंह शर्मा, -- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सं २००१ वि०)
- ५४- श्रीमद्भागवत, सम्पादक कृष्ण शंकर शास्त्री आदि द्वारा प्रकाशित (सन् १९६५ ई०)
- ५५- साहित्य दर्पण, आचार्य विश्वनाथ, माली ठाठ बनारसीवास, (सन् १९६१ ई०)
- ५६- साहित्य जीवन -- रयामहोदय दास, एण्डियन प्रेस प्रयाग (२००६ वि०)
- ५७- शिक्षान्त और अध्यापन, गुलाब राय, आत्मराम रण्ड संघ दिल्ली (सन् १९६० ई०)
- ५८- साहित्य लहरी (सूदास कृत) रीगल बुक डिपॉ दिल्ली (सन् १९६१ ई०)
- ५९- सम्प्रदाय प्रदीप - गदाधर प्रसाद, विद्या विभाग कांफरांजी ।
- ६०- सूर सारावली, वैकुण्ठेश्वर प्रेस बम्बई
- ६१- सूर सागर सम्पादक नन्द दुलारे बाजपेयी, ना० प्र० समा काशी (सं २००५ वि०)
- ६२- सूर निर्णय, द्वारिका दास पारीस - प्रमुदयाल पोतल, मथुरा (सं २००८ वि०)
- ६३- सूरदास, डा० ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय (१९५६ ई०)
- ६४- सूर और उनका साहित्य, डा० हरमेश लाल शर्मा, अलीगढ़ (द्वितीय संस्करण)
- ६५- सूर की काव्य फला - डा० मनमोहन गौतम
- ६६- सुवर्णिनी टीका, ले० (बल्माचार्य जी) अग्रवाल प्रेस, मथुरा (सं १९६८)
- ६७- सूर शतक, कांफरांजी विद्या विभाग ।
- ६८- सूर सौरभ, सुशिराम शर्मा, सुमेल साधना सदन कानपुर (सं २०१३ वि०)
- ६९- सूरदास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (द्वितीय संस्करण)
- ७०- पांडिप ग्रन्थ ले० बल्माचार्य सम्पादक मट्ट रमानाथ शर्मा, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
(१९७६ वि०)
- ७१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं० रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा
(सन् १९५७)
- ७२- हिन्दी साहित्य का इतिहास -- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ।
- ७३- हिन्दी साहित्य -- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी (१९५५ ई०)

७४- हिन्दी भाषा और साहित्य -- डॉ० वा० रामसुन्दर दास (१९४४ ई०)

७५- हिन्दी साहित्य का बालवनात्मक इतिहास

डॉ० रामसुन्दर दास, प्रकाशक रामनारायण जी० इलाहाबाद (ई० १९५४ ई०)

७६- हिन्दी काव्य साहित्य -- डॉ० जसपाल

७७- हिन्दी भाषा मैट्रिकियल इण्डिया, डॉ० रमेश प्रसाद ।